रामदुवारे जो मरे

प्रवचन-क्रम

1. गुरु मारैं प्रेम का बान...2
2. तुम अभी थे यहां..23
3. अंत एक दिन मरौगे रे...43
4. भोर कब होगी?...69
5. चरन गहो जाय साध के...92
6. मुरदे मुरदे लड़ि मरे..118
7. अब मैं अनुभव पदहिं समाना...142
8. प्रभु, मुझ पर अनुकंपा करें...170
9. दास मलूका यों कहै..194 10..संन्यास हैः मैं से मुक्ति 219

रामदुवारे जो मरे
पहला प्रवचन

गुरु मारैं प्रेम का बान

अब तेरी शरण आयो राम।
तेरी शरण आयो राम,
अब तेरी शरण आयो राम।।
जबै सुनिया साध के मुख, पतितपावन नाम।
अब तेरी शरण आयो राम।।
यही जान पुकार कीन्ही, अति सतायो काम।
अब तेरी शरण आयो राम।।
विषय सेती भयो आजिज, कह मलूक गुलाम।
अब तेरी शरण आयो राम।।

सांचा तू गोपाल, सांच तेरा नाम है।
जहंवां सुमिरन होय, धन्य सो ठाम है।।
सांचा तेरा भक्त, जो तुझको जानता।
तीन लोक को राज, मनैं नहिं आनता।।
झूठा नाता छोड़ि, तुझे लव लाइया।
सुमिरि तिहारो नाम, परम पद पाइया।।
जिन यह लाहा पायो, यह जग आइकै।
उतरि गयो भव पार, तेरो गुन गाइकै।।
तुही मातु तुही पिता, तुही हितु बंधु है।
कहत मलूकदास, बिन तुझ धुंध है।।

कौन मिलावै जोगिया हो, जोगिया बिन रह्यो न जाई।
रह्यो न जाई।।
मैं जो प्यासी पीव की, रटत फिरौं पिव पिव।
जो जोगिया नहिं मिलिहै हो, तो तुरत निकासूं जीव।।
जोगिया रह्यो न जाई।।
गुरुजी अहेरी मैं हिरनी, गुरु मारैं प्रेम का बान।
जेहि लागै सोई जानई हो, और दरद नहिं जान।।
जोगिया रह्यो न जाई।।
कहैं मलूक सुनु जोगिनी रे, तनहिं में मनहि समाए।
तेरे प्रेम के कारने जोगी सहज मिला मोहिं आए।।
जोगिया रह्यो न जाई।।
कौन मिलावे जोगिया हो, जोगिया बिन रह्यो न जाई।
रह्यो न जाई।।

बाबा मलूकदास! यह नाम ही ऐसा प्यारा है! तन-मन-प्राण में मिसरी घोल दे! ऐसे तो बहुत संत हुए हैं, सारा आकाश संतों के जगमगाते तारों से भरा है, पर मलूकदास की तुलना किसी और से नहीं हो सकती। मलूकदास बेजोड़ हैं। उनकी अद्वितीयता उनके अल्हड़पन में है--मस्ती में, बेखुदी में। यह नाम मलूक का मस्ती का पर्यायवाची हो गया। इस नाम में ही कुछ शराब है। यह नाम ही दोहराओ तो भीतर नाच उठने लगे।
मलूकदास न तो कवि हैं, न दार्शनिक हैं, न धर्मशास्त्री हैं। दीवाने हैं, परवाने हैं! और परमात्मा को उन्होंने ऐसे जाना है जैसे परवाना शमा को जानता है। वह पहचान बड़ी और है। दूर-दूर से नहीं, परिचय मात्र नहीं है वह पहचान--अपने को गंवा कर, अपने को मिटा कर होती है। रामदुवारे जो मरे! राम के द्वार पर मर कर राम को पहचाना है। सस्ता नहीं है काम। कविता लिखनी तो सस्ती बात है; कोई भी जो तुक जोड़ लेता हो, कवि हो जाए। लेकिन मलूक की मस्ती सस्ती बात नहीं है; महंगा सौदा है। सब कुछ दांव पर लगाना पड़ता है। जरा भी बचाया तो चूके। रत्ती भर बचाया तो चूके। निन्यानबे प्रतिशत दांव पर लगाया

और एक प्रतिशत भी बचाया तो चूके, क्योंकि उस एक प्रतिशत बचाने में ही तुम्हारी बेईमानी जाहिर हो गई। निन्यानबे प्रतिशत दांव पर लगाने में तुम्हारी श्रद्धा जाहिर न हुई, मगर एक प्रतिशत बचाने में तुम्हारा काईयांपन जाहिर हो गया। दांव तो हो तो सौ प्रतिशत होता है; नहीं तो दांव नहीं होता, दुकानदारी होती है।
मलूक के साथ चलना हो तो जुआरी की बात समझनी होगी; दुकानदार की बात छोड़ देनी होगी। यह दांव लगाने वालों की बात है--दीवानों की! --धर्मशास्त्री नहीं है। नहीं समझ में पड़ता कि वेद पढ़े होंगे। नहीं समझ में पड़ता कि उपनिषद जाने होंगे। लेकिन फिर भी वेदों का जो राज है और उपनिषदों का जो सार है, वह उनके प्राणों से बिखरा है, फैला है। वेद जान कर कभी किसी ने वेद जाने? स्वयं को जान कर वेद जाने जाते हैं। चार वेद नहीं हैं--एक ही वेद है! वह तुम्हारे भीतर है; वह तुम्हारे चैतन्य का है। और एक सौ आठ उपनिषद नहीं हैं--एक ही उपनिषद है! और वह उपनिषद शास्त्र नहीं है; स्वयं की सत्ता है। मलूकदास पंडित नहीं हैं, ज्ञानी नहीं हैं। मलूकदास से पहचान करनी हो
तो मंदिर को मधुशाला बनाना पड़े। तो पूजा-पाठ से नहीं होगा। औपचारिक आडंबर से परमात्मा नहीं सधेगा। हार्दिक समर्पण चाहिए। समर्पण--जो कि समग्र हो! समर्पण ऐसा कि झुको तो फिर उठो नहीं। उसके द्वार पर झुक गए तो फिर उठना कैसा! जो काबा से लौट आता है वह काबा गया ही नहीं। जो मंदिर से वापस आ जाता है वह कहीं और गया होगा, मंदिर नहीं गया।
मैंने सुना है, बंगाल में एक बहुत बड़ा वैयाकरण हुआ। कभी मंदिर नहीं गया। उसके पिता बूढ़े होने लगे थे, नब्बे साल की उम्र हो गई पिता की। बेटा भी अब कोई सत्तर पार कर रहा है। आखिर पिता ने कहा कि तू कब जाएगा मंदिर, कब राम को पुकारेगा? तो बेटे ने कहाः मैं हूं व्याकरण का ज्ञाता। एक वचन में "राम", "राम" जिंदगी भर कहने से क्या फायदा? बहुवचन में एक ही बार राम को पुकार लेंगे। और एक ही बार पुकारूंगा! और पुकार सच्ची होगी तो एक ही बार में पहुंच जाएगी। और पुकार अगर झूठी है तो करोड़ बार में भी कैसे पहुंच सकती है? नाव अगर कागज की है तो करोड़ बार चलाओ, डूब-डूब जाएगी। नाव सच्ची हो तो बस एक बार छोड़ी कि उस पार पहुंची। ऐसे अंधेरे में तीर चलाने से क्या फायदा है? एक बार समग्र शक्ति लगा कर सारी आंखों को एकजुट करके, एकाग्र करके पुकार लूंगा राम को। पिता ने कहाः मैं बूढ़ा हो गया हूं, तू भी सत्तर साल का हुआ, अब इन व्यर्थ की बातों में मत लगा रह। जब भी तुझसे कहता हूं, तभी तू यह बात कहता है--एक बार पुकार लूंगा! आखिर कब पुकारेगा? तो उसने कहाः आज ही पुकार लेता हूं।
बेटा मंदिर गया। जैसे बाप भी रोज मंदिर जाता था... जिंदगी भर का नियम था। बाप राह देखता रहा कि बेटा लौटता होगा, लौटता होगा, लौटता होगा। नहीं लौटा। दोपहर होने लगी, सूरज ढलने लगा, तो बाप भागा मंदिर गया कि बात क्या हुई? तब तक मंदिर से भी लोग आ रहे थे, उन्होंने कहा कि तुम्हारा बेटा तो चल बसा। उसने तो बस एक बार मूर्ति के सामने खड़े होकर जोर से "राम" को पुकार दी और वहीं गिर गया। फिर उठा नहीं।
ऐसा रास्ता है जुआरी का। रामदुवारे जो मरे! वह परम जीवन को उपलब्ध हो जाता है।
लेकिन हम हैं चालबाज, हम हैं होशियार। होशियारी ही हमारी डुबा रही है। हमारी होशियारी ही हमारी फांसी बनी है। हम परमात्मा के साथ भी हिसाब-किताब से चलते हैं। उसके साथ भी हम सौदा करते हैं। मैं इतना दूंगा तो तुम कितना दोगे? मैं इतना पुण्य करूंगा तो मुझे कितना स्वर्ग में मिलेगा? मैं इतना दान दूंगा तो इसका कितना फल होगा? और तुम्हें शोषण करने वाले पंडित हैं, पुरोहित हैं। वे कहते हैंः यहां एक पैसा दो, वहां करोड़ गुना पाओगे। यह तो धर्म न हुआ, कुछ लाटरी की बात हो गई। और तब लोभी इस तरह के धर्म में उत्सुक होते हैं--प्रेमी नहीं, लोभी। और प्रेम का लोभ से क्या नाता है! प्रेम जानता है समर्पण, मांगता नहीं हालांकि मिलता है बहुत। करोड़ गुना ही क्यों, अनंत-अनंत गुना मिलता है! मगर मिलने की आकांक्षा प्रेम में नहीं होती। प्रेम तो सिर्फ देकर ही धन्यभागी है; चढ़ा कर कृतकृत्य है, कृतार्थ है। स्वीकार किया परमात्मा ने मेरी भेंट को, मेरी आहुति को, इतना ही क्या

कम है! इतना आनंद बहुत है। इतना आनंद भी समाएगा नहीं। छाती छोटी पड़ जाएगी, पूरा आकाश छाती में उतर आएगा।
प्रेमी देने में मस्त होता है। लोभी देता भी है अगर, तो आंख के कोनों
से देखता रहता है कि वापस मिल रहा है कि नहीं मिल रहा है। और ज्यादा मिल रहा है कि नहीं मिल रहा है। जितना लगाया है, कम से कम ब्याज सहित तो मिलना ही चाहिए! और जिसको ब्याज की चिंता है, वह निर्ब्याज नहीं हो पाता, सरल नहीं हो पाता। जिसको पाने की आकांक्षा है, उसका त्याग झूठा। त्याग तो सच्चा तभी है जब त्याग अपने आप में अपना लक्ष्य है; कोई और गंतव्य नहीं, कोई और मंजिल नहीं, जब त्याग अपने में अपना आनंद है।
इसलिए मलूकदास कहते हैंः रामदुवारे जो मरे! आते हो इस रास्ते पर तो मरने की तैयारी लेकर आना। यह रास्ता परवानों का है। और कितनी सदियां हो गयीं, परवाने शमाओं पर मरते ही जाते हैं! क्योंकि मरने में कुछ राज है जो परवाना ही जानता है। दूर खड़े हुए, देखने वाले, दर्शक उस सत्य को कभी नहीं देख सकते; वह आंतरिक अनुभव है। मिटने का मजा, गलने का मजा, खो जाने का मजा-- परवाना जानता है! और परमात्मा तो परम ज्योति है। उस परम ज्योति के सामने तुम्हें खो जाने की तैयारी करनी होगी।
समर्पण संन्यास है। समग्ररूपेण समर्पण संन्यास है।
मलूकदास ने परिभाषा ठीक कर दी संन्यासी कीः रामदुवारे जो मरे! ... राम
के द्वार पर झुक गया सिर तो उठना क्या! लौट कर देखना क्या! हिसाब-किताब क्या लगाना!
मलूकदास के जीवन के संबंध में कुछ थोड़ी सी बातें ज्ञात हैं। वे प्रतीकात्मक हैं। समझ लेने जैसी हैं। ऊपर से तो नहीं दिखाई पड़तीं कि बहुत कीमती हैं, लेकिन अगर उन प्रतीकों के भीतर प्रवेश करोगे तो जरूर बड़े राज, बड़े रहस्यों के द्वार खुलेंगे।
जो पहली घटना उनके संबंध में ज्ञात है, वह है कि बचपन से ही एक अजीब सी आदत उन्हें थी। रास्ते पर कोई कांटा पड़ा मिल जाए तो हजार काम छोड़ कर पहले उस कांटे को हटाते। छोटे थे तब से! कूड़ा-करकट कहीं पड़ा मिल जाए... और भारत के रास्ते! कूड़े-करकट की कोई कमी है! कांटों की कोई कमी है! काम के लिए भेजा जाता तो घंटों लग जाते, क्योंकि पहले वे रास्ता साफ करें, कूड़ा-करकट हटाएं, कांटें बीनें। कभी-कभी सुबह घर से भेजे जाएं कि जाकर बाजार से सब्जी ले आओ, सांझ लौटें। दिन भर मां उनकी राह देखे कि तुम रहे कहां, गए कहां? तो वे कहतेः और भी जरूरी काम आ गए, सब्जी से भी ज्यादा जरूरी काम आ गया, रास्ते पर कांटे थे, कूड़ा-करकट था, उसे बीना, हटाया।
ऐसे तो यह छोटी सी बात है, लेकिन छोटी नहीं। जीवन भर भी यही किया-- लोगों के रास्तों पर से कांटे बीने। लोगों के जीवन से कांटे बीने! लोगों के मनों में भरा हुआ कूड़ा-कचरा साफ किया। पूत के लक्षण पालने में!
एक सदगुरु ने यह उन्हें करते देखा था कि वे रास्ते पर कांटे बीन रहे हैं, कूड़ा-करकट बीन रहे हैं, तो सदगुरु उनके पीछे हो लिया। दिन भर इस छोटे से बच्चे की यह अदभुत जीवन-शैली देखता रहा। सांझ को लौट कर उसने मलूकदास के पिता सुंदरदास को कहाः धन्यभागी हो तुम! तुम्हारे घर एक सदगुरु पैदा हुआ है।
सुंदरदास ने तो सिर ठोक लिया। सुंदरदास ने कहाः हम परेशान हैं इस सदगुरु से! किसी काम का नहीं। छोटे-मोटे काम को भेजो, दिन भर व्यतीत हो जाता है, लौटता ही नहीं। यह तो किसी भंगी के घर पैदा होता तो अच्छा था। यह पिछले जन्म का भंगी होगा। इसको पता नहीं क्या धुन है! मारा, पीटा, धमकाया, सब तरह से समझाया कि यह अपना काम नहीं। तुझे क्या लेना-देना है? और कुछ करना है कि रास्ते ही साफ करते रहना है?
मगर छोटा सा बच्चा मलूकदास हंसता और वह कहता कि यही काम जिंदगी भर मुझे करना है, सो अभ्यास कर रहा हूं।
लेकिन उस सदगुरु ने कहा कि मत, मत ऐसी बात कहो। तुम्हें पता नहीं तुम क्या कह रहे हो। तुम्हारे घर ज्योति उतरी है! अभी कुछ और नहीं कर सकता, छोटा बच्चा है, तो बाहर का कूड़ा-कचरा साफ कर रहा है। जल्दी ही यह भीतर का कूड़ा-कचरा साफ करेगा। बहुत लोगों के जीवन इसके कारण स्वच्छ और निर्मल

होंगे। और देखते हो--सदगुरु ने कहा--यह आजानबाहु है! इसकी बाहुएं कितनी लंबी हैं! घुटनों तक पहुंचती हैं! या तो चक्रवर्ती सम्राट होगा और या एक अदभुत बुद्धपुरुष!
जैसे बुद्ध के संबंध में ज्योतिषियों ने कहा था कि या तो यह चक्रवर्ती सम्राट होगा और या फिर परम बुद्ध--ठीक वैसी ही बात उस सदगुरु ने मलूकदास के संबंध में कही। बुद्ध के संबंध में तो समझ में भी आ सकता है कि चक्रवर्ती हों शायद, क्योंकि राजा के बेटे थे। मलूकदास तो एक साधारण दीन-हीन परिवार में पैदा हुए थे। इनके संबंध में तो कल्पना भी करनी कि ये चक्रवर्ती सम्राट होंगे, असंभव थी। बुद्ध तो हो भी सकता था कि चक्रवर्ती सम्राट हो जाएं। सम्राट के बेटे थे, राज्य और थोड़ा बड़ा हो सकता है। लेकिन मलूकदास... !
पिता ने पूछा कि मजाक तो नहीं कर रहे हैं? यह कोई बुद्ध तो नहीं है। बुद्ध तो चक्रवर्ती सम्राट हो सकते थे, मगर यह तो मुझ गरीब का बेटा है। यह कैसे चक्रवर्ती सम्राट होगा?
सदगुरु ने जो बात कही, वह बड़ी प्यारी है! उसने कहा कि यह सदगुरु हो जाएगा, वही चक्रवर्ती सम्राट होना है। दुनिया जीत कर थोड़े ही जीती जाती है! परमात्मा को जो जीत लेता है, वह दुनिया को जीत लेता है।
दुनिया को जीतने के दो ढंग हैंः एक सिकंदर का ढंग है और एक बुद्ध का। सिकंदर दुनिया जीतने चलता है और हारा हुआ मरता है, खाली हाथ जाता है। और बुद्ध दुनिया नहीं जीतते, अपने भीतर विराजमान परम सत्य को जीतते हैं--और उसको जीतते ही सारी दुनिया जीत ली जाती है।
मैंने सुना है, पुरानी कथा है--
शिव जी अपने बच्चों के साथ खेल रहे हैं--गणेश और कार्तिकेय। और उन्होंने खेल-खेल में कहा कि तुम दोनों जाओ और दुनिया का चक्कर लगा कर लौटो, जो पहले आ जाएगा, उसे इनाम मिलेगा। कार्तिकेय तो एकदम रफूचक्कर हो गया! इधर उसने सुनी कि भागा! गणेश जी वैसे भी भाग नहीं सकते। ऐसा शरीर लेकर कहां भागेंगे! और कार्तिकेय से कहां जीत पाएंगे! लेकिन पुरस्कार गणेश को मिला। कैसे मिला यह पुरस्कार? यह कथा प्यारी है और बड़ी सूचक है। गणेश कहीं नहीं गए। शिव जी ने खुद भी कहा कि उठो भी, कुछ दो-चार कदम तो चलो! कार्तिकेय चक्कर लगाने चला गया है, सारे विश्व का भ्रमण करके वह आता ही होगा। गणेश जी ने कहाः फिकर छोड़ें। वे उठे और उन्होंने शिव जी का एक चक्कर लगाया और कहा कि यह मेरा सारी दुनिया का चक्कर हो गया। आपका चक्कर लगा लिया, फिर क्या शेष बचा?
कार्तिकेय जब तक आया तब तक पुरस्कार बंट चुका था। शिव ने कहाः कार्तिकेय, मैं क्या कर सकता हूं? तू हार गया दांव, गणेश जीत गया। मुझे तो शक था कि यह हारेगा। मगर इसने बुद्धों की राह पकड़ ली।
कार्तिकेय गया सिकंदर के मार्ग पर। गणेश गए बुद्ध के मार्ग पर।
सारी दुनिया का चक्कर लगाओ तो बड़ी लंबी यात्रा है; शायद पूरी हो भी न। किसकी हो पाई है? महत्वाकांक्षी की यात्रा हमेशा अधूरी रह जाती है। वासना की दौड़ कभी पूरी न हुई है, न होगी। वासना दुष्पूर है। लेकिन जो स्वयं को पा लेता है, जो परमात्मा को पा लेता है, उसने सब पा लिया; उसे पाने को क्या रहा? मालिक को पा लिया, तो उसकी सारी मालकियत अपनी हो गई।
एक सम्राट लौटता था अपने घर--सारी दुनिया की विजय-यात्रा करके। उसकी
सौ रानियां थीं। उसने खबर भेजी कि जिसे जो चाहिए हो वह मैं लेता आऊं। किसी ने कहा, कोहिनूर हीरा लेते आना और किसी ने कहा कि स्वर्ण-आभूषण लेते आना और किसी ने कहा कि साड़ियां लेते आना और किसी ने कुछ, किसी ने कुछ। लेकिन सबसे छोटी रानी ने कहाः मेरे मालिक, तुम वापस आ रहे हो, और क्या चाहिए? बस, तुम आ जाओ सकुशल!
सम्राट सबके लिए भेंटें लाया। निन्यानबे रानियों को तो भेंटें दे दीं
और छोटी रानी को गले लगा लिया और कहा कि तूने सब को हरा दिया। तूने मुझे पा लियाः और मुझे पा लिया तो मेरी सारी मालकियत तेरी हो गई। तू होशियार है। ये जो निन्यानबे मेरी रानियां हैं, बड़ी होशियार दिखाई पड़ती हैं, बड़ी नासमझ सिद्ध हुईं।

यह दुनिया बड़ी अदभुत है, इसका गणित बहुत अदभुत है! यहां जो समझदार साबित होने चाहिए, समझदार साबित नहीं होते; बड़े नासमझ सिद्ध होते हैं।
यहां नासमझ समझदार सिद्ध हो जाते हैं।
मलूकदास की गिनती तुम नासमझों में न करो। उन्होंने मालिक को पा लिया
और सब पा लिया।
यह तो बचपन की पहली घटना मलूकदास के संबंध में ज्ञात है कि वे कूड़ा- कचरा रास्तों से साफ कर देते थे। और एक सदगुरु ने कहा था उनके पिता को कि घबड़ाओ मत, चिंतित मत होओ, तुम्हारे घर ज्योति उतरी है; यह बहुतों के जीवन से कूड़ा-कचरा दूर करेगा। यह तो केवल बाहर की सूचना दे रहा है अभी। यह प्रतीकवत है।
दूसरी घटना बचपन के संबंध में--जो रोज-रोज घटती थी, जिससे मां-बाप परेशान हो गए थे--वह थीः साधु-सत्संग। कोई आ जाए साधु, कोई आ जाए संत, फिर मलूकदास घर की सुध-बुध भूल जाते। दिनों बीत जाते, घर न लौटते। साधु-संग में लग जाते। घर में जो भी होता, साधुओं को दे देते। साधुओं को तो बहुत लोगों ने दिया है, लेकिन जिस ढंग से मलूकदास ने दिया है वैसा किसी ने शायद ही दिया हो! चोरी करके देते। मां-बाप आज्ञा न दें तो घर में से ही चोरी करके, जब रात सब सोए होते, अपने ही घर की चीजें चुरा कर साधुओं को दे आते। क्योंकि कोई साधु है जिसके पास कंबल नहीं है और सर्दी उतरने लगी। और कोई साधु है जिसके पास छाता नहीं है और वर्षा सिर पर खड़ी है। तो चोरी करके भी बांटते।
कभी-कभी चोरी भी पुण्य हो सकती है। इसीलिए तुमसे कहता हूंः कृत्य नहीं होते पाप और पुण्य--कृत्यों के पीछे छिपे हुए अभिप्राय। कभी पुण्य भी पाप ही होते हैं और कभी पाप भी पुण्य हो जाते हैं। जीवन का गणित पहेली जैसा है। सीधी रेखा नहीं है जीवन के गणित की। कोई नहीं कह सकता कि यह ठीक और यह गलत। कि ऐसा करोगे तो ठीक और ऐसा करोगे तो गलत। सब कुछ निर्भर करता है भीतर की अभीप्सा पर, अभिप्राय पर। अब चोरी को कौन पुण्य कहेगा? लेकिन मलूकदास की चोरी को मैं कैसे पाप कहूं? मलूकदास की चोरी को पाप नहीं कहा जा सकता। और तुम चोरी न भी करो तो भी क्या पुण्य हो रहा है! तुम दान भी देते हो तो पाप हो जाता है; क्योंकि तुम्हारी दान के पीछे भी व्यावसायिक बुद्धि होती है। तुम मंदिर भी बनाते हो तो पाप हो जाता है; क्योंकि मंदिर के द्वार पर भी तुम अपना पत्थर लगवा देते हो।
तुम देखते हो देश में कितने मंदिर हैं! "बिड़ला मंदिर!" कृष्ण के मंदिर होते थे, राम के मंदिर होते थे, जैन मंदिर होते थे, बुद्ध मंदिर होते थे, मगर "बिड़ला मंदिर" तुमने सुने थे? आज तक जो किसी ने न किया था, वह जुगलकिशोर बिड़ला ने किया।
मैंने तो सुना है, जब जुगलकिशोर बिड़ला मरे... मेरे परिचित थे। मुझसे
भी उन्होंने व्यावसायिक संबंध बनाना चाहा था। मुझसे भी कहा था कि अगर आप हिंदू धर्म का प्रचार करें, तो जितने धन की जरूरत हो वह मैं देने को तैयार हूं। मैंने कहाः अपना धन आप अपने पास रखो। जहां हिंदू है, जहां मुसलमान है, जहां ईसाई है, वहां धर्म कहां? मैं किसी धर्म का प्रचार नहीं कर सकता हूं। मुझे बहुत हैरानी से देखा था और एक ही शब्द कहा था कि आप जैसे लोग हमेशा अटपटे क्यों होते हैं! मैं सब कुछ देने को, बेशर्त देने को तैयार हूं, जितना धन चाहिए, लेकिन दुनिया भर में हिंदू धर्म का प्रचार होना चाहिए। दो चीजों का प्रचार--हिंदू धर्म और गऊ माता! मैंने कहाः यह मुझसे नहीं हो सकता। यह असंभव है।... जब जुगलकिशोर मरे, तो स्वभावतः उन्होंने सोचा था कि स्वर्ग पहुंचेंगे। क्योंकि इतने मंदिर बनवाए हैं, अब और क्या चाहिए! और पहुंचे भी स्वर्ग। तो स्वभावतः अकड़ से प्रवेश किया। द्वारपाल से पूछा कि मुझे स्वर्ग मिला है, इसका कारण जानते हो? द्वारपाल ने कहाः कारण सभी जानते हैं। जुगलकिशोर बिड़ला ने कहा कि निश्चित ही। तो मतलब मेरे पहले मेरी सुगंध पहुंच चुकी है! मैंने इतने मंदिर जो बनवाए! द्वारपाल ने कहाः आप भ्रांति में हैं। आप मंदिरों के कारण यहां प्रवेश नहीं कर रहे हैं। मंदिरों के कारण तो आपको नरक जाना पड़ता। यह तो आपने एंबेसेडर गाड़ी बनाई, उसकी वजह से।

जुगलकिशोर भी बहुत चौंके! एंबेसेडर गाड़ी! उससे स्वर्ग जाने का क्या संबंध? तो द्वारपाल ने कहा कि जो भी एंबेसेडर गाड़ी में बैठे, राम-राम करता रहता है। जितने लोगों को आपने राम-राम करवाया है, उतनों को बड़े-बड़े पंडित, बड़े-बड़े पुरोहित भी नहीं करवा सके! ... चीज भी अदभुत बनाई है एंबेसेडर गाड़ी! हर चीज बजती है सिर्फ हार्न को छोड़ कर! जो बैठता है, वह राम-राम करता है, जो उसको देखता है वह राम-राम करके एकदम रास्ते से हट जाता है!
सोचा था कि मंदिर की वजह से प्रवेश मिलेगा स्वर्ग में। लेकिन वे मंदिर तो बिड़ला के अहंकार के प्रतीक हो गए। और जहां अहंकार आ गया वहां पुण्य कहां?
तुम दान भी देते हो तो किसलिए? देने में तुम्हें आनंद है या कि देने के पीछे कुछ पाने का गणित बिठा रहे हो, कोई दुकान फैला रहे हो? अगर दान साधन है, तो पाप हो गया। अगर दान साध्य है, तो पुण्य है।
तो कभी-कभी ऐसा भी हो सकता है कि मलूकदास जैसे व्यक्ति की चोरी भी पुण्य हो और जुगलकिशोर बिड़ला जैसे व्यक्ति का दान भी पाप हो। वे मुझे दान दे रहे थे कि जितना धन चाहिए--मगर उसमें भी शर्त थी। वह दान था? वे मुझे खरीदना चाह रहे थे। उसमें दान कहां था? शर्त जहां हो वहां दान कहां? दान तो बेशर्त होता है।
कुछ चमत्कारों की भी घटनाएं बाबा मलूकदास के संबंध में जुड़ी हैं। वैसी घटनाएं करीब-करीब अनेक संतों के साथ जुड़ जाती हैं। उनके जुड़ जाने के पीछे राज है। उनको तथ्य मत समझना। तथ्य समझा तो भ्रांति हो जाती है। उनको केवल संकेत समझना। वे सांकेतिक हैं। जैसे जीसस के संबंध में कथा है कि उन्होंने लजारस को मुर्दे से जगा दिया, वापस बुला लिया। आवाज दीः ल.जारस, निकल कब्र से! और ल.जारस कब्र से बाहर निकल आया। मरे चार दिन हो चुके थे! वैसी ही कहानी मलूकदास के संबंध में है कि अपने एक शिष्य को उन्होंने मौत की दुनिया से वापस बुला लिया था।
अब या तो हम इन्हें ऐतिहासिक तथ्य मानें, जैसा कि ईसाई मानते हैं कि
यह ऐतिहासिक तथ्य है कि लजारस को जीसस ने सच में ही जिंदा किया था, और या फिर हम इन्हें गहन प्रतीक मानें। ऐतिहासिक तथ्य मानो तो ये दो कौड़ी के हो जाते हैं। पहली तो बात ये झूठे हो जाते हैं, ये सच नहीं रह जाते हैं। जीवन में कोई अपवाद नहीं है। जीवन का नियम सबके लिए समान है। कोई मृत्यु से वापस नहीं लौटता; कोई लौटा नहीं सकता। अगर जीसस ल.जारस को मृत्यु से वापस लौटा सकते थे तो फिर सूली पर मरे क्यों? खुद को न लौटा सके? ल.जारस को लौटा लिया! जैसे आवाज दी थी ल.जारस को कि ल.जारस, निकल कब्र से, वैसे ही सूली पर अपने को आवाज दे देनी थी कि जीसस, मत मर, लगने दे सूली!
मलूकदास ने किसी शिष्य को, मर गया था और जिंदा कर लिया! फिर मलूकदास कहां हैं? वे भी मर गए। खुद मरते वक्त याद न रही अपनी कला, अपना चमत्कार! नहीं, ये ऐतिहासिक तथ्य नहीं हैं। और जो उनको ऐतिहासिक तथ्य मानते हैं वे बहुत भयंकर भूल करते हैं। चाहे वे सोचते हों कि हम भक्त हैं।, लेकिन वे भक्त नहीं हैं, वे हानि पहुंचाते हैं। इसी तरह की बातों के कारण धर्म असत्य मालूम होने लगता है। धर्म के साथ अगर तुम इस तरह की बातें जोड़ दोगे, तो ये बातें तो असत्य हैं, इनके साथ धर्म की नाव भी डूब जाएगी। असत्य के साथ धर्म को मत जोड़ो।
लेकिन इस तरह की कहानियों में सार बहुत है।
जीसस ने अंधों को आंखें दीं, बहरों को कान दिए, गूंगों को जबान दी, लंगड़ों को पैर दिए, मुर्दों को जिंदगी दी--ये प्रतीक हैं। तुम सब अंधे हो। तुम सब बहरे हो। तुम सब गूंगे हो। तुम सब लंगड़े हो। तुम सब मर चुके हो--जन्म के पहले ही मर चुके हो। तुम सब कब्रों में जी रहे हो। तुम्हारी देह तुम्हारी कब्र के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है।
सदगुरु तुम्हें पुकारता है तुम्हारी कब्र से--उठो! जागो! वह पुकारता है। उसकी पुकार अगर तुम सुन लो तो तुम्हारा बहरापन खो जाए। उसका स्पर्श अगर तुम अनुभव कर लो तो तुम्हारी बंद आंखें खुल जाएं। बंद आंखे खुल जाएं अर्थात अब तक जो धुंध था, वह छंट जाए; जो अंधेरा था, वह कट जाए; जो परदा था, वह हट जाए। गूंगे बोलने लगें, लंगड़े पहाड़ चढ़ जाएं। ये सिर्फ प्रतीक हैं इस

बात के कि तुम्हारी यह संभावना है, किसी सदगुरु के सान्निध्य में सत्य बन सकती है। तुम लंगड़े नहीं हो, तुम जीवन के परम शिखर पर चढ़ने के योग्य हो, मगर तुम्हें अपनी योग्यता भूल गई है।
जैसे किसी पक्षी को अपने पंखों की याद न रही हो।
और ऐसा हो सकता है।
तुम्हारे घर में तुम एक अंडे से एक कबूतर को निकाल लो और उस कबूतर को कभी दूसरे कबूतरों से न मिलने दो। उस कबूतरों की दुनिया से उस कबूतर को तुम दूर ही रखो। उसे पता ही न चले कि और भी कोई मेरे जैसे हैं, कि और भी कोई हैं मेरे जैसे जो दूर-दूर नील गगन में उड़ जाते हैं, जो चांद तारों से मुलाकात करने की अभीसा रखते हैं, जो पंख फैलाते हैं और ऐसे खो जाते हैं अनंत आकाश में कि पता ही नहीं चलता कि बचे की नहीं! उस कबूतर को याद भी नहीं आएगी अपने पंखों की। कैसे याद आएगी!
तुमने ये कहानियां सुनी होंगी; कहानियां नहीं, सत्य घटनाएं हैं। कभी- कभी कोई बच्चा मनुष्य का भेड़िए पाल लेते हैं। अभी एक-दो वर्ष पहले ही उत्तर प्रदेश में एक बच्चा लाया गया था, जो भेड़ियों की मांद में बड़ा हुआ-- बारह साल का बच्चा। लेकिन चारों हाथ-पैर से चलता था। किसी मनुष्य को कभी देखा ही नहीं उसने। भेड़ियों के साथ ही रहा था तो भेड़िए जैसे चलते थे वैसे ही वह भी चलता था--चारों हाथ-पैर से। चाल उसकी तेज थी, कोई आदमी उसका मुकाबला न कर सके। शरीर उसके पास खूंखार था। नाखून उसके पास ऐसे थे जैसे छुरियां हों और दांत उसके ऐसे तीखे थे कि चुभा दे तो तुम छूट न सको। कच्चा मांस खा जाए। एक आदमी क्या चार-चार आदमियों को उसे पकड़ने के लिए रखना पड़ता था। फिर भी भाग-भाग खड़ा होता था। लेकिन जब भी भागता, चारों हाथ-पैर से। उसने जब किसी को देखा ही नहीं कि कोई दो पैर से भी खड़ा हो सकता है तो स्मृति भी कैसे आए। स्मृति के लिए भी तो कोई बीज चाहिए। तो अगर कबूतर को तुम अपने घर में रखो और कबूतरों से परिचित न होने दो, तो वह कभी भी उड़ेगा नहीं। शायद पंख फड़फड़ाएगा भी तो भी बस वहीं जमीन पर पड़ा-पड़ा फड़फड़ाएगा।
और ऐसी ही प्रत्येक मनुष्य की स्थिति है। जब तक तुम्हें बुद्धों का सत्संग न मिले, जब तक तुम्हें सदगुरु का साथ न मिले, तुम अपने पंख न खोल सकोगे--न आंख खोल सकोगे, न तुम पहाड़ की उन ऊंचाइयों को चढ़ सकोगे जो तुम्हारी हैं! तुम उस परमपद को न पा सकोगे, जिसका दूसरा नाम परमात्मा है। और तुम सत्य को न देख सकोगे, क्योंकि तुम्हारी आंखें असत्य के परदों से ढंकी रहेंगी।
और तुम क्या खाक जिंदा हो! तुम्हारी जिंदगी क्या है? एक धोखा है। नाममात्र को जिंदा हो। खा लिया, पी लिया, उठ लिए, सो लिए, चल लिए, काम कर लिया, श्वास आई, श्वास गई; सत्तर साल यूं गुजर गए जैसे नदी में पानी बह जाए; और फिर एक दिन मिट्टी में गिर गए। तुम्हारी जिंदगी क्या है! इस जिंदगी को अभी शाश्वत का कुछ भी तो पता नहीं। यह जिंदगी तो खिलौनों में उलझी है। इस खिलौनों में उलझी जिंदगी को जिंदगी नहीं कह सकते।

दुनिया जिसे कहते हैं, बच्चे का खिलौना है,
मिल जाए तो मिट्टी है, खो जाए तो सोना है।
अच्छा-सा कोई मौसम, तन्हा-सा कोई आलम,
हर वक्त का रोना तो बेकार का रोना है!
बरसात का बादल तो दीवाना है क्या जाने,
किस राह से बचना है, किस छत को भिगोना है। ये वक्त जो तेरा है ये वक्त जो मेरा है,
हर गाम पे पहरा है, फिर भी इसे खोना है।
गम हो कि खुशी दोनों कुछ दूर के साथी हैं, फिर रस्ता ही रस्ता है, हंसना है न रोना है।
आवारा मिजाजी ने फैला दिया आंगन यों,
आकाश की चादर है, धरती का बिछौना है।
दुनिया जिसे कहते हैं, बच्चे का खिलौना है, मिल जाए तो मिट्टी है, खो जाए तो सोना है।

इस दुनिया का अदभुत नियम है--मिल जाए तो मिट्टी है, खो जाए तो सोना है!
जो तुम्हें मिल जाता है, वही मिट्टी हो जाता है। तुम्हारा हाथ सोने को लगा कि वह भी मिट्टी हो जाता है! तुम इतने मुर्दा हो कि तुम्हारे हाथ में जिंदगी आते-आते मौत हो जाती है। तुमने जो भी पा लिया है, सब बेकार हो गया है। हां, आकांक्षा भटकती है दूर-दूर। जो नहीं मिलता है... दूर के ढोल सुहावने मालूम पड़ते हैं... और उसके लिए तुम दौड़ते रहते, दौड़ते रहते--दौड़ते- दौड़ते गिरते हो एक दिन, मिट जाते हो एक दिन। दूसरों को गिरते देखते हो मगर तुम्हें यह ख्याल नहीं आता कि मुझे भी गिरना है। दूर जो है वह सोना मालूम पड़ता है। जो नहीं मिला, सोना मालूम पड़ता है; हाथ लगते ही मिट्टी हो जाता है।
इसे तुम जिंदगी कहोगे?
अगर यही जिंदगी है तो फिर मौत क्या होगी? मौत और क्या हो सकती है? जिंदगी तो वह है जहां शाश्वत का अनुभव हो; जहां परमात्मा भीतर विराजमान हो; जहां उसका दीया जले--बिन बाती बिन तेल! जो जलता तो है, लेकिन फिर बुझता नहीं। जहां आनंद की अहर्निश वर्षा हो! जहां अमृत झरे! जब तक तुम ऐसी शाश्वतता से परिचित न हो जाओ, जिसकी कोई मृत्यु नहीं है; जब तक तुम कालातीत को न पहचान लो; तब तक मत समझना कि तुम जिंदा हो।
इसी अर्थ में मलूकदास की घटना को मैं लेना चाहूंगा। इसी अर्थ में जीसस की घटनाओं को लेता हूं।
शिष्य मुर्दा हैं। सदगुरु मुर्दों को जगाता है। मगर ये ऐतिहासिक तथ्य नहीं हैं, ये सांकेतिक तथ्य हैं। इनमें बड़ा काव्य छिपा है और बड़े रहस्य भी। ये तथ्य नहीं हैं, सत्य हैं। तथ्य तो दो कौड़ी के होते हैं। सत्यों का मूल्य होता है। लेकिन सत्यों को कहो कैसे? हमारी भाषा नपुंसक है, सत्यों को प्रकट नहीं कर पाती। इसीलिए हमें प्रतीक कथाएं चुननी पड़ती हैं, सांकेतिक इशारे बनाने पड़ते हैं। चांद को बताओ कैसे, तो अंगुली उठानी पड़ती है। अंगुली चांद नहीं है। अंगुली को मत पकड़ लेना, नहीं तो चांद से सदा के लिए चूक जाओगे। ये सब अंगुलियां हैं।
और भी इसी तरह का एक उल्लेख मलूकदास के जीवन में है, वह भी ख्याल में
ले लेने जैसा है। वैसा उल्लेख अकेले मलूकदास के जीवन में है, इसलिए और भी महत्त्वपूर्ण है। मुर्दों को तो जीसस ने भी जिलाया। और-और संतों के जीवन में भी मुर्दों को जिलाने की बातें हैं। लेकिन यह बात सिर्फ मलूकदास के जीवन में है कि आलमगीर नाम का बादशाह मलूक के दर्शन को आया, तो चकित रह गया। जो उसने देखा, उसे अपनी आंखों पर भरोसा न आया। आंखें मींड़ कर देखा, फिर भी बात जैसी थी वैसी ही थी। उसने क्या देखा कि मलूकदास अधर में लटक रहे हैं, नाच रहे हैं, गीत गा रहे हैं! उनके पैर जमीन नहीं छूते।
अधर में!
निश्चित ही हम तो कहेंगे, हो गया चमत्कार! लेकिन सभी संत अधर में हैं। किस संत के पैर जमीन को छूते हैं? जो जमीन के आकर्षण से मुक्त हो गया, वह जमीन के गुरुत्वाकर्षण से भी मुक्त हो गया। ऐसे आंखों से देखोगे चमड़े की, तो जमीन को छूते हुए मालूम पड़ते हैं, मगर किसी संत के पैर जमीन को नहीं छूते हैं।
झेन फकीर रिंझाई अपने शिष्यों को कहता था कि देखो, एक बात याद रखना-- पानी में चलना तो जरूर मगर याद रहे, पानी पैर को न छुए! शिष्यों ने बहुत बार जाकर गांव के बाहर नदी में चल कर देखा, क्या करें, पानी छूता था! बहुत ध्यान करते, झाड़ों के नीचे बैठते, बुद्ध की तरह घंटों बैठे रहते, फिर उठते; फिर नदी में चलते, वह फिर पानी पैर को छू लेता। आखिर उन्होंने कहा, यह भी क्या शर्त लगा दी! पानी है तो पैर को छुएगा ही। और जब नदी में से निकलोगे तो पैर को छुएगा नहीं तो कैसे तुम बचोगे? लेकिन जब भी वे जाते तो रिंझाई पूछताः क्या हुआ? याद रखना, पैर चलें तो पानी से जरूर, मगर पानी पैर को छुए न! तभी समझूंगा कि ध्यान हुआ।
शिष्य तो थक गए कि यह बात तो पूरी होने वाली नहीं है और यह ऐसी शर्त लगा दी है कि अब ध्यान भी पूरा होने वाला नहीं।

फिर एक बार यात्रा को जाते थे, संयोग से रास्ते में नदी पड़ी। शिष्य बड़े खुश हुए कि आज पक्का पता चल जाएगा कि रिंझाई के पैर छूता है पानी को कि नहीं! रिंझाई तो मजे से उतरा पानी में, डट कर पानी ने छुआ। शिष्य तो बीच ही नदी में खड़े हो गए कि रुकिए, महाराज! हमारी जान लिए लेते हैं, आपके खुद के पैर पानी छू रहे हैं! रिंझाई ने कहाः कहां? मेरे पैर पानी नहीं छू रहे हैं, न पानी मेरे पैरों को छू रहा है। जरा गौर से देखो! जरा मुझे देखो! तुम पानी देख रहे हो, मुझे नहीं देख रहे।
ऐसे तो पैर जमीन को छुएंगे। बुद्ध चलें कि जीसस चलें कि मलूकदास कि कबीर कि नानक, ऐसे तो पैर जमीन को छुएंगे। लेकिन तुमसे मैं कहता हूंः अगर संतों को पहचानोगे, तो नहीं छूते, नहीं छुएंगे। नहीं छू सकते हैं। क्योंकि संत गुरुत्वाकर्षण से मुक्त हो गया। अब जमीन का उसे कोई आकर्षण नहीं है। मिट्टी का उसे कोई मोह नहीं। जिसने अपनी देह से तादात्म्य छोड़ दिया, जिसने जान लिया कि मैं देह नहीं हूं, उसने जान लिया कि मैं मिट्टी नहीं हूं। बस, यही अर्थ है अधर में हो जाने का।
फिर आकाश में ही क्यों नहीं चला जाता संत, अधर में क्यों? अधर का मतलब बीच में। वह भी प्रतीक है--मध्य का। संत हमेशा मध्य में होता है, अतियों से हमेशा मुक्त होता है।
कुछ लोग हैं जो एक चीज को छोड़ते हैं तो दूसरी चीज को पकड़ लेते हैं; अति
पर चले जाते हैं। धन छोड़ते हैं तो त्याग पकड़ लेते हैं; यह अति हो गई। भोजन छोड़ते हैं तो उपवास पकड़ लेते हैं; यह अति हो गई। संसार छोड़ते हैं; संन्यास पकड़ लेते हैं, यह अति हो गई। संत तो सदा मध्य में होता है। बुद्ध ने कहा है-- मज्झिम निकाय! उसका रास्ता तो बीच का है, वह अतियों से बचता है।
जैसे घड़ी के पेंडुलम को तुम बीच में पकड़ कर रोक दो--न बाएं जाए, न दाएं;
तो क्या होगा? घड़ी की चाल बंद हो जाएगी, समय रुक जाएगा, समय ठहर जाएगा। मन का नियम हैः या तो वह बाएं जाता है, अति पर, या दाएं जाता है, अति पर। जो आदमी भोजनभट्ट है, वह कभी भी उपवासी हो सकता है, ख्याल रखना। भोजनभट्ट आज नहीं कल उरलीकांचन जाएगा। उरलीकांचन जाओ तुम, जो भी मिलें समझना कि भूतपूर्व भोजनभट्ट! नहीं तो उरलीकांचन किसलिए जाएंगे!
वह जो स्त्रियों के पीछे दीवाना रहा है, आज नहीं कल स्त्रियों को छोड़
कर भागेगा, ब्रह्मचर्य का व्रत लेगा। जो भी ब्रह्मचर्य का व्रत ले, समझ लेना व्यभिचारी रहा है। नहीं तो ब्रह्मचर्य के व्रत की क्या जरूरत है! व्यभिचारी ही ब्रह्मचर्य का व्रत लेते हैं। और ब्रह्मचर्य का व्रत लेना पड़े तो वह व्रत व्रत होने के कारण ही झूठा हो जाता है। व्रत का अर्थ होता है--जबरदस्ती थोपा; संकल्प की शक्ति से थोपा; अपने को बांधा नियंत्रण में-- यम में, नियम में, संयम में--अपने चारों तरफ बागुड़ लगाई, ताकि कहीं कोई खतरा न हो जाए। अपने हाथों में खुद ही जंजीरें पहना लीं कि कहीं किसी कमजोर क्षण में छूट न भागूं। अपने को सब तरफ से घेर लिया, ताकि निकलना भी चाहूं तो निकल न पाऊं।
जो व्यभिचारी रहा है, वह ब्रह्मचर्य का व्रत लेगा। और जो भोगी रहा है,
वह आज नहीं कल योगी हो जाएगा। जिन-जिन को तुम सिर के बल खड़े देखो, सावधान हो जाना--ये भोगी हैं जो अब उलटे खड़े हो गए हैं। नहीं तो सिर के बल खड़े होने की कोई जरूरत है? अगर परमात्मा को तुम्हें सिर के बल ही खड़े रखना था, तो उसने सिर में पैर दिए होते। कम से कम पैर नहीं तो सींग तो दिए ही होते। कम से कम तीन सींग, तिपाई की तरह खड़े हो जाओ। ऐसा गोल सिर तो न दिया होता। शीर्षासन का तो इरादा परमात्मा का नहीं दिखता है। तुम्हारे गोल सिर से साफ जाहिर है। शीर्षासन करने वाले को हाथ की टेक देनी पड़ती है, कि तकिए की टेक देनी पड़ती है, कि दीवाल के किनारे खड़ा होना पड़ता है। परमात्मा ने तुम्हें पैर के बल ही खड़ा होने को बनाया है। लेकिन एक अति से आदमी दूसरी अति पर चला जाता है।
अति में बंधन है; अति संसार है। और मध्य मुक्ति है; मध्य अतिक्रमण है। इसलिए यह जो आलमगीर ने देखा कि मलूकदास अधर में लटके गीत गा रहे हैं, भजन कर रहे हैं, नाच रहे हैं, मस्त हो रहे हैं, यह प्रतीक हैः मध्य में देखा, बीच में देखा।

मुल्ला नसरुद्दीन एक रात देर से घर लौटा। तीन बजे थे। घड़ियाल ने तीन
की आवाज दी। जब मुल्ला बिस्तर में प्रवेश कर रहा था, पत्नी ने पूछा कि सुनते हो घड़ी की आवाज, तीन बज गए! मुल्ला ने कहाः तू फिकर मत कर, तीन नहीं बजे। असल में तेरी नींद खराब न हो, इसलिए मैं घड़ी का पेंडुलम पकड़ कर लटक गया था, बजे तो बारह ही हैं। और जैसे ही मैंने पेंडुलम छोड़ा तो तीन घंटे बजे। थोड़ी देर और मुझे पकड़े रहना था, लेकिन पता कैसे चले कि अब घंटे बजने का समय बीत गया! तो नौ घंटे तो मैंने बचाए, मगर तीन बज गए।
घड़ी के पेंडुलम को पकड़ कर लटक जाओ तो घड़ी रुक जाएगी। न बारह बजेंगे, न
नौ बजेंगे, न तीन बजेंगे, न एक, न दो, कुछ भी नहीं बजेगा। बजेगा ही नहीं। घड़ी की चाल ही बंद हो जाएगी। ठीक ऐसी ही अदभुत घटना उस व्यक्ति को घटती है जो जीवन की अतियों के मध्य में खड़ा हो जाता है। उसके जीवन से समय तिरोहित हो जाता है। वह कालातीत हो जाता है। उसके भीतर समय समाप्त हो जाता है। और जहां समय गया, वहीं शाश्वतता का द्वार है।
मगर मैं तुमसे घड़ी के पेंडुलम से लटकने को नहीं कह रहा हूं। लेकिन मन
भी घड़ी है।
अभी तो वैज्ञानिक भी इस बात पर राजी हो रहे हैं कि शरीर के भीतर भी ठीक घड़ी की तरह व्यवस्था है। इसीलिए तो तुम्हें अगर बारह बजे तुम रोज भोजन करते हो, तो ठीक बारह बजे पेट खबर दे देता है कि अब भोजन का वक्त हुआ। तुम अगर रोज दस बजे रात सोते हो तो दस बजे तुम्हारी आंखें झपकने लगती हैं, जम्हाई आने लगती है। तुम्हारे भीतर एक घड़ी है, जो चुपचाप चल रही है। मुल्ला नसरुद्दीन घर लौटा रात... वही फिर तीन बजे। ज्यादा देर मधुशाला में जमा रहता। जब मधुशाला बंद होती तभी उठता। तीन बजे मधुशाला बंद होती, तब वह उठता।... घर आया तो नौकरानी द्वार पर ही मिली। इधर घड़ी ने तीन के घंटे बजाए और नौकरानी ने कहा कि आप रहे कहां, मालिक? पता है, आपकी पत्नी को बच्चे हुए? और तीन बच्चे एक साथ हुए। मुल्ला ने कहा, धन्य हो परमात्मा का! अच्छा हुआ कि बारह बजे नहीं लौटा!
बाहर एक घड़ी है। वह तो कृत्रिम है; वह तो कामचलाऊ है। भीतर एक घड़ी है-- जैविक घड़ी, बायोलॉजिकल। उस घड़ी से भी मुक्त होना है। उस घड़ी से वही मुक्त हो सकता है जो अति की व्यर्थता को समझ ले। लेकिन बड़ी सावधानी चाहिए। क्योंकि मन का नियम यह है कि जब एक चीज से ऊबता है तो तत्क्षण उसके विपरीत चीज को चुन लेता है। सोचता है इसमें रस नहीं मिला तो शायद उलटे में रस मिलेगा। फिर जब उससे ऊब जाता है तो फिर उलटे तक पहुंच जाता है और ऐसे ही डोलता रहता है और इसी तरह भीतर की घड़ी चलती है। और भीतर की घड़ी ही तुम्हारे तथाकथित जीवन का आधार है। फिर एक जन्म चलता है। दूसरा जन्म चलता है, जन्मों पर जन्म चलते हैं; भीतर की घड़ी चलती रहती है तो जन्मों की यात्रा चलती रहती है। भीतर की घड़ी रुक जाती है, जन्मों की यात्रा रुक जाती है। आलमगीर ने मध्य में लटके हुए देखा है मलूकदास को; यह प्रतीक है। कोई मध्य में लटक नहीं सकता। इसको तथ्य मत मान लेना।
बस, ये थोड़ी सी घटनाएं मलूकदास के संबंध में ज्ञात हैं। शेष उनके प्यारे शब्द उपलब्ध हैं। उन्हीं में तुम मलूकदास को खोजो।
ख्याल रखना, काव्य मत खोजना, भाषा का सौष्ठव मत खोजना, व्याकरण मत खोजना, तर्क मत खोजना। मलूकदास जैसे मस्तों को इनकी फिक्र नहीं होती। उनकी भाषा होती है सधुक्कड़ी। उन्हें हिसाब नहीं होता मात्राएं बिठाने का। लेकिन भीतर का संगीत जरूर सुनोगे; अनाहत नाद जरूर तुम्हें सुनाई पड़ेगा; हृदय के संगीत की छाप तुम जरूर पाओगे। परमात्मा की छवि जरूर तुम्हें इन सीधे-सादे शब्दों में झलकती हुई मिलेगी।
मगर हमें उलटी बातें सिखाई जाती हैं।
विश्वविद्यालयों में कबीरदास भी पढ़ाए जाते हैं तो उनका भाषा-सौष्ठव, उनकी छंदबद्ध रचनाओं की काव्यात्मकता, उनका गद्य में जो अदभुत प्रवाह है, उनका पद्य। ये सब गौण बातें हैं। यह ऐसा है जैसे तुम किसी से मिलने जाओ और उसके वस्त्रों के संबंध में ही बातचीत करके लौट आओ--कि बड़ा प्यारा कोट है, कि बटन भी सोने के, कि अहा... कि आपकी कुर्सी भी बड़ी अच्छी है; कि आप बैठे भी बड़े सुरुचि से हैं! तो वह आदमी भी थोड़ा हैरान होगा।

मिर्जा गालिब के जीवन में ऐसा उल्लेख है।
मिर्जा गालिब को बहादुरशाह जफर ने एक भोजन पर निमंत्रण दिया। और भी लोग निमंत्रित थे। कोई शाही जलसा था। मिर्जा गालिब गरीब आदमी। उधारी ही न चुका पाए जिंदगी भर। कचहरियों, अदालतों में मुकदमे चलते रहे। सदा फटेहाल रहे। कहा भी है अपनी एक कविता में कि जिस दिन आया भी प्यारा तो एक नजर हम उसकी तरफ देखते हैं और एक नजर अपने घर की तरफ देखते हैं, क्योंकि आज ही घर में बोरिया न हुआ! और तो और, एक बोरिया भी नहीं है बिछाने को! कि मालिक आया है तो उसको बैठने को कहें! किस मुंह से बैठने को कहें! आज ही घर में बोरिया न हुआ! कुछ नहीं था, फाके चल रहे थे। शाही निमंत्रण मिला तो खुश हुए कि चलो एक दिन तो भोजन ठीक से मिलेगा। कपड़े-लत्ते लेकिन ठीक नहीं थे। मित्रों ने कहा कि ये कपड़े-लत्ते पहन कर जाओगे? दरबार में? चपरासी भीतर ही नहीं घुसने देंगे, चौकीदार बाहर से ही धक्का देकर निकाल देंगे। मिर्जा गालिब ने कहाः निमंत्रण मुझे मिला है या मेरे वस्त्रों को? मैं तो जैसा हूं वैसा ही जाऊंगा। वैसे ही गए। मित्रों ने कहाः फिर भी तुम हमारी मानो। न मानो, तुम्हारी मर्जी! और जो होना था वही हुआ। जैसे ही भीतर प्रवेश करने लगे, पहरेदार ने हाथ पकड़ कर रोक लिया कि कहां भीतर जा रहा है? भाग यहां से! तो मिर्जा गालिब ने कहा कि मैं मिर्जा गालिब हूं। उसने कहा वह समझ गया। दिमाग खराब होगा तेरा, तू और मिर्जा गालिब! रास्ता लग!
मिर्जा गालिब ने अपना निमंत्रण-पत्र निकाल कर दिखाया, तो उसने वह छीन लिया। उसने कहाः तूने किसी का चुरा लिया होगा। ये कपड़े-लत्ते, यह शक्ल! ... बालों में तेल नहीं पड़ा महीनों से, कपड़े धुले न होंगे जमानों से, जूते फटे, पगड़ी चीथड़े हो रही।
मिर्जा गालिब वापस गए। मित्रों से कहा कि तुम ठीक कहते थे। तुम्हारे कोट-कमीज, तुम्हारी पगड़ी, तुम्हारे जूते मुझे उधार दे दो। उधार कपड़े-कोट कमीज लेकर वापस लौटे। वही पहरेदार झुक-झुक कर नमस्कार किया। इस बार उसने यह भी नहीं पूछा कि निमंत्रण-पत्र कहां है? ... था भी नहीं अब तो, वह तो पहले ही उसने छुड़ा लिया था। झुक कर यही कहा कि मालूम होता है आप मिर्जा गालिब हैं। मिर्जा मुस्कराए और अंदर प्रवेश कर गए।
सम्राट बहादुरशाह जफर तो खुद भी बड़े शायर थे, बड़े कवि थे। "जफर" उनका उपनाम है--कवि का। अपने पास बिठाया गालिब को। लेकिन जफर बहुत हैरान हुए। पहले तो कुछ बोले नहीं, शिष्टाचारवश, कि बोलना उचित नहीं। लेकिन जब बात बहुत बढ़ने लगी तो न रहा गया। कहाः क्षमा करें, पूछे बिना नहीं रहा जाता। यह आप क्या कर रहे हैं? मिर्जा गालिब अजीब काम कर रहे थे। उठाते बरफी, पगड़ी को लगाते कि ले पगड़ी! कोट को छुलाते कि ले कोट, दिल भर कर खा! जूते को लगाते कि ले जूता! खुद एक कौर नहीं लिया। जफर ने पूछाः आप यह क्या कर रहे हैं? यह कौन सी शैली है? यह आपका कौन सा ढंग है? जरूर कोई राज होगा। आप जैसा आदमी जब यह कर रहा है तो इसका राज क्या है?
मिर्जा गालिब ने कहाः राज कुछ नहीं, बात सीधी-साफ है। मैं तो आया था तो धक्के देकर निकाल दिया गया; अब तो कपड़े आए हैं, अब मैं नहीं हूं। मैं तो आया ही नहीं। अब मैं तो सिर्फ खूंटी हूं, जिस पर टंग कर ये कपड़े आ गए हैं। खूंटी कहीं भोजन करती है! वह और उलटा होगा। इसलिए मैं कपड़ों को खिला रहा हूं कि अब खूंटी को खिलाओ तो और हंसी होगी। कम से कम कपड़े थोड़ा खा भी सकते हैं, जैसे बरफी कोट के खीसे में डाल दी, लड्डू कमीज के खीसे में डाल दिया। एक बरफी मैं--आप देखते हैं--जूते के अंदर डाल दी। खूंटी को कैसे खिलाओ? मैं तो सिर्फ खूंटी हूं।
तब बहादुरशाह जफर को पूरी कहानी पता चली। लेकिन तब तक तो बहुत देर हो चुकी थी। घटना महत्वपूर्ण है।
लेकिन कबीर को, सूर को, मलूक को, रैदास को, फरीद को, नानक को लोग इस तरह पढ़ते हैं विश्वविद्यालय में, जिस तरह मिर्जा गालिब उनके कपड़ों से पहचाने जाएं। इस तरह मत देखना। यह कोई विश्वविद्यालय नहीं है। यह तो दीवानों के मिलने की एक जगह है, एक मधुशाला! यहां तो रस में उतरना। न मात्रा की फिक्र करना, न व्याकरण की, न भाषा की। मलूकदास जैसे लोगों को इस सब की कोई परवाह होती भी नहीं।

अब तेरी शरण आयो राम।
सीधे-सादे वचन हैं। समझो, तो सारे शास्त्र उनमें छिपे हैं। न समझो, तो तुम थोड़ा सोचोगे कि इसमें समझाने जैसा भी क्या है, समझने जैसा भी क्या है? अब तेरी शरण आयो राम।
पहले तो इस "अब" शब्द को तुम थोड़ा सा ध्यान करना। यह ठीक वैसा ही है जैसे ब्रह्मसूत्र शुरू होता है--अथातो ब्रह्म जिज्ञासा, अब ब्रह्म की जिज्ञासा। "अब।" अब से क्या मतलब? अब से मतलब हैः देख लिया बहुत जीवन, चख लिए सब स्वाद। सब बेस्वाद है यहां। जहां मिठास का आभास था वहां नीम की कड़वाहट पाई; जहां धन सोचा था वहां कौड़ियां भी न थीं; जहां हीरों की चमक देखी थी वहां कंकड़-पत्थर पाए; इसलिए--"अब।" अब का अर्थ हैः अनुभव के बाद। अथातो ब्रह्म जिज्ञासा!
अब तेरी शरण आयो राम।
थक गया बहुत। न मालूम किन-किन की शरण गया हूं! न मालूम किन-किन के चरण गहे! न मालूम कहां-कहां झुका, किन-किन द्वार-दरवाजों पर और सब जगह से खाली हाथ लौटा; इसलिए अब तुम्हारे द्वार आया हूं! अब तेरी शरण आयो राम!
आदमी ने जो दुनिया बनाई है उसका धोखा देख लिया, पहचान लिया। वहां सपने
ही सपने हैं, सत्य नहीं! मृग-मरीचिकाएं हैं, झूठे आभास हैं; असली आदमी कहीं खो गया है। असली आदमी का कोई पता ही नहीं चलता।

तन-मन-प्रान, मिटे सबके गुमान
एक जलते मकान के समान हुआ आदमी।
छिन गए बान, गिरी हाथ से कमान
एक टूटती कृपान का बयान हुआ आदमी।
भोर में थकान, फिर शोर में थकान,
पोर-पोर में थकान पे थकान हुआ आदमी।
दिन की उठान में था उड़ता विमान
हर शाम किसी चोट का निशान हुआ आदमी।
तन-मन-प्रान, मिटे सबके गुमान
एक जलते मकान के समान हुआ आदमी।

बुद्ध ने कहा है कि मैं जिसे पीछे छोड़ आया हूं, वह राजमहल नहीं है, सिर्फ लपटें लगी हैं, आग जल रही है--चिता है!

... एक जलते मकान के समान हुआ आदमी!

मलूकदास ने जिंदगी को सब तरफ से टटोला, खोजा, पहचाना, अनुभव किया--पाया
कि बिल्कुल थोथी है। समय भर गंवाना हो तो बात और।
लेकिन लोग बड़े अजीब हैं। ताश खेलते हैं, शतरंज के मोहरे चलाते हैं। असली हाथी-घोड़े नहीं हैं पास, तो लकड़ी के हाथी-घोड़े--या जरा पैसे पास में हुए तो हाथी-दांत के हाथी-घोड़े--और उनसे पूछो कि क्या कर रहे हो? ये चालें, ये जीतें, ये हारें, ये मातें! तो वो कहते हैंः समय काट रहे हैं। पागल हो! समय तुम्हें काट रहा है या तुम समय काट रहे हो? होश ठिकाने हैं? समय की तलवार तुम्हें रोज काटे जा रही है। तुम्हारी गर्दन रोज कटती जा रही है। तुम रोज मर रहे हो। और समय क्या इतना ज्यादा है तुम्हारे पास कि उसे काटो? थोड़ा सा तो समय है और इसी थोड़े समय में पहचान लेना है कि सत्य क्या है। इसी थोड़े समय में आत्म-परिचय करना है, आत्म-बोध करना है, आत्म-साक्षात्कार करना है। लेकिन बस लोग हैं कि बेहोशी में भागे चले जा रहे हैं। भीड़ है, भीड़ के साथ भागे चले जा रहे हैं।.जरा भी होश नहीं है।
घर पहुंचे। जोर से चिल्ला कर बोलेः हाय, हाय, मेरी जेब कट गई! उनकी पत्नी ने जोर से आंखें गड़ा कर ढब्बू जी को देखा और कहा कि पर जेबकतरे ने तुम्हारी जेब में हाथ डाला तब तुम्हें पता नहीं चला? बोलो, बोलते क्यों नहीं?

ढब्बू जी की आंखें नीचे झुक गईं, कहाः पता क्यों नहीं चला... । पर मैंने सोचा कि वह मेरा ही हाथ है।
होश कहां! बेहोशी चल रही है। तुम होश में जी रहे हो? होश में तुम समय काटोगे? इतना समय तुम्हारे पास है? और समय जैसा बहुमूल्य और क्या है? गया एक बार हाथ से तो फिर लौटेगा नहीं। फिर लाख उपाय करोगे तो एक क्षण भी वापस नहीं आ सकता। इसे तुम ताश के पत्तों में और शतरंज के खेलों में और फिल्मों में बैठे हुए काट रहे हो! जिस समय में परमात्मा मिल सकता है, उसको काट रहे हो! जिस समय में मिल सकती हैं हीरों की खदानें, उनको खिलौनों में काट रहे हो!
यह सब देख लिया मलूकदास ने। आंखें तेज रही होंगी। बचपन से ही कूड़ा- कचरा साफ करते थे रास्तों का, कूड़े-कचरे की पहचान रही होगी। जल्दी ही समझ में आ गया होगा कि इस जिंदगी में कूड़े-कचरे के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। जब मौत आ कर सब छीन लेती है तो जो भी है, कूड़ा-कचरा है।
धन की परिभाषा समझ लो।
धन वही है, जो मौत न छीन सके। जो मौत छीन ले, वह धन नहीं है, धन का धोखा है।
लेकिन धन के धोखे में लोग जी रहे हैं। ऐसे लोग हैं जिनके पास बहुत है, फिर भी मांग उनकी समाप्त नहीं होती। उन जैसा दरिद्र और कौन होगा? और ऐसे भी लोग इस जमीन पर रहे हैं, जिनके पास ना-कुछ है और फिर भी परम तृप्ति है। जितना है, वह भी जरूरत से ज्यादा मालूम होता है। वे असली धनी हैं। वे सम्राट हैं।
अब तेरी शरण आयो राम।
मलूकदास कहते हैंः सब देख कर, सब द्वार-दरवाजे खटखटा कर, अनंत-अनंत द्वार-दरवाजे खटखटा कर--अनंत-अनंत जीवन में--अब तेरी शरण आ गया हूं। अब मुझे समझ आई; अब मुझे बोध हुआ; अब मुझे होश जगा।
जबै सुनिया साध के मुख, पतितपावन नाम।।
कैसे आया तुम्हारे पास? इसमें कुछ मेरा गौरव नहीं है।... समझना भक्त
की विनम्रता, भक्त का अनुग्रह भाव।... कैसे आया तुम्हारे द्वार? इसमें मेरी कोई गौरव गरिमा नहीं है; इसमें मेरी कुछ खूबी नहीं है।
जबै सुनिया साध के मुख, पतितपावन नाम।
जब किसी पहुंचे हुए साधु के मुख से तुम्हारा नाम सुना, बस स्वाद लग गया। एक बूंद पड़ गई अमृत की मेरी जीभ पर भी।
जबै सुनिया साध के मुख, पतितपावन नाम।
जब किसी सदगुरु से तुम्हारा नाम सुना और जब सदगुरु की आंखों में झलकता हुआ आनंद देखा और उसके पैरों में बंधे हुए घूंघर सुने, और उसके हाथ में उठा हुआ इकतारा बजा--बस, तब से एक ही धुन सवार हैः कैसे तुम्हें पाऊं? कैसे तुम्हें खोज लूं? कहां तुम मिलोगे?
यही जान पुकार कीन्ही, अति सतायो काम।
और ऐसे ही नहीं आ गया हूं, कच्चा घड़ा नहीं हूं; काम ने बहुत सताया है और काम की आग ने बहुत पकाया है, तब तुम्हारे द्वार पर आया हूं।
दो ही तरह के जीवन हैंः काम का जीवन और राम का जीवन। काम का अर्थ हैः और, और, और। काम यानी कामना, वासना। एक काम का जीवन है--यह भी मिले, वह भी मिले! मिलता ही रहे। सब कुछ मिल जाए! अच्छा-अच्छा सब मुझे मिल जाए। सब फूल मैं बटोर लूं।
बात पुराने जमाने की है। झग्गड़ मियां अपने मसखरेपन तथा हाजिरजवाबी के लिए बहुत मशहूर थे। एक जलसे में जब चाय की प्यालियां आईं तो झग्गड़ मियां ने जोर से कहाः इधर से, इधर से! नौकरों ने झग्गड़ मियां की आवाज सुनी, जोर की आवाज--इधर से, इधर से! --तो उसी तरफ आ गए और वहीं से चाय शुरू की। फिर जब पान की गिलौरियां बंटने लगीं तो जनाब फिर चिल्लाने लगेः इधर से, इधर से! इतना सुनना था कि रायबहादुर श्यामनंदन सहाय को गुस्सा आ गया। और चिढ़ कर जोर से गरजेः कौन है रे, लगाओ जूता! अभी वे चुप भी नहीं हुए थे कि झग्गड़ मियां ने कहाः जूता! उधर से, उधर से!

यह हमारी जिंदगी का ढंग है। फूल-फूल सब हमें मिल जाएं, कांटे-कांटे सब दूसरों को मिल जाएं। मगर दूसरे भी यही कर रहे हैंः फूल-फूल उन्हें मिल जाएं, कांटे-कांटे सब तुम्हें मिल जाएं। इसलिए खूब छीना-झपटी है। फूल तो छीना-झपटी में नष्ट हो जाते हैं, कांटे चुभ जाते हैं। सबके हाथ लहूलुहान हैं। फूल तो बचते नहीं, क्योंकि फूल कोमल हैं। इतनी छीना-झपटी होगी तो फूल नहीं बच सकते। हां, कांटे मजबूत हैं, कांटे बच जाते हैं। सारा जगत कांटों से भर गया है।
यही जान पुकार कीन्ही, अति सतायो काम।
वासना इतना क्यों सताती है? क्योंकि वासना में प्रतिस्पर्धा है, सतत संघर्ष है, गलाघोंट प्रतियोगिता है। एक-दूसरे के गले पर लोग सवार हैं। एक-दूसरे की जेब में हाथ डाले हुए हैं। एक-दूसरे की गर्दन काटने को तत्पर बैठे हुए हैं।
मलूकदास कहते हैंः यह सब देख कर आया हूं, यह सब अनुभव करके आया हूं, कच्चा मत समझना। पक कर आया हूं। संसार की तरफ पीछे लौटने का अब कोई इरादा नहीं, देखने की भी कोई आकांक्षा नहीं।
विषय सेती भयो आजिज, कह मलूक गुलाम।
कहते हैं कि बहुत दुर्दशा हो गई है। बहुत आजिज हुआ। विषय-भोगों के कारण, वासनाओं के कारण बहुत दीन हो गया हूं, बहुत दरिद्र हो गया हूं, भिखमंगा होकर आया हूं। बड़ी गुलामी की। अब तेरी शरण आयो राम! अब तेरी शरणागति आया हूं। तू मुक्त करे तो मुक्ति मिले।

जुल्म हंस-हंस के सभी सहने लगा है आदमी,
गीदड़ों के रंग में रहने लगा है आदमी।
फूल औ कांटे में वो पहचान कर पाता नहीं,
भीड़ जो कहती है, वही कहने लगा है आदमी।
यह समय की धार से टकराएगा कैसे भला,
जब कि तिनके की तरह बहने लगा है आदमी।
चंद सिक्कों के लिए संबंध सारे तोड़ कर,
हर किसी की बांह को गहने लगा है आदमी।

जरा चारों तरफ देखो, अपने को देखो, औरों को देखो--और तुम्हें भी समझ में आ जाएगा कि जिस आपा-धापी में तुम लगे हो, नितांत व्यर्थ है। कांटे के अतिरिक्त और कुछ यहां हाथ लगने वाला नहीं। राख ही राख हाथ लगेगी। और शायद राख में पड़े अंगारे भी हाथ में लगें तो फफोले भी पड़ें, तो जलो भी।
सांचा तू गोपाल, सांच तेरा नाम है।
मलूकदास कहते हैंः एक बात समझ आ गई--सब यहां असत्य है, सत्य है तो तू है।
सांचा तू गोपाल, सांच तेरा नाम है।
जहंवां सुमिरन होय, धन्य सो ठाम है।।
जहां तेरा स्मरण चल रहा हो, जहां चार दीवाने मिल कर तेरी याद करते हों--वहीं तीर्थ है, वहीं मंदिर है। और तेरे सिवाय कुछ भी सच्चा नहीं है।
बाकी सब नाते झूठे, सब रिश्ते झूठे। बस शब्द ही शब्द हैं नाते और रिश्ते। हमारे नाते रिश्ते भी क्या हैं? शायद झगड़ने की थोड़ी व्यवस्थित पद्धतियां हैं। जिनको कहो पति-पत्नी, कहते तो हैं प्रेम का नाता, लेकिन प्रेम तो शायद कभी क्षण दो क्षण को होता हो तो होता हो, बाकी समय तो कलह और संघर्ष है। मां-बाप और बच्चों के बीच कलह और संघर्ष है। पीढ़ियों के बीच इतना फासला है कि बात करनी मुश्किल है। बच्चे मां-बाप से बोलते ही तब हैं जब उन्हें पैसे की जरूरत हो। मां-बाप बच्चों से बोलते ही तब हैं जब उन्हें डांटने-डपटने का जोश आ जाए। नहीं तो कोई और संबंध नहीं है।
पति-पत्नी छुट्टियां मनाने के लिए एक होटल में गए। वहां पर उन्होंने ठहरने के लिए कमरा मांगा। मैनेजर बोलाः पहले आप इस बात का प्रमाण-पत्र दीजिए कि आप पति-पत्नी ही हैं।
रही होगी निश्चित ही दिल्ली की होटल!

पत्नी ने यह सुना ही था कि गुस्से से टोहनी मारी अपने पति को और बोली
कि हजार दफे कहा कि प्रमाण-पत्र साथ लेकर चला करो। आप जब घर से चलते हैं, प्रमाण-पत्र साथ क्यों लेकर नहीं चलते? जवाब दो!
मैनेजर ने मुस्कुरा कर चाबी दे दी और कहा कि साहब, प्रमाण-पत्र मिल गया, लीजिए चाबी और भीतर जाइए! आप पक्के पति-पत्नी हैं। अब और किसी प्रमाण-पत्र की आवश्यकता नहीं है।
पति-पत्नियां झगड़ रहे हैं। मां-बाप-बच्चे झगड़ रहे हैं। भाई-बहन, भाई-भाई, मित्र-मित्र झगड़ रहे हैं। यहां दुश्मन तो दुश्मन हैं, यहां मित्र भी कहां मित्र हैं? यहां मित्र भी बस प्रयोजन से मित्र हैं।
जीसस का प्रसिद्ध वचन हैः अपने शत्रुओं को ऐसे प्रेम करो जैसे अपने मित्रों को।
एक ईसाई मिशनरी से मैं बात कर रहा था। मैंने उससे कहाः इसका अर्थ समझते हो? इसका अर्थ यह है कि मित्रों में और दुश्मनों में कोई खास फर्क नहीं है। अपने दुश्मनों से वैसा ही प्रेम करो जैसा अपने मित्रों से। जीसस साफ कह रहे हैं कि तुम्हारे मित्र और तुम्हारे दुश्मन, दोनों एक ही कोटि में हैं। जो आज मित्र हैं, कल दुश्मन हो सकता है। जो कल दुश्मन था, वह आज मित्र हो सकता है। फर्क क्या है?
मैक्यावेली ने--जो कि पश्चिम का चाणक्य हुआ--उसने अपनी किताब में लिखा हैः अपने मित्रों को भी वह बात मत बताना जो तुम अपने शत्रुओं को न बताना चाहते हो। क्योंकि कौन मित्र कब शत्रु हो जाएगा, कुछ नहीं कहा जा सकता। और अपने शत्रुओं के संबंध में भी वे बातें मत कहना जो तुम अपने मित्रों के संबंध में कहने में झिझकते होओ। क्योंकि कौन शत्रु कब मित्र हो जाएगा, क्या कहा जा सकता है।
यहां शत्रु मित्र हो जाते हैं, मित्र शत्रु हो जाते हैं। यह संसार बड़ा अजीब गोरखधंधा है। इस गोरखधंधे से--मलूकदास कहते हैं--बिल्कुल ऊब गए; यह सब झूठ है, यह सब नाटक है! यह सब पर्दे के इस तरफ जो चल रहा है, सच्चा नहीं है, पर्दे के भीतर कुछ और ही मामला है। तुम कभी-कभी रामलीला पीछे से भी जाकर देखा करो--पर्दे के पीछे, जहां अभिनेता सजते हैं।
मेरे गांव में जब भी रामलीला होती थी तो मैंने हमेशा पीछे से ही देखी है। बाहर में क्या है, एक दफा देख ली, वही का वही खेल हर साल! मगर भीतर का खेल बड़ा अदभुत है। मैंने सीता जी को बीड़ी के कश लगाते देखा है! बस एकदम जा रही हैं बाहर, स्वयंवर रचा जा रहा है--आखिरी कश! मैंने रावण को रामचंद्र जी को डांटते देखा है कि क्यों रे हरामजादे, तुझे कल मेरी तरफ देख कर बोलना था और तू देख रहा था मेरी पत्नी की तरफ! ... पत्नी वहां देखने वालों में, दर्शकों में बैठी होगी।... अगर दुबारा यह हरकत की, चटनी बना दूंगा। यह असली नाटक! इसको देखना हो तो पर्दे के पीछे देखना चाहिए।
मेरे गांव में जो मैनेजर थे वे मुझसे पूछते कि यह... तुम्हें पीछे से क्यों देखना है? सारी बस्ती बाहर देखती है, एक अकेले तुम हो जो कहते हो कि मुझे पीछे बैठ जाने दो! यहां पीछे क्या रखा है? मैंने कहाः तुम फिकर न करो। इससे मुझे बड़े गहरे सूत्र मिलते हैं।
जिंदगी को जरा गौर से देखो। जरा पर्दे उठा कर देखो।.जरा ऊपर-ऊपर के जो ढांचे हैं, इनके भीतर झांको और तुम भी कहोगे यही--
सांचा तू गोपाल, सांच तेरा नाम है।
जहंवां सुमिरन होय, धन्य सो ठाम है।
सांचा तेरा भक्त, जो तुझको जानता।
तीन लोक को राज, मनैं नहिं आनता।
धन्य है वह भक्त जो तुझे सत्य जानता है! ध्यान रखना, मानने की बात नहीं है, यह जानने की बात है। मानने से कुछ नहीं होता। मानते तो सभी हैं। कोई हिंदू है, कोई मुसलमान, कोई ईसाई, कोई जैन--सभी मानते हैं। मगर मानने से कुछ संबंध नहीं है। जानना, अनुभव--केवल अनुभव ही मुक्तिदायी है।
सांचा तेरा भक्त, जो तुझको जानता।
ख्याल रखना, मलूकदास नहीं कहते कि जो तुझको मानता है। श्रद्धा पर जोर नहीं है, विश्वास पर जोर नहीं है, आस्था पर जोर नहीं है--अनुभव पर जोर है।

समस्त ज्ञानियों का, समस्त बुद्धों का अनुभव पर जोर है। और जिसने तुझे जान लिया उसे कोई तीन लोक का राज्य भी दे तो भी उसके मन को भाएगा नहीं।
झूठा नाता छोड़ि, तुझे लव लाइया।
सब झूठे नाते छोड़ देता है जो; सब झूठे नातों को झूठा मान कर जो अतिक्रमण कर जाता है--
सुमिरि तिहारो नाम, परम पद पाइया।।
वह तेरे नाम के स्मरण मात्र से, तेरी तरफ आंख उठाने मात्र से, तेरी तरफ झुक जाने मात्र से तुझे पा लेता है, परम पद पा लेता है। लेकिन यह बात केवल मानने से नहीं होगी। मानने से क्या होगा? मानने से तो बड़ी झूठी बातें चलती हैं।
मैंने सुना है, इलेक्ट्रिकल इंजीनियरिंग के एक छात्र से प्रोफेसर ने परीक्षा में प्रश्न कियाः बताओ स्विच दबाते ही पंखा कैसे चलने लगता है? विनम्रतापूर्वक छात्र बोलाः सब भगवान की कृपा है!
ऐसे भगवान के मानने वालों से कुछ हल होने वाला नहीं है। भगवान को जानना बड़ी और बात है। कीमत चुकानी पड़ती है! मानना सस्ता धंधा है। मां-बाप मानते हैं, भीड़ मानती है, सभी लोग मानते हैं--तुम भी मान लेते हो। मानना आसान मालूम पड़ता है। सब मानते हैं, न मानो तो अड़चन होगी; मानो, तो सुविधा रहेगी।
रूस में नास्तिक होने में सुविधा है, क्योंकि सभी लोग नास्तिक हैं। भारत जैसे देश में आस्तिक होने में सुविधा है, क्योंकि सभी लोग आस्तिक हैं। मगर भारत के आस्तिक और रूस के नास्तिकों में जरा भी भेद नहीं, रत्ती भर भेद नहीं--वे भी भीड़ को देख कर नास्तिक हैं, तुम भीड़ को देख कर आस्तिक हो। न तुम्हारी आस्तिकता में कोई दम है, न उनकी नास्तिकता में कोई दम है।
व्यक्ति को खोज करनी चाहिए। अपनी ही खोज से आगे बढ़ना चाहिए।
जिन यह लाहा पायो, यह जग आइकै।
जिसने तुझे पा लिया इस जग में, उसने ही जग का उपयोग किया।
उतरि गयो भव पार, तेरो गुन गाइकै।
फिर उसे दुबारा जग में आने की जरूरत न रही। जिसने पाठ पढ़ लिया, वह फिर दुबारा इस स्कूल में क्यों लौटे! जो परीक्षा उत्तीर्ण हो गया, वह क्यों दुबारा पाठशाला में आए!
तुही मातु तुही पिता, तुही हितु बंधु है।
कहत मलूकदास, बिना तुझ धुंध है।।
तेरे बिना सब धुंध है, अंधकार है।
तुम्हारे पंडित-पुरोहित तुम्हें इस परमात्मा को न दे सकेंगे। उपदेश
तो बहुत दे सकते हैं। उन्हें उपदेश देने की खुजली सवार है। मिल भर जाए कोई, वे उसको पकड़ कर उपदेश देने लगते हैं।
"बचाओ! बचाओ!" कवि ने कुएं में झांक कर देखा, आदमी डूब रहा था। झट से उसे बाहर निकाला।
"आपका आभार कैसे चुकाऊं! आपने मुझे डूबने से बचाया, नया जीवन दिया!"
"मेरी कविताएं सुन लीजिए, उपकार से उऋण हो जाएंगे"--कवि ने कहा।
"पहले क्यों नहीं बताया कि आप भी कवि हैं? एक कवि की कविताएं सुन कर ही
तो मैं कुएं में कूद पड़ा था।"
"वह कवि कहां है?"
"इसी कुएं में है, मेरी तलाश कर रहा है।"
"फिर ठीक है, बच कर कहां जाएगा! जी भर कर कविताएं सुनाऊंगा।" यह कह कर दूसरे कवि ने भी कुएं में छलांग लगा दी।
ये तुम्हारे कवि, ये तुम्हारे पंडित, ये तुम्हारे ज्ञानी, ये तुम्हारे दार्शनिक तलाश में हैं--कोई मिल जाए! कूड़ा-कचरा उनकी खोपड़ी में इकट्ठा है, तुम्हारी खोपड़ी में डाल दें। इनसे नहीं होगा। किसी सदगुरु के साथ बैठना होगा जिसने जाना हो, जिसने जिया हो, जिसके भीतर की ज्योति जगी हो--तो उसके पास आकर तुम्हारा बुझा दीया भी जल उठ सकता है। यह सैद्धांतिक चर्चा नहीं है परमात्मा; यह जीवन का रूपांतरण है; यह आमूल क्रांति है। कौन मिलावै जोगिया हो, जोगिया बिन रह्यो न जाई।

कौन मिलाएगा उस परम परमात्मा से? कोई जोगिया, कोई सदगुरु, कोई परम योगी--जो मिल गया है! योग का अर्थ होता हैः मिलन। जोगिया का अर्थ होता हैः जो मिल चुका, जो परमात्मा से एक हो गया है।
कौन मिलावै जोगिया हो, जोगिया बिन रह्यो न जाई।
मैं जो प्यासी पीव की, रटत फिरौं पिव पिव।।
घूमती फिरती हूं प्यासी, चिल्लाती हूं प्यारे को, पुकारती हूं पिया को; मगर कौन मुझे दिखाए राह, कौन मुझे सुझाए राह; कौन मेरा हाथ पकड़े? वही-- जिसने परमात्मा को जाना हो! शास्त्र जाननेवाले बहुत मिल जाएंगे, उनसे सावधान रहना! वे तोतों से ज्यादा नहीं हैं। सदगुरु तलाशो।
सदगुरु की तलाश परमात्मा की तलाश में अनिवार्य चरण है। उसके बिना कोई परमात्मा तक नहीं पहुंचता। उस पार जाना है तो नाव चाहिए। नाव की बातें करनेवालों से मत उलझे रहना। बहुत हैं जो नाव की बातों में ही लगे हैं कि नाव ऐसी होनी चाहिए, कि नाव वैसी होनी चाहिए, कि नाव ऐसी होती है, कि पहले जमाने में नाव ऐसी होती थी, कि अब कहां नाव, वह तो सतयुग में हुआ करती थी! जो शास्त्रों की ही बातें कर रहे हैं वे नाव की बातें कर रहे हैं। नाव शब्द में चढ़ कर तुम पार नहीं उतर सकते, बुरी तरह डूबोगे। सदगुरु चाहिए!
सदगुरु कौन है? जिसके वचन आप्त हैं। जो अपने प्रमाण से बोलता है। जो कहता हैः मैंने जाना है, वह कह रहा हूं। और जिसके पास बैठ कर तुम्हें अनुभव होने लगे, जिसकी तरंग तुम्हें छूने लगे, तुम्हारे हृदय की वीणा के तार झनझनाने लगें और तुम्हें लगने लगे कि तुम जो सुन रहे हो वह सिर्फ खोपड़ी से निकली हुई बात नहीं है, हृदय से उठी हुई उमंग है, सुगंध है। फिर उस द्वार से मत हटना।
जो जोगिया नहिं मिलिहै हो, तो तुरत निकासूं जीव।
मलूकदास कहते हैंः अगर नहीं मिला सदगुरु, तो मैं अपने जीवन को खो देने
को तैयार हूं! सब दांव पर लगा दूंगा मगर सदगुरु को पाकर रहूंगा।
गुरुजी अहेरी मैं हिरनी, ...
कहते हैं कि हे सदगुरु, मैं तो एक हिरन की भांति हूं, आप हैं अहेरी, शिकारी!
... गुरु मारैं प्रेम का बान।
चढ़ाओ अपने धनुष पर प्रेम का बाण, छेद दो मेरे प्राण!
जेहि लागै सोई जानई हो, और दरद नहिं जान।
और यह प्रेम की जो पीड़ा है, उसको ही पता चलती है जिसको यह प्रेम का बाण लगता है। इसलिए तुम्हें अगर सदगुरु मिल गया और तुम्हारे प्राण अगर उसके प्रेम के बाण से छिद गए, तो तुम किसी को समझा न सकोगे; तुम किसी को बता न सकोगे; तुम किसी को प्रमाण न दे सकोगे। लोग तुम्हें पागल कहेंगे, दीवाना कहेंगे। लोग कहेंगेः तुमने गंवाया अपना होश। ठीक-ठाक थे, तुम्हें क्या हो गया? लेकिन तुम कोशिश भी मत करना औरों को समझाने की। वह कोशिश कभी सफल नहीं होती। हां, तुम्हारी धुन से कोई रंग जाए, कोई खोजी तुम्हारे आनंद को देख कर डोलने लगे, तो जरूर उससे अपने हृदय की बात कह देना। क्योंकि वही समझ सकता है, जो थोड़ा सा प्रेम की पीड़ा को अनुभव किया हो। जिसने स्वाद लिया हो मिठास का, उससे मिठास की बात करोगे तो समझ सकता है। जो सदा से जहर पीता रहा हो, उससे अमृत की बातें मत करना।
कहैं मलूक सुनु जोगिनी रे, तनहिं में मनहि समाए।
मलूकदास कहते हैं कि सुनो, ऐ योगियो, ऐ प्रेमियो, ऐ प्रेयसियो, ऐ जोगिनियो, सुनो!
तनहिं में मनहि समाए।
वह जो परमात्मा है, कहीं बाहर नहीं है--इसी मन में, इसी तन में समाया हुआ है। मगर कोई उसका पता देने वाला मिल जाए!
हम अपने भीतर जाने का मार्ग ही भूल गए हैं। बाहर जाने के सब रास्ते हमें पता हैं, लेकिन भीतर जाने का हमें कोई रास्ता पता नहीं रहा है।
सदियों से नहीं गए हैं, जन्मों से नहीं गए हैं, रास्ता अवरुद्ध हो गया है; शायद द्वार है, बंद हो गया है, दीवाल बन गया है।
तेरे प्रेम के कारने जोगी, सहज मिला मोहिं आए।

लेकिन सदगुरु से प्रेम हो जाए तो उसके प्रेम के कारण वह जो तुम्हारे भीतर ही छिपा है, प्रकट होने लगता है। जैसे कली खुल जाए, फूल बन जाए, जैसे फूल से सुगंध उड़े। जैसे तुम्हारे भीतर दीया है और गुरु की ज्योति उस दीये को लपट पकड़ा दे। भभक उठे तुम्हारे भीतर की ज्योति भी, तुम भी प्रकाशित हो जाओ।
मलूकदास के ये वचन अति प्यारे हैं! इन वचनों को तुम शब्द ही मत मानना,
ये सत्य के अनुभव से आविर्भूत हुए हैं। लेकिन इन शब्दों के सत्य को तुम तभी जान पाओगे जब तुम भी प्रेम में डूबो, भक्ति में डूबो, ध्यान में उतरो। अब तेरी शरण आयो राम! जब तुम भी कह सको कि देख लिया जीवन बहुत, नहीं कुछ पाया, अब आ गया हूं तुम्हारी शरण!
और शरण आने की शर्त जानते हो! --रामदुवारे जो मरे!

आज इतना ही।

रामदुवारे जो मरे
दूसरा प्रवचन

तुम अभी थे यहां

पहला प्रश्न:
ओशो!
तुम अभी थे यहां, तुम अभी थे यहां।
तुम्हारी सांसों की गंध इन हवाओं में है। प्यारे कदमों की आहट फिजाओं में है। तुम्हें देखा किए ये जमीं-आसमां
तुम अभी थे यहां, तुम अभी थे यहां।
तुम्हें देखा तो सांसें रुकी ही रहीं
मेरे मालिक! ये आंखें झुकीं ही नहीं,
होश आते ही तुम छुप गए हो कहां!
तुम अभी थे यहां, तुम अभी थे यहां।

मीरा! परमात्मा को जानना हो, पाना हो, तो एक बहुत विरोधाभासी होश को सम्हालना होता है। विरोधाभासी इसलिए कि एक तरफ से वह होश है और दूसरी तरफ से बेहोशी भी। एक ऐसी अलमस्ती, एक ऐसी मदमस्ती, जो मूर्च्छा नहीं है, जो जागरण है। जिसमें भीतर एक ध्यान का दीया जल रहा है। जिसमें होश की ज्योति है। प्रेम विरोधाभास की इस कला को जानता है। प्रेम ही कुंजी है उसके द्वार पर लगे ताले को खोल लेने की। प्रेम जानता है कैसे डगमगाओ और फिर भी कैसे भीतर संभले रहो। प्रेम जानता है कि कैसे आंख बंद करो और फिर भी दर्शन को उपलब्ध हो जाओ। प्रेम जानता है कि इंच भर न चलो और हजारों मील की यात्रा पूरी हो जाए।
तर्क इसे नहीं समझ पाएगा। विचार के लिए यह अगम्य है। पर प्रेम के लिए सहज, सुगम।
ऐसा होश चाहिए, जिसमें बेहोशी का रंग हो। ऐसी बेहोशी चाहिए, जिसमें होश का ढंग हो। और जब तक ये दोनों मिल न जाएं तब तक कुछ अधूरा है, कुछ चूका- चूका रहेगा। बहुत लोग हुए हैं जिन्होंने होश साध लिया; लेकिन बेहोशी से वंचित थे। तो इनके होश में मरुस्थल तो था, उपवन के फूल न खिले। एक शांति थी, एक सन्नाटा था, लेकिन उस शांति में और सन्नाटे में मरघट की छाप थी--जीवन का राग नहीं, जीवन का रंग नहीं। वसंत नहीं--पतझड़; मधुमास नहीं--रिक्त-रिक्त, शून्य-शून्य, खाली-खाली--भरापन नहीं। बहुत लोगों ने प्रेम को छोड़ कर, प्रेम के मार्ग को छोड़ कर अपने को एकमात्र होश के साधने में संलग्न किया है। होश सध भी जाए तो भी पूरा नहीं होगा। नृत्य नहीं आएगा उस होश में। उस होश में गीत नहीं जन्मेंगे, फूल नहीं खिलेंगे। और वह झील क्या जिसमें कमल न खिलें! और वह होश क्या जिसमें सुगंध न उठे! --नृत्य की, गीत की, उत्सव की।
फिर कुछ और लोग हैं जिन्होंने बेहोशी साध ली, मस्ती साध ली, लेकिन होश
को भूल गए। तो उनके जीवन में मस्ती तो आयी, नाच भी आया, लेकिन उनके पैर लड़खड़ाते हुए। मस्ती उनकी ऐसी जैसी शराबी की। मस्ती उनकी ऐसी जैसे मूर्च्छित व्यक्ति की। हां, जीवन का थोड़ा सा रंग-रूप वहां; लेकिन परम जीवन की कोई छाप नहीं। उनकी मस्ती मूर्च्छा का ही दूसरा नाम। उनकी मस्ती एक तरह की विक्षिप्तता। ऐसी मस्ती से बुद्धत्व पैदा नहीं होता। ऐसी मस्ती से तुम गिरते हो, उठते नहीं। ऐसी मस्ती तुम्हें पंख नहीं दे सकती; पंख उसकी सामर्थ्य के बाहर हैं।
बहुत थोड़े से लोग हुए हैं जिन्होंने मस्ती को और होश को साथ-साथ साधा। मैं चाहता हूं मेरा संन्यासी उन्हीं थोड़े से लोगों में से हो। एक हाथ मस्ती सधे, एक हाथ होश सधे। दोनों तुम्हारे भीतर मिलें। तुम संगम बनो। और तुम्हारे भीतर अभूतपूर्व घटित होगा फिर। रहस्यों का रहस्य। क्योंकि गा भी सकोगे तुम और गीत मूर्च्छा के नहीं होंगे। और नाच भी सकोगे तुम लेकिन पैर तुम्हारे लड़खड़ाएंगे नहीं। होश भी होगा तुम्हारे भीतर और मरघट का सन्नाटा नहीं। उपवन का संगीत, खिलते फूल और पक्षियों के गीत और मोर के नाच

और पपीहे की पुकार और कोयल की कुहू-कुहू। जहां इन दोनों का मिलन होता है, वहीं संपूर्णता प्रकट होती है, समग्रता प्रकट होती है। इसलिए मैं तुमसे संसार छोड़ने को नहीं कहता, संसार को आत्मसात कर लेने को कहता हूं। तुम्हें भगोड़ा नहीं बनाना चाहता, तुम्हें पलायनवादी नहीं बनाना चाहता, तुम्हें विजेता बनाना चाहता हूं। तुम जीवन के पार जाओ जरूर, लेकिन जीवन से भागना मत! इस अनूठे गणित को समझ सकोगे तो संन्यास की मौलिक आधारशिला समझ में आ जाएगी।
तूने लिखा है:
"तुम्हें देखा तो सांसें रुकी ही रहीं... "
रुक ही जानी चाहिए। मन ही रुक जाता है। सदगुरु को जिसने देखा, पहचाना, उसे परमात्मा के लिए झरोखा मिल गया। सदगुरु कुछ और नहीं सिर्फ झरोखा है-- एक खिड़की। झरोखे को पकड़ कर मत रुक जाना। खिड़की की चौखट की पूजा मत करने लगना। खिड़की की चौखट से जो उलझ गया, वह आकाश से वंचित रह जाएगा। खिड़की तो केवल द्वार है। उससे झांको आकाश में। अनंत आकाश और उसके अनंत तारे तुम्हारे हैं। खिड़की तो सिर्फ अवसर है। और जिसकी आंखें आकाश पर उठ जाएंगी, उसकी श्वासें रुक जाएंगी। रुक जाएंगी श्वासें इसलिए कि अवाक हो जाएगा हृदय! धक से रह जाएगा हृदय! विस्मयविमुग्ध, रसविभोर। ख्याल ही न रहेगा श्वास लेने का। यह गहराई सुषुप्ति से भी ज्यादा गहरी है। क्योंकि सुषुप्ति में भी श्वास नहीं रुकती। स्वप्न रुक जाते हैं, लेकिन श्वास चलती रहती है।
हमने चार अवस्थाएं खोजी हैं पूरब में। एक जिसको हम साधारणतः जाग्रत कहते हैं। वह सबसे नीची अवस्था है। उससे ऊपर है स्वप्न। तुम थोड़े चौंकोगे। तुम्हारे तथाकथित जाग्रत से स्वप्न ऊंची अवस्था है। क्योंकि जाग्रत में तो तुम बेईमान होते हो, धोखेबाज होते हो, पाखंडी होते हो। तुम सब तरह से ऐसा दिखलाना चाहते हो जैसे तुम नहीं हो। और वह छिपा लेते हो जो तुम हो। और दूसरों से ही नहीं, अपने से भी छिपा लेते हो। धोखा इतना गहरा हो जाता है कि और तो और खुद भी धोखे में आ जाते हो। जाल इतना फैला लेते हो कि और कोई फंसेगा फंसेगा, न फंसेगा न फंसेगा, लेकिन तुम निश्चित ही फंस जाते हो। मकड़ी खुद ही अपने जाल में फंस गई हो जैसे। निकलने का रास्ता नहीं सूझता। तुम्हारा होश तो धोखाधड़ी से भरा है।
आधुनिक मनोविज्ञान पूरब की इस परम खोज को अब स्वीकार करता है। इसलिए मनोवैज्ञानिक के पास अगर तुम जाओ तो वह तुम्हारे जागरण के संबंध में कुछ भी न पूछेगा, हां, तुम्हारे स्वप्नों के संबंध में पूछेगा। क्योंकि स्वप्न कम से कम स्वाभाविक हैं। स्वप्नों में कम से कम तुम बेईमानी नहीं कर सकते। स्वप्नों में कम से कम तुम पाखंडी नहीं होते। जागरण में शायद तुमने उपवास किया हो, लेकिन स्वप्न में तुमने सब तरह के भोजन भोगे। वह जो तुमने दबा लिया था जागरण में, स्वप्न में उभर आया। जागरण में चाहे तुम संन्यासी होओ, लेकिन स्वप्न में तुम स्वर्णों के महल निर्मित करते हो, उनमें निवास करते हो। तुम्हारे स्वप्न तुम्हारी अंतरात्मा के ज्यादा करीब मालूम होते हैं। कम से कम तुम्हारी वस्तुस्थिति के ज्यादा स्पष्ट द्योतक हैं। इसलिए मनोवैज्ञानिक तुम्हारे जागरण को तो मूल्य ही नहीं देता। तुम्हारे जागरण को तो बकवास मानता है। तुम्हारे स्वप्नों में विचार करता है। तुम्हारे स्वप्नों की व्याख्या करता है।
पूरब के मनीषी हजारों साल से इस सत्य को जानते रहे हैं, कि मनुष्य धोखेबाज है, लेकिन सपने में उसका वश नहीं चलता। सपने में असलियत जाहिर हो जाती है। सपने में सब प्रकट हो जाता है जैसा वह है।
सपने से भी ऊपर अवस्था है सुषुप्ति की। जब स्वप्न भी समाप्त हो जाते हैं तब केवल एक गहन निद्रा रह जाती है। तुम्हें अपना होश भी नहीं होता, तुम हो या नहीं इसका भी पता नहीं होता... सुषुप्ति में कोई तुम्हें मार डाले तो तुम्हें पता भी न चलेगा। इसलिए जब शल्य-चिकित्सक तुम्हारा आपरेशन करता है, शल्य-क्रिया करता है, तो तुम्हें पहले सुषुप्ति में ले जाता है। अनस्थेसिया, क्लोरोफार्म। तुम्हें बेहोश करने की दवा देता है कि तुम सुषुप्ति में चले जाओ। ताकि फिर तुम्हारी हड्डी काटी जाएं, हाथ काटे जाएं,

पैर काटे जाएं, तुम्हें पता ही न चलेगा। तुम्हें मार भी डाला जाए तो तुम्हें पता नहीं चलेगा। इतनी गहरी अवस्था हो जाती है तुम्हारी। लेकिन फिर भी श्वास बंद नहीं होती। श्वास चलती रहती है।
श्वास तो चौथी अवस्था में बंद होती है।
सुषुप्ति के ऊपर भी हमने एक अवस्था खोजी है--जो केवल हमने खोजी है। जो दुनिया के किसी दूसरे देश ने नहीं खोजी। इस दुनिया को अगर हमारा कुछ दान है, मनुष्य के चैतन्य-विकास को अगर हमारी तरफ से कुछ भेंट है, तो ये कुछ छोटी चीजें हमारी भेंट हैं। छोटी दिखाई पड़ती हैं, लेकिन जो उनको समझते हैं, वे कहेंगे--हमने बड़ी से बड़ी संपदा मनुष्य की चेतना को दी है... उस चौथी अवस्था को हमने सिर्फ चौथी अवस्था कहा है। उसे कोई नाम नहीं दिया। उसे कहा हैः तुरीय। तुरीय का अर्थ होता है: चौथी। उसे विशेषण नहीं दिया; क्योंकि वह तीनों के पार है। हां, तुरीय अवस्था में श्वास ठहर जाती है। इसलिए जैसे- जैसे तुम ध्यान में गहरे उतरोगे, तुम चकित होओगे; कभी-कभी ऐसे क्षण आएंगे ध्यान में जब तुम्हें लगेगा जैसे श्वास बंद हो गई। घबड़ाना मत! उससे तुम्हारी मृत्यु नहीं होगी। क्योंकि इस शरीर की श्वास तो बंद हो जाती है-- वह बंद ही तब होती है जब तुम्हारे भीतर और एक सूक्ष्म श्वास का अवतरण हो जाता है, और भी एक सूक्ष्म जीवनधारा तुममें बहने लगती है, परमात्मा तुममें प्रवेश करने लगता है, तभी यह श्वास बंद होती है। नहीं तो यह श्वास चलती ही रहेगी।
ध्यान में यदि श्वास बंद हो जाए तो भयभीत न होना... मेरे पास बहुत मित्र आते हैं, बहुत भयभीत आते हैं कि क्या हो रहा है? कि जब भी हम ध्यान की गहराई में जाते हैं तो एकदम ऐसा लगता है कि श्वास बंद हो गई, घबड़ा कर लौट आते हैं। डर जाते हैं, जल्दी-जल्दी श्वास लेने लगते हैं, कि कहीं मौत न हो जाए। महत अवसर से चूक गए। श्वास बंद हो जाए ध्यान में, इससे बड़ा कोई सौभाग्य नहीं। क्योंकि श्वास जब ध्यान में बंद होती है तो उसका अर्थ ही इतना है कि अब इस छोटे उपाय की जरूरत नहीं रही जीवन को। जीवन महाजीवन से जुड़ गया है। अमृत से जुड़ गया है। परमात्मा से संयुक्त हो गया है।
छोटा बच्चा जब मां के पेट में होता है तो खुद श्वास नहीं लेता, मां श्वास लेती है। उसी श्वास से बच्चे को जीवन देने वाली वायु मिलती है। इसलिए तो जब बच्चा पैदा होता है मां के गर्भ से तो श्वास लेता पैदा नहीं होता। सबसे पहला काम होता है चिकित्सक का कि किसी तरह उस बच्चे को श्वास लेने के लिए मजबूर कर दे। चिकित्सक बच्चे को पैर पकड़ कर उलटा लटका देते हैं। उस उलटे लटकाने के पीछे राज है। क्योंकि नौ महीने मां के पेट में श्वास नहीं ली। मां श्वास लेती थी। और जब मां ही श्वास लेती थी तो बच्चा तो मां का हिस्सा था। उसे अलग से श्वास लेने की कोई जरूरत न थी। तो इन नौ महीने में उसकी पूरी श्वास की जो प्रक्रिया है, वह बंद थी, और उसके श्वास की जो नलिका है, वह भी बंद थी। उसने काम ही नहीं किया था; तो हो सकता है उसकी श्वास की नलिका में कोई अवरोध हो, बलगम भरा हो। तो उलटा लटकाता है चिकित्सक, ताकि कोई बलगम इत्यादि श्वास की नलिका में भरा हो तो निकल जाए... और बच्चे की नाक से शुरू-शुरू में बलगम निकलता है; श्वास नलिका खाली हो जाती है। अगर बच्चा दो-तीन मिनट के भीतर रो न दे, तो घबड़ाहट पैदा हो जाती है कि बच्चा जिंदा नहीं है।
रोना बच्चे के श्वास लेने का पहला प्रयोग है। रोकर वह यह घोषणा कर रहा
है कि अब मैं अलग हूं। और अलग होना रोने की ही घोषणा है। अलग होने में ही तो हमारे सारे जीवन का दुख है; हमारे जीवन की पीड़ा है।
कथाएं कहती हैं कि सिर्फ एक आदमी हंसता हुआ पैदा हुआ और वह था-- जरथुस्त्र। जरथुस्त्र हंसता हुआ पैदा हुआ। सारी मनुष्य जाति के इतिहास में एक व्यक्ति! जरूर महत्वपूर्ण है बात। जरथुस्त्र हंसता हुआ पैदा हुआ होगा, क्योंकि वह परमात्मा को जानता हुआ पैदा हुआ। मां उसका जीवन नहीं थी, परमात्मा उसका जीवन है।... लेकिन मैं मानता नहीं कि यह घटना ऐतिहासिक होगी। यह तथ्य नहीं हो सकता। यह केवल जरथुस्त्र के संबंध में एक प्रतीक है कि जरथुस्त्र परमात्मा को जानता ही पैदा हुआ। इस बात को कहने के लिए कहा कि हंसता हुआ पैदा हुआ। हम तो रोते ही पैदा होते हैं और रोते ही मरते हैं।

हम तो रोते पैदा हों और हंसते मर जाएं तो भी बहुत। जरथुस्त्र हंसते पैदा हुआ, हंसते मरा। वह परम जीवन की कल्पना है। जीवन एक उत्सव ही उत्सव है। मां के पेट में बच्चा श्वास नहीं लेता। पैदा होने के दो-तीन मिनट के बाद श्वास लेता है। ऐसे ही जब ध्यान की अवस्था आती है तब तुम परमात्मा के गर्भ में प्रवेश कर रहे हो; फिर श्वास बंद हो जाती है। जब मां ही काफी थी श्वास लेने को, तो क्या तुम सोचते हो परमात्मा काफी नहीं है श्वास लेने को? वह पर्याप्त है। बूंद सागर में समा गई, अब अपनी क्या चिंता है? परमात्मा में प्रवेश होते ही तुम्हारी श्वास बंद हो जाती है, क्योंकि उसकी श्वास तुम्हारे भीतर बहने लगती है। सदगुरु के समक्ष भी यह घटना कभी- कभी घटेगी, क्योंकि ध्यान बंध जाएगा। सदगुरु के पास ध्यान न बंधे तो और कहां ध्यान बंधेगा? सदगुरु के पास सुर-ताल न मिले तो और कहां सुर-ताल मिलेगा? एक जुगलबंदी बंध जाती है। सदगुरु तुम्हारे भीतर श्वास लेने लगता है। इसलिए, मीरा, ऐसा हो सकता है। तू कहती है--
"तुम्हें देखा तो सांसें रुकी ही रहीं... "
श्वास रुक सकती है, ध्यान में। ध्यान किसी भी कारण से हो जाए। एक गुलाब के फूल को देखते-देखते ध्यान हो जाए, सुबह के सूरज को उगते देखते ध्यान हो जाए, एक पक्षी आकाश में उड़े और ध्यान हो जाए, तो भी श्वास रुक जाएगी। जब भी ध्यान होगा, श्वास रुक जाएगी। इसका एक बहुत दुष्परिणाम हुआ, इस अनुभूति का। कुछ लोग सोचने लगे कि अगर श्वास रुक जाए तो ध्यान हो जाए। तो योगी श्वास रोकने की कोशिश करते हैं: वह निपट मूढ़ता है! ध्यान होने से जरूर श्वास रुक जाती है, मगर श्वास रोकने से कोई ध्यान नहीं होता। श्वास रोकने से सिर्फ श्वास ही रुकेगी और कुछ नहीं होगा। तड़फोगे भीतर और कुछ नहीं होगा।
ध्यान रखना, सदा ध्यान रखना, उलटे चलने की कोशिश मत करना। तुम चलते हो
तो तुम्हारी छाया तुम्हारे पीछे चलती है। मगर तुम छाया के पीछे चलने की कोशिश मत करना। नहीं तो बड़ी मुश्किल में पड़ जाओगे। बड़े भटक जाओगे। ध्यान के पीछे-पीछे श्वास बंद हो जाती है। करनी नहीं पड़ती, सहज हो जाती है। और सभी को ऐसा अनुभव हुआ है। कभी किसी क्षण में, आकाश तारों से भरा हुआ देखा है और एक क्षण को तुम अवाक हो गए! अवाक का अर्थ क्या होता है? वाणी रुक गई, अवरुद्ध हो गई, ठगे रह गए। ठगे रहने का अर्थ क्या होता है? लुट गए जैसे; जैसे कुछ न बचा; मिट गए जैसे; खो गए जैसे।
फिल्म देखने जाते हो तुम। तुमने ख्याल किया? फिल्म देखने के बाद तुम्हारी आंखें क्यों थक जाती हैं? फिल्म के कारण नहीं। वैज्ञानिक कहते हैं, फिल्म देखने से आंख नहीं थकती। क्योंकि फिल्म देखो, या कुछ और देखो, देखना तो एक जैसा है। असली आदमियों को चलते रास्ते पर देखो कि छायाओं को चलते हुए पर्दे पर देखो, देखने में तो शक्ति उतनी ही लगती है। जब असली आदमियों को देख कर आंख नहीं थकती, तो तस्वीरों को देख कर कैसे थक जाएगी? लेकिन थकने का कारण कुछ और है। जब तुम फिल्म देखते हो तब तुम्हारी आंख का झपकना बंद हो जाता है, उसकी वजह से आंख थकती है। तुम ऐसे संलग्न हो जाते हो कि आंख झपकती ही नहीं। तुम भूल ही जाते हो कि आंख को झपकना है। और आंख न झपके तो थकेगी। क्योंकि झपकने से आंख को विश्राम मिलता है। झपकने से आंख को बीच-बीच में विराम मिलता है। झपकने से आंख ताजी रहती है--धूल पुछ जाती है। झपकने से आंख गीली बनी रहती है, आर्द्र बनी रहती है, सूख नहीं जाती। तीन घंटे बैठे रहोगे फिल्म में और आंख न झपकोगे तो आंख सूख जाएगी, धूल जम जाएगी। थकान उससे पैदा होती है।
फिल्म देखते-देखते आंख का झपकना रुक जाता है; तो आकाश के तारे देखते- देखते कभी आंख का झपकना नहीं रुक जाएगा? एक सुंदर संध्या, सूरज का डूबना, बादलों का रंगों से भर जाना, वर्षा के दिन, सावन का महीना, आकाश में इंद्रधनुष की मौजूदगी और आंखें झपकेंगी! श्वास चलेगी! यह सब अपने से बंद हो जाएगा। और जब भी कभी ऐसा हो जाता है, तभी तुम्हें आनंद की झलक मिलती है। आनंद की झलक इसलिए मिलती है कि थोड़ी देर को तुम्हारे भीतर का सारा व्यवसाय शांत हो जाता है। श्वास का भी व्यवसाय शांत हो जाता है। तुम जैसे रहे ही नहीं; तुम जैसे किसी परलोक में प्रवेश कर गए। सदगुरु के पास ऐसी घटना न घटे

तो वह तुम्हारा गुरु नहीं। होगा किसी और का। जिसको ऐसी घटना घटती हो, उसका होगा। अगर तुम मुझसे पूछो कि सदगुरु को कैसे पहचानें? तो बहुत पहचानों में एक पहचान बुनियादी यह भी है कि जिसके पास बैठे-बैठे तुम्हारी श्वास रुक जाए। तो समझ लेना झरोखा करीब है; भाग मत जाना, झरोखे को जरा टटोलना, रुके रह जाना। तू कहती है--
"तुम्हें देखा तो सांसें रुकी ही रहीं
मेरे मालिक! ये आंखें झुकीं ही नहीं,"
पलकें न झुकेंगी, आंखें न झुकेंगी, सब ठगा रह जाएगा, सब थिर हो जाएगा। सत्संग का अर्थ ही यही है, मीरा! कि जहां सब थिर हो जाए। जहां शिष्य ऐसा लीन हो जाए कि उसका अलग होना न बचे। जहां सदगुरु तुम्हारी आंख हो, जहां सदगुरु तुम्हारे हृदय की धड़कन हो, जहां सदगुरु तुम्हारे प्राणों का आधार बन जाए। "मेरे मालिक! ये आंखें झुकीं ही नहीं,
होश आते ही तुम छुप गए हो कहां!
तुम अभी थे यहां, तुम अभी थे यहां।"
लेकिन होश आते ही यह बात खो जाएगी। होश आया अर्थात अहंकार वापस लौटा। तुम्हारे होश का इतना ही अर्थ होता है। होश आया यानी तुम वापस आए। होश आया अर्थात तुमने अपने को झकझोरा और कहा कि अरे, मैं कहां खो गया था? मैं किस बात में डूब गया था? यह मुझे क्या हो गया था? यह मैं कैसा ठगा सा, ठहरा सा रह गया था? यह श्वासें बंद क्यों हुईं? यह आंखें झपकीं क्यों नहीं? होश का तुम्हारे लिए एक ही अर्थ है: तुम्हारी वापसी; तुम्हारा फिर लौट आना। यह असली होश नहीं है। यह अहंकार का होश है। और इसलिए तत्क्षण संबंध टूट जाएगा। सदगुरु से भी, सौंदर्य से भी, सत्य से भी, आनंद से भी, परमात्मा से भी। तत्क्षण संबंध टूट जाएगा। वह जो बंध रहा था सेतु, वह जो धागे प्रेम के, वह जो ढाई आखर के धागे फैल रहे थे, टूट जाएंगे, तत्क्षण टूट जाएंगे। बड़े महीन हैं, बड़े नाजुक हैं। फिर वापस तुम अपने अहंकार में आ गए। फिर श्वास चलने लगेगी; फिर आंख झपकने लगेगी; फिर वही दुख, फिर वही पीड़ा, फिर वही चिंता, फिर वही संताप; फिर सब ऊहापोह शुरू हो गया--विचार भागने लगे, भावनाएं उठने लगीं, तरंगायित हो गया चित्त फिर से; झील जो अभी क्षण भर को शांत हो गई थी, मौन हो गयी थी, फिर तूफान उठ आया, फिर आंधी आ गई। इसलिए संबंध छूट जाएगा। वह जो क्षण भर को झलक मिली थी खो जाएगी; कहां खो गई, पता भी न चलेगा। पीछे ऐसा भी लगेगा कि कहीं भ्रांति तो नहीं थी! कहीं मन को कोई धोखा तो न हुआ था! लेकिन सच्चाई यह है कि वही सत्य था, मन को धोखा अब हो रहा है। मगर धीरे-धीरे, मीरा! बार-बार ऐसा होगा। और जब बार-बार होगा तो देर तक ठहरेगा! जब बार-बार होगा तो गहराई बढ़ेगी। जब बारबार होगा तो यह अनुभव प्रगाढ़ होने लगेगा कि सत्य क्या है, असत्य क्या है; रोशनी क्या है, अंधकार क्या है। और जैसे-जैसे यह प्रगाढ़ता अनुभव की बढ़ती है, वैसे-वैसे एक घड़ी आती है एक दिन जब तुम बिल्कुल ही विसर्जित, समर्पित, कहां खो गए, पग-चिह्न भी न मिलेंगे। बुद्ध ने कहा है, ज्ञानी ऐसे खो जाता है जैसे पक्षी आकाश में उड़ते हैं और उनके पैरों के पग-चिह्न नहीं बनते। ऐसे ही ज्ञानी खो जाता है। पक्षियों के पग-चिह्नों की भांति। बुद्ध ने कहा है कि जैसे कोई पानी पर अक्षर लिखे। लिख भी नहीं पाता और खो जाता है। ऐसे ही ज्ञानी खो जाता है। मगर यह खो जाना पा जाने की प्रक्रिया है। यह मिटना होने की सीढ़ी है। यह शून्य होना पूर्ण होने का द्वार है।

दूसरा प्रश्न: ओशो, संसार में मुझे बुराई ही बुराई क्यों दिखाई देती है?

कृष्णानंद! संसार तो दर्पण है। संसार में जो दिखाई देता है, वह अपना
ही चेहरा है। संसार तो प्रतिध्वनि है। संसार में जो सुनाई पड़ता है, वह अपनी ही आवाज है। हम संसार में वही पाते हैं, जो हम हैं; जैसे हम हैं।
एक शराबी किसी अजनबी गांव में आए। आते ही शराबघर का पता पूछेगा। दस-पांच दिन के भीतर ही तुम पाओगे कि गांव के सारे शराबियों से उसकी पहचान हो गई, दोस्ती हो गई। जैसे गांव में कोई और रहता ही नहीं। शराबियों से ही उसका

मिलन होगा। एक जुआरी आए, जुए के अड्डे पर पहुंच जाएगा। जुआरियों से दोस्ती बन जाएगी। जैसे कोई चुंबक खींचता हो। उसी गांव में सत्संग भी चलता होगा, मगर जुआरी को सत्संग का पता ही नहीं चलेगा। सत्संग के पास से गुजर जाएगा और कानोंकान आहट भी न मिलेगी। फिर उसी गांव में कोई संन्यासी आए, उसे पता भी न चलेगा कि गांव में कोई शराबघर भी है; कि गांव में कोई जुआरी भी रहते हैं।
झेन फकीर रिंझाई कंबल ओढ़ कर बैठा था। देखता था पूर्णिमा का चांद। साधारण रात न थी, असाधारण थी; और भी असाधारण थी, क्योंकि इसी पूर्णिमा की रात्रि को इसी वैशाख की पूर्णिमा को बुद्ध को ज्ञान उपलब्ध हुआ था। इसी पूर्णिमा की रात को बुद्ध पैदा हुए। इसी पूर्णिमा की रात उनके जीवन में भी चांद उतरा, प्रकाश उतरा। और इसी पूर्णिमा की रात वे महापरिनिर्वाण में प्रविष्ट हुए। उन्होंने देह छोड़ी। रिंझाई बैठा है, सर्द रात, कंबल ओढ़े, देखता है चांद को, आनंद-विभोर है, मग्न है--श्वासें उसकी बंद रही होंगी; आंखें एकटक चांद को देखती होंगी। इस चांद ने जैसे बुद्ध को उसे बहुत-बहुत याद दिला दिया है। तभी एक चोर उनके झोंपड़े में घुस आया। रिंझाई ने चोर को देखा, जाकर चोर को पकड़ा और कहा कि भाई, क्षमा कर! चोर तो बहुत घबड़ाया। क्षमा तो उसे मांगनी चाहिए। वह तो छूट के भागने लगा। रिंझाई ने कहा, रुक, ऐसे मत जा! खाली हाथ जाएगा तो मैं जिंदगी भर दुखी रहूंगा। यह कंबल लेता जा! और तो मेरे पास कुछ है नहीं। कंबल दे दिया चोर को। रिंझाई नंगा था कंबल के भीतर-- कुछ और तो था नहीं। चोर झिझका भी। चोर भी झिझका! इस प्यारे फकीर से इसका कंबल ले लेना और इसको नंगा छोड़ जाना इस ठंडी रात में, उसने ना-नुच की, लेकिन रिंझाई ने कहा कि नहीं मानूंगा। मुझे बड़ा दुख होगा। और यह कोई बात हुई? इतना बड़ा सौभाग्य दिया मुझे--आज तक कोई चोर मेरे झोंपड़े पर नहीं आया। चोर जाते हैं धनपतियों के घर! तूने मुझे धनपति बना दिया। चोर जाते हैं राजाओं, सम्राटों के घर! तूने आज मुझे राजा और सम्राट होने का मजा दे दिया। तूने जो मुझे दिया है, वह बहुत ज्यादा है, कंबल तो कुछ भी नहीं। आज लग रहा है कि हम भी कुछ हैं। चोर इधर भी आने लगे! तू देख, ले जा! और आगे से ख्याल रख, यह कोई ढंग नहीं! यह कोई शिष्टाचार है? अरे, दो-चार दिन पहले खबर करता तो हम कुछ इंतजाम कर लेते। दुबारा जब आए, तो एक चार दिन पहले एक पोस्टकार्ड ही डाल देना। कुछ तेरे लिए आयोजन कर लेते। इतने दूर तू आया गांव से, सर्द रात्रि, एक कंबल ही दे रहा हूं, मेरी आंखों में आंसू हैं, नहीं मत कर!
ऐसे आदमी को क्या नहीं करो और क्या हां भरो, चोर तो कुछ किंकर्तव्यविमूढ़ हो गया। उसकी तो समझ में ही नहीं आया। बहुत देखे थे उसने लोग, बहुतों घरों में चोरी की थी, बहुत बार पकड़ा भी गया था, मगर यह आदमी अनूठा था! यह आदमी पहली दफा मिला था। भागा लेकर कंबल! जैसे ही बाहर जा रहा था कि रिंझाई ने आवाज दी कि ठहर, कम से कम धन्यवाद तो दे दे, शिष्टाचार तो सीख। कम से कम इतनी ही बात तो याद रख! और दरवाजा बंद कर दे। जब आया था दरवाजा बंद था, तू खोल कर भीतर आया; अब दरवाजा फिर बंद कर दे और धन्यवाद देकर अपने रास्ते पर लग! दुबारा जब आए, पहले खबर कर देना। उसने जल्दी से धन्यवाद दिया और दरवाजा बंद किया। जब रिंझाई ने उसे आवाज दी कि ठहर, तो उसकी छाती धक से हो गई कि यह आदमी बड़ा अजीब है! यह क्या कर गुजरे, कुछ कहा नहीं जा सकता!
फिर वह पकड़ा गया अदालत में, किसी और चोरी के मामले में। और वह कंबल भी पकड़ा गया। वह कंबल तो जाहिर था। वह तो पूरे जापान में जाहिर था। वह तो सभी को पता था कि यह रिंझाई का कंबल है। रिंझाई तो इतना प्रसिद्ध था कि सम्राट उसके चरणों में आते थे। वह कंबल किसको पता नहीं था? सम्राटों ने जिस कंबल में रिंझाई को देखा हो, लोगों ने, हजारों लोगों ने जिस कंबल में देखा हो-- मजिस्ट्रेट ने भी रिंझाई को देखा था उस कंबल में, उसने कहा, यह कंबल रिंझाई का है। और कुछ दिन से वह सिर्फ लंगोटी में है, उसका कंबल कहां गया, आज पता चला। तो तूने उस फकीर को भी नहीं छोड़ा! तेरी और चोरियां मैं माफ भी कर दूं, मगर यह चोरी मैं माफ नहीं कर सकता। यह हद हो गई। रिंझाई की भी तू चोरी कर सका! चोर ने बहुत कहा कि मालिक, सुनो, यह चोरी मैंने की नहीं, उसने जबरदस्ती मुझे कंबल दिया। वह माने ही नहीं। मैं अपनी जान बचाने के लिए कंबल ले आया।

और अब आपसे क्या कहूं? उसकी वह कड़कती आवाज, जब उसने कहा कि रुक, अभी भी याद आ जाती है तो मेरी छाती दहल जाती है। और उसने कहा बंद कर दरवाजा! क्या आदमी है!! क्या उसकी आवाज है!! आदमी बहुत देखे मगर यह आदमी आदमी है। मगर चोरी मैंने नहीं की। सम्राट ने कहाः अगर रिंझाई कह दे कि चोरी तूने नहीं की, तो हम तुझे मुक्त कर देंगे--और चोरियों से भी मुक्त कर देंगे; उसकी गवाही काफी है।
रिंझाई बुलाया गया।
रिंझाई ने कहा कि नहीं, यह आदमी चोर नहीं है। पहले तो यह आदमी बड़ा सीधा-सादा है। मेरे घर आया, बिना खबर किए आया। इसकी सादगी देखो, इसका भोलापन देखो! दूसरे, यह आदमी बड़ा शिष्टाचारी है। जब मैंने कहा, ठहर, दरवाजा बंद कर, तो इसने दरवाजा बंद किया; यह बड़ा आज्ञाकारी है। और जब मैंने कहा, धन्यवाद दे, तो इसने धन्यवाद दिया। इसने जरा संकोच न किया। यह बड़ा आस्थावान है। यह चोरी नहीं की है इसने। मैंने इसे कंबल दिया तो यह ना-नुच करता था, इनकार करता था, मना करता था; हजार इसने भागने की कोशिश की थी। यह आदमी बड़ा सज्जन है। मुझ गरीब को देख कर, नंगा देख कर इसे बड़ी दया आई, इसके हृदय में बड़ी करुणा है। यह चोर तो हो ही नहीं सकता।
रिंझाई ने जब ऐसा कहा, तो मजिस्ट्रेट ने उसे छोड़ दिया। रिंझाई बाहर निकला, वह आदमी भी रिंझाई के पीछे हो लिया। रिंझाई ने कहाः क्या इरादा है, अब मेरे पास कुछ भी नहीं! उस चोर ने कहा कि अब मैं लेने नहीं आ रहा हूं, अपने को दे रहा हूं। अब तुम्हारे चरणों को छोड़ कर कहीं और नहीं जाऊंगा। तुम्हें क्या देखा, आदमियत की गरिमा देख ली। तुम्हें क्या देखा, परमात्मा पर भरोसा आ गया। रिंझाई ने चोर में चोर नहीं देखा, बेईमान नहीं देखा, तो फिर चोर भी रिंझाई में परमात्मा को देख सका।
तुम कहते हो, कृष्णानंद, संसार में मुझे बुराई ही बुराई क्यों दिखाई देती है? जरा भीतर टटोलो, जरा अपनी गांठ में टटोलो, वहां कुछ भूल-चूक होगी। सबसे बड़ी भूल-चूक है, अहंकार। अहंकार के कारण लोग दूसरों में बुराई देखते हैं। क्योंकि अहंकार दूसरों में बुराई देख कर बड़ा प्रफुल्लित होता है कि मैं श्रेष्ठ, कि मैं सुंदर, कि मैं महात्मा, कि मैं पवित्र; कि कौन है जो मेरा जैसा विनम्र और कौन है जो मेरा जैसा पुण्यात्मा; कि कौन है जो मेरा जैसा दानवीर, दानशूर। अहंकार दूसरों पर जीता है। दूसरों की लकीरें छोटी कर देता है, तो अपनी लकीर बड़ी मालूम पड़ने लगती है। दूसरों को छोटा करने का एक ही उपाय है कि उनकी बुराई देखो, बुराई ही बुराई देखो।
अहंकारी आदमी से कहो कि फलां आदमी बहुत सुंदर बांसुरी बजाता है, वह फौरन कहेगा--क्या वह ख़ाक बांसुरी बजाएगा? चोर, बेईमान, लुटेरा, वह क्या बांसुरी बजाएगा? वह क्या खाक बांसुरी बजाएगा? अरे, मैं उसे भलीभांति जानता हूं। लेकिन रिंझाई जैसे किसी आदमी से अगर कहो कि वह आदमी चोर है, तो वह कहेगा, नहीं हो सकता, क्योंकि मैंने उसकी बांसुरी सुनी है। जो इतनी प्यारी बांसुरी बजाता है, वह चोर कैसे हो सकता है? असंभव। यह मैं मान ही नहीं सकता। अपनी आंख से देख लूं तो समझूंगा कि मेरी आंख गलत देखती है, कि मेरी आंख में कहीं भूल-चूक है, लेकिन जो इतनी प्यारी बांसुरी बजाता है, संगीत पर जिसका ऐसा वश है, ऐसा अधिकार है, वह चोरी करेगा? असंभव! अरे, संगीत जिसे मिला है वह किस संपदा के लिए उत्सुक होगा?
लोग हैं, जो गुलाब की झाड़ी के पास जाएं तो कांटे गिनेंगे। और लोग हैं,
जो कांटों की फिकर ही न करेंगे और फूल गिनेंगे। और एक फूल भी दिखाई पड़ जाए तो सारे कांटे व्यर्थ हो जाते हैं। एक फूल का होना काफी है सारे कांटों को व्यर्थ कर देने के लिए। लेकिन जो लोग कांटे ही गिनते हैं, स्वभावतः उनके हाथों में कांटे चुभ भी जाएंगे। कांटों की गिनती करोगे तो कांटे चुभेंगे। लहूलुहान हो जाओगे। फिर जब हाथ लहूलुहान होंगे और पीड़ा से भरे होंगे, तो किसको फूल दिखाई पड़ सकता है? और जिसने कांटे गिने, उसका तर्क यह होगा कि जहां इतने कांटे हैं, वहां फूल भ्रम ही हो सकता है, सत्य नहीं।
दुनिया में दो ही तरह के लोग हैं। कांटे गिनने वाले लोग, उनको फिर फूल नहीं दिखाई पड़ते; दिखाई भी पड़ें तो वे कहेंगे भ्रम होगा; और वे लोग जो फूल गिनते हैं। उनको फूल दिखाई पड़ जाते हैं, तो उनके लिए कांटे कांटे नहीं रह

जाते, फूलों के पहरेदार हो जाते हैं, फूलों के रक्षक हो जाते हैं। क्योंकि वही जीवन-धार तो कांटे में बहती है जो फूल में। फिर उनकी कांटों से भी दुश्मनी नहीं रहती। फूलों से दोस्ती क्या हुई, कांटों से भी दुश्मनी नहीं रह जाती।
अपने अहंकार को थोड़ा तलाशो। उसी की छाया तुम्हें चारों तरफ दिखाई पड़ रही होगी।
बरसात के दिन, आंगन में रखे घड़े में पानी भर गया था। मुल्ला नसरुद्दीन
का बेटा फजलू एक दिन घड़े में झांक रहा था कि उसके हाथ से संतरा फिसल कर घड़े में गिर गया। वह रोने लगा। पानी में उसे अपनी ही परछाईं दिखाई दी।
क्यों रोते हो, बेटे? नसरुद्दीन ने पूछा। फजलू ने कहा कि उस छोकरे ने
जो घड़े में छिपा बैठा है, मेरा संतरा छुड़ा लिया।
रुको, मैं आता हूं। मुल्ला ने घड़े के पास पहुंच कर उसमें झांका, उसे दाढ़ी-मूछों की परछाईं दिखाई दी। गुस्से में उसने कहाः क्यों जी, इस उम्र में भी बच्चों के साथ मजाक करते हो, शर्म नहीं आती!
संसार में हमें सिर्फ अपनी प्रतिछवियां दिखाई पड़ती हैं। अपनी ही प्रतिध्वनियां सुनाई पड़ती हैं। तुम गालियां दोगे, तो गीत नहीं सुनाई पड़ेंगे। गीत गाओ! तो गीतों की तुम पर वर्षा हो जाएगी। तुम पत्थर फेंकोगे, पत्थर ही तुम पर लौट आएंगे। यह संसार वही लौटा देता है वापिस, हजार गुना करके, जो तुम इसे देते हो। यही तो कर्म के सिद्धांत का मौलिक सूत्र है। तुम जो करते हो, वही तुम पर वापस लौट आता है। हजार गुना होकर लौट आता है। अच्छा तो अच्छा, और बुरा तो बुरा। तुम्हें लोगों में बुराई ही बुराई दिखाई पड़ती है, तो जरूर कहीं तुम्हारे भीतर कोई सूत्र है जो लोगों के भीतर बुराई को जगाता है, जो लोगों के भीतर सोई हुई बुराई को उकसाता है।
मत फिकर करो कि लोग बुरे हैं या अच्छे, फिकर इतनी ही करो कि तुम कहां हो? तुम क्या हो? तुम कौन हो? लोगों से लेना-देना भी क्या है! आज तुम हो, कल नहीं रहोगे, दुनिया तो चलती रही है, चलती रहेगी। कल तुम नहीं थे तब भी दुनिया चलती थी, कल तुम नहीं होओगे तब भी दुनिया चलती रहेगी। फिर लोगों को बदलना होता, लोगों को अच्छा बनाना होता, ऐसा कोई दायित्व तुम्हारे ऊपर किसी ने सौंपा होता, तो भी कोई बात थी कि तुम चिंता करो, कौन अच्छा, कौन बुरा? तुम्हें लेना-देना क्या है!
बुद्ध ने कहा है कुछ लोग ऐसे पागल हैं, जैसा एक आदमी था जो अपने घर के सामने बैठ कर रोज सुबह गांव भर की गाय-भैंसों को गिनता जो कि गांव के बाहर नदी के पार घास चरने जातीं। और जब सांझ को आतीं तब भी घर के बाहर बैठ कर गिनती करता। कि उतनी ही वापस लौट रही हैं कि नहीं जितनी सुबह गई थीं? बुद्ध ने उस आदमी से पूछा कि भई, तेरे पास कितनी गाय-भैंसे हैं? उसने कहा, मेरे पास तो एक भी नहीं। तो बुद्ध ने कहा, दूसरों की गाय-भैंसें गिन कर तुझे क्या मिलेगा? कि कितनी गईं और कितनी लौटीं, तुझे लेना-देना क्या है! तू नहीं था तब भी गाय-भैंसें आती रहीं, जाती रहीं, तू नहीं भी होगा तब भी गाय-भैंसें आती रहेंगी, जाती रहेंगी। दूसरों की गाय-भैंसें गिनेगा? समय व्यर्थ करेगा? जीवन गंवाएगा? और कितना बहुमूल्य समय है!
लेकिन हम यही करते रहते हैं। कौन बुरा? उसके कितने कृत्य बुरे? कौन भला? और भला तो फिर मिलता नहीं। क्योंकि भला मिल नहीं सकता। उसके भी पीछे वही अहंकार कारण है। जब भी तुम्हें कोई भला आदमी मिलेगा तो तुम्हारे अहंकार को चोट लगती है कि मुझ से भी कोई भला है? मुझ से भी कोई बड़ा है? मुझ से भी कोई श्रेष्ठतर है? मुझ से भी कोई ऊपर हो सकता है? असंभव! तो फिर तुम्हें भले आदमी में बुराइयां खोजनी पड़ती हैं। ताकि तुम उसे खींच कर अपने से नीचे स्तर पर ला सको। अपनी बुद्धिमत्ता को निखारो! अपनी जीवन-ऊर्जा को निखारो! परिष्कृत करो!
गांव के गंवार श्री भोंदूमल जब शहर घूमने आए, तो उन्होंने देखा कि एक जगह कुछ लोग भीड़ लगाए खड़े हैं और दो आदमी एक मोटी रस्सी को पकड़ कर पूरी ताकत लगा कर खींच रहे हैं। आधे इस तरफ आधे उस तरफ। वहां रस्सा-खींच प्रतियोगिता हो रही थी। थोड़ी देर तक तो भोंदूमल खड़े देखते रहे, मगर फिर उनसे न रहा गया, तो चिल्ला कर बोले: भाइयो, इतने पसीना-पसीना क्यों हुए जा

रहे हो? मैं तो सोचता था कि गांव में ही अनपढ़ और गंवार लोग रहते हैं मगर तुमने तो यह हद कर दी! अरे, पढ़े-लिखे गंवारो, तुम्हें इतनी भी समझ नहीं है कि इसे चाकू से काट दो; यह रस्सा इस तरह टूटने वाला नहीं है।
भोंदूमल तो भोंदूमल के ढंग से ही देखेंगे न! उनकी बुद्धि तो उतनी ही दूर तक जाएगी जितनी दूर जा सकती है। और सबके भीतर भोंदूमल छिपे बैठे हैं। इन्हीं भोंदूमल के कारण संसार में इतना उपद्रव मचा रहता है। क्योंकि तुम्हारा भोंदूमल दूसरे के भोंदूमल से झगड़ रहा है। भोंदूमल एक-दूसरे के पीछे पड़े हुए हैं। एक-दूसरे की पत्ती काटने में लगे हैं। एक-दूसरे में बुराइयां देख रहे हैं। क्या तुम्हें पड़ी है? अपनी संवारो! थोड़े दिन हैं, थोड़ा समय है, अपने को निखारो!
कृष्णानंद, इस आदत को छोड़ो! कहीं ऐसे ही समय न बीत जाए। और जब भी यह आदत आए--आएगी बार-बार, पुरानी होगी, जन्मों-जन्मों की है... सबकी है, कृष्णानंद, तुम्हारी ही नहीं है; जन्मों-जन्मों का अभ्यास है; तो हम जल्दी से निर्णय ले लेते हैं। किसी आदमी का एक छोटा सा कृत्य देखा और निर्णय ले लिया पूरे आदमी के संबंध में! कभी तुमने इस बात की थोड़ी भी चिंतना की है जैसे किसी उपन्यास का एक फटा हुआ पन्ना, आधा-धूधा, लकीरें भी पूरी नहीं, हवा में उड़ता हुआ तुम्हें मिल जाए और तुम उसको पढ़ो; क्या खाक पढ़ोगे? न लकीरें पूरी हैं, न पन्ना पूरा है--और पन्ना पूरा भी हो, लकीरें पूरी भी हों तो भी पन्ना ही है। और आगे-पीछे बहुत कुछ है, जिसका तुम्हें कुछ पता नहीं। क्या उन आधी टूटी-फूटी लकीरों, उस फटे पन्ने के आधार पर तुम पूरे उपन्यास के संबंध में कोई निर्णय ले सकोगे? लेकिन यही हम कर रहे हैं व्यक्तियों के संबंध में। एक व्यक्ति बहुत बड़ी घटना है। जन्मों-जन्मों की लंबी यात्रा पीछे है। उसका एक छोटा सा कृत्य तुम देखते हो... एक छोटा सा कृत्य एक लकीर से भी ज्यादा नहीं--लकीर भी अधूरी, क्योंकि उसका अभिप्राय तुम्हें दिखाई नहीं पड़ता सिर्फ कृत्य दिखाई पड़ता है; और असली बात तो अभिप्राय है। वह जो करता है, वह उतना महत्वपूर्ण नहीं है, क्यों करता है, वह महत्त्वपूर्ण है। और तुम निर्णय ले लेते हो पूरे मनुष्य के संबंध में। पूरे मनुष्य में उसका पूरा अतीत सम्मिलित है और अतीत ही नहीं, पूरे मनुष्य में उसका पूरा भविष्य भी सम्मिलित है।
गौतम बुद्ध ने अपने अतीत जन्म की कथा कही है कि एक समय बहुत-बहुत जन्मों पूर्व मैं एक बुद्धपुरुष के दर्शन को गया था। दीपंकर बुद्ध उनका नाम था। मैं उनके चरणों में झुका, चरण छू के उठ भी नहीं पाया था कि मैं चौंक गया, समझ ही न पाया, इसके पहले कि कुछ करूं, बात हो गई, दीपंकर झुके, उन्होंने मेरे चरण छुए। मैंने उनसे कहा, आप यह क्या करते हैं? मैं आपके चरण छूऊं, यह तो सही; मैं अज्ञानी, मैं मूढ़, मैं मूर्च्छित मैं प्रमादी; आप मेरे चरण छूएं! आप हैं प्रबुद्ध, आप हैं जाग्रत, आप हैं भगवत्ता को उपलब्ध, आप हैं भगवान, आप मेरे चरण छूएं! तो दीपंकर बुद्ध ने मुझसे कहा था: तू केवल अपना अतीत देखता है, मैं तेरा भविष्य भी। आज नहीं कल तू बुद्ध होगा। क्योंकि आज नहीं कल सभी बुद्ध होंगे। देर-अबेर की बात है। तेरा अतीत ही तो तू नहीं है, तेरा भविष्य भी तू है; मैं तुझे तेरी समग्रता में देखता हूं। मैं जानता हूं इतने-इतने जन्मों के बाद तेरा कमल खिलेगा, तेरा सहस्रदल कमल खिलेगा, तू महासमाधि को उपलब्ध होगा। मैं उसी घटना को देख कर झुक कर तेरे चरण छू रहा हूं!
तुम तो सामने जो फूल हों उनको नहीं देख पाते। देखने वाले उन फूलों को देख लेते हैं जो अभी खिले भी नहीं। खिलना तो दूर, जो अभी कली भी नहीं बने। कली भी दूर, जो अभी बीज में छिपे पड़े हैं। आंख गहरी हो तो बीज में भी फूल दिखाई पड़ जाता है। और अंधों को फूल में भी फूल दिखाई नहीं पड़ता।
फिर जल्दी निर्णय मत लेना। निर्णय करने की इतनी जल्दी क्या? यह आदमी बुरा, यह आदमी भला, कितनी जल्दी तुम निर्णय ले लेते हो! .जरा ठहरो, थोड़ा धीरज, आदमी जटिल घटना है, बड़ी घटना है!
एक किराने का दुकानदार बहुत ज्यादा हकलाता था। नसरुद्दीन उसके यहां गुड़ खरीदने गया। एक किलो गुड़ लिया। दाम पूछने पर दुकानदार बोलाः "त... त्... त... त... त... तत्... ती... ती... न रु... पये।" मुल्ला ने पैसे चुकाए और चल दिया।

कुछ दिनों बाद फिर गुड़ लेने आया। एक किलो गुड़ लिया। इस बार दुकानदार
का छोटा भाई वहां था, उसने तीन रुपये पचास पैसे कीमत बताई। नसरुद्दीन ने कहाः अंधेर है, भाई; अरे, तीन-चार रोज पहले ही मैं गुड़ ले गया था, उस दिन तीन रुपये दाम थे, चार दिन में ही इतने दाम बढ़ गए! आपके बड़े भाई उस दिन दुकान पर बैठे थे, उनसे पूछ लो, यदि मुझ पर विश्वास न हो तो।
मुझे आप पर पूरा विश्वास है, बड़े मियां, वह आदमी बोला, असल में मेरे बड़े भाई साहब बोलने में थोड़ा अटकते हैं; वे पचास पैसे कह पाते, इसके पहले ही आप तीन रुपये चुका कर चल दिए!
जरा ठहरो! जरा पूरा आदमी को बोल भी तो लेने दो!!
जिंदगी में सभी कृत्य अधूरे हैं। एक-एक कृत्य के हिसाब से निर्णय नहीं होता, कृत्यों का निचोड़, इत्र, उससे निर्णय होते हैं। एक-एक फूल से निर्णय नहीं होता, निचोड़! अच्छे से अच्छे आदमी के जीवन में कोई काम बुरा मिल सकता है।
कल ही मैं तुमसे कह रहा थाः कि बाबा मलूकदास घर से चोरी कर के साधु- संतों को बांट आते थे। अब चोरी करना कोई अच्छा कृत्य तो नहीं। बाकी हिसाब छोड़ दो; सिर्फ चोरी पकड़ो। कोई तुमसे कहे कि चोरी करना बुरा है या अच्छा? तुम स्वभावतः कहोगे बुरा है। वह तुमसे कहे, बाबा मलूकदास चोरी करते थे, ये किस तरह के बाबा, ये किस तरह के संत? तुम कहोगे, भाई, अगर चोरी करते थे तो बात ठीक नहीं। मगर यह प्रसंग के बाहर है बात। बाबा मलूकदास चोरी करते थे कि साधु-संतों को बांट आएं, कि उनको दे आएं जिनको जरूरत है। हम से ज्यादा जिनको जरूरत है, उनको दे आएं। यह अभिप्राय पूरा का पूरा साथ में देख कर सोचोगे तो बात बदल जाती है। बात का अर्थ बदल जाता है। प्रसंग के साथ अर्थ बदल जाते हैं। पृष्ठभूमि के साथ अर्थ बदल जाते हैं। तुम किसी व्यक्ति की पूरी जीवन-भूमिका तो देखो!
लाओत्सु कुछ दिनों के लिए न्यायाधीश हो गया था। पहले ही दिन जो मुकदमा आया, वहीं बात गड़बड़ हो गई। एक चोर पकड़ा गया था, धन भी पकड़ लिया गया था, चोर ने स्वीकार भी कर लिया--क्योंकि लाओत्सु जैसे आदमी के सामने कैसे इनकार करे? लाओत्सु ने उससे इतना ही कहा कि भाई, तूने चोरी की हो तो कह दे, नहीं की हो तो कह दे! तू जो कहेगा सो मैं मान लूंगा। साहूकार, जिसकी चोरी हुई थी, उसने कहाः यह क्या हो रहा है? ऐसे कहीं निर्णय होते हैं? लाओत्सु ने कहाः तुम चुप रहो! मुझे आदमी पर भरोसा है। मैं छोटी-मोटी बातों के लिए आदमी पर भरोसा नहीं खो सकता। और तुम हो इस गांव के सबसे बड़े बेईमान, तुम बीच में नहीं बोलो तो अच्छा है।
चोर ने जब यह सुना तो चोर कैसे इनकार करे! चोर ने सिर झुका कर कहा कि मैं क्षमाप्रार्थी हूं, मैंने चोरी की है। मैं अपने को अपराधी स्वीकार करता हूं। लाओत्सु ने कहाः फिर ठीक; छह महीने की तुझे सजा और छह महीने की सजा साहूकार को। साहूकार ने तो कहा कि आप होश में हैं? चोरी मेरे घर हो और सजा भी मुझे! लाओत्सु ने कहा कि तूने इतना धन इकट्ठा कर लिया है, चोरी नहीं होगी तो क्या होगा? यह आदमी कसूरवार है नंबर दो का, तू कसूरवार है नंबर एक। तूने इतना धन इकट्ठा कर लिया है कि अब गांव में किसी के पास कुछ बचा ही नहीं, सिवाय चोरी के कोई उपाय नहीं रहा। तूने सारे गांव की गरिमा छीन ली है। तूने गांव में हर आदमी को चोर होने को मजबूर कर दिया है। सजा तुम दोनों को मिलेगी, तुम दोनों जिम्मेवार हो। तूने लोगों को चोरी के लिए मजबूर किया और यह मजबूर हुआ... हालांकि मैं भी इसी गांव में रहता हूं, मैं मजबूर नहीं हुआ, हालांकि तू मजबूर मुझे भी कर रहा है, जिम्मेवार दोनों हैं, इसलिए सजा पूरी-पूरी मिलेगी।
बात सम्राट के पास गई। सम्राट बहुत हैरान हुआ। इस तरह का निर्णय न कभी सुना गया, न कभी देखा गया! न आंखों देखा, न कानों सुना। सम्राट ने लाओत्सु को बुलाया कि इस तरह के निर्णय अगर हुए, तो बड़ी मुश्किल हो जाएगी। तो लाओत्सु ने कहा कि फिर मुझे छुट्टी दे दें। क्योंकि मैं तो न्याय ही कर सकता हूं। सम्राट ने छुट्टी कर दी। क्योंकि सम्राट घबड़ाया, कि अगर साहूकार चोर है, तो आज नहीं कल मेरी क्या हालत होगी? अगर कल खजाने में चोरी हो जाए, तो यह आदमी तो खतरनाक है।

जिंदगी को उसकी पूरी पृष्ठभूमि में जब लो, तो अर्थ कुछ और हो जाते हैं। प्रसंग के बाहर तोड़ लेते हो। जिस आदमी ने कुछ बुरा काम किया है, उसकी तुम्हें पूरी जिंदगी पता नहीं है। शायद वैसी ही जिंदगी तुम्हें भी मिली होती, शायद तुम्हें भी वैसे ही मां-बाप मिले होते, वैसा ही स्कूल मिला होता, वैसे ही अध्यापक मिले होते, वैसा ही गांव मिला होता, वैसे ही संगी- साथी परिवार मिला होता, तो शायद तुमने भी यही किया होता जो उसने किया है। तो शायद तुम भी इससे भिन्न नहीं कर पाते। क्योंकि वह भी मूर्च्छित है, तुम भी मूर्च्छित हो। होश वाला व्यक्ति परिस्थिति से मुक्त हो सकता है; लेकिन मूर्च्छित व्यक्ति तो परिस्थिति का शिकार होता है।
इसलिए इस व्यर्थ की चिंतना में मत पड़ो, कृष्णानंद! समय थोड़ा है! इस थोड़े समय में अपने पत्थर को निखारना है और हीरा बनाना है। सारी ऊर्जा उस पर लगाओ! विचार से मुक्त होना है और ध्यान में गति करनी है। प्रेम को भक्ति में रूपांतरित करना है। देह को आधारभूमि बनाना है। ताकि छलांग लग सके परमात्मा में। इन बहुमूल्य क्षणों को तुम क्यों दूसरों की चिंता में व्यतीत कर रहे हो? छोड़ो यह आदत! आदत पुरानी है, छूटते-छूटते ही छूटेगी, मगर अगर होश रखा तो निश्चित छूट जाएगी। ऐसी कौन आदत है जो न छूट जाए? हम ही पकड़ते हैं तो पकड़ जाती है, हम ही छोड़ते हैं तो छूट जाती है। कोई आदत हमें नहीं पकड़ती। मगर हम अजीब लोग हैं, हम कहते हैं, कैसे छोड़ें, आदत ने पकड़ लिया है। आदत क्या तुम्हें खाक पकड़ेगी!
एक सूफी फकीर फरीद से किसी ने कहा कि मैं कैसे अपनी बुरी आदतों को छोडूं? उन्होंने मुझे बिल्कुल जकड़ लिया है। फरीद ने उसकी बात सुनी, उसको तो उत्तर नहीं दिया, उठ कर खड़ा हुआ, पास में ही एक खंबा था, खंबे को पकड़ कर जोर-जोर से चिल्लाने लगा कि बचाओ, बचाओ, छुड़ाओ, छुड़ाओ! वह आदमी तो एकदम हैरान हो गया। बेचारा जिज्ञासु, आध्यात्मिक प्रश्न पूछने आया था और यह कोई पागल मालूम होता है! सामने आंख के सामने खंबे को पकड़ लिया है। उसने कहा कि मैं तो सोचता था कि आप ज्ञानी हैं, आप तो विक्षिप्त मालूम होते हैं। फरीद ने कहा, ये बातें पीछे होंगी, पहले मुझे बचाओ! पहले मुझे छुड़ाओ! उस आदमी ने कहाः छुड़ाने की कोई जरूरत ही नहीं है, खंबा तुम पकड़े हो, खंबा तुम्हें नहीं पकड़े है। फरीद ने कहा, फिर तो तू होशियार है। फिर तू मुझसे क्या पूछने आया है? आदतें तुझे नहीं पकड़े हैं, तूने आदतों को पकड़ा है। रास्ते पर लग! अगर तुझे इतनी अक्ल है कि मुझे बता सकता है कि खंबा मुझे नहीं पकड़े है, तो कौन तुझे पकड़े है? तुम्हारी आदत में कुछ न्यस्त स्वार्थ होगा, उसे देख लो।
तुम देखना चाहते हो दूसरों में बुराई ताकि उनको छोटा कर सको। ताकि बड़े मालूम हो सको। यह अभी तक तथाकथित धार्मिकों की प्रक्रिया रही। जाओ किसी साधु के पास, तथाकथित महात्मा के पास और वह तुम्हें ऐसे देखता है जैसे तुम नारकीय कीड़े हो। तुम्हारे महात्मा, पंडित, पुरोहित यही तुम्हें समझाते हैं। यह बड़ी मजेदार दुनिया है। और तुम उनका सत्कार करते हो और उनके चरण छूते हो और वह तुम्हें यही समझाते हैं कि हे नरक के कीड़ो! वह नरक का ऐसा वर्णन देते हैं, ऐसा रंगीन वर्णन कि आग की लपटें और कड़ाहे चढ़े हुए हैं-- हमेशा ही चढ़े रहते हैं। दुनिया में इतनी तेल की कमी है, नरक में कड़ाहे अभी भी चढ़े हुए हैं। और कड़ाहों में जलाए जाओगे और चुड़ाए जाओगे। आदमी न हुआ कोई पकौड़ा हुआ! और एक से एक कष्ट देने की उन्होंने ईजादें की हैं।
मैंने सुना है, एक दिल्ली के राजनेता मरे। सोचते तो थे कि स्वर्ग जाएंगे--दिल्ली में जो हैं वे सभी यही सोचते हैं कि मरेंगे तो स्वर्ग जाएंगे। और हम भी शिष्टाचारवश जो भी मर जाता है उसको कहते हैं, स्वर्गीय हो गया। तुम कभी सुनते हो किसी को कि नारकीय हो गया? जो मरे, वही स्वर्गीय हो जाता है। तो फिर नरक किसलिए बनाया है? तो ईश्वर कोई मूढ़ है?
सोचता तो नेता भी था कि जैसे सभी स्वर्गीय होते हैं, मैं भी। और फिर मैं कोई छोटा-मोटा नेता नहीं हूं--बड़ा नेता था। मगर गया नरक। देखा, दरवाजे पर लगी तख्ती नरक की, छाती बैठ गई! और जब शैतान ने दरवाजा खोला और एकदम झटक कर भीतर खींच लिया नेता को--नेता बहुत गिड़गिड़ाने लगा, बहुत खुशामद करने लगा--शैतान ने कहा कि तुम गांधीवादी नेता हो, खादी पहनते हो, चरखा चलाते हो,

इसलिए तुम पर थोड़ी दया करूंगा। इतना कर सकता हूं तुम्हारे लिए कि नरक में तीन हिस्से हैं, तुम चुन लो। जिस हिस्से में तुम्हें रहना हो। मैं तीनों में तुम्हें भ्रमण करवा देता हूं। पहले हिस्से में ले गया, वहां तो बड़ा भयंकर कृत्य चल रहा था--चढ़े हुए थे वही पुराने कड़ाहे, और आदमी पकौड़ों की तरह तले जा रहे थे। नेता ने कहा कि नहीं-नहीं, यहां नहीं, वैसे ही मुझे पकौड़े पसंद नहीं हैं। मैंने कभी खाए भी नहीं।
दूसरी जगह ले जाया गया। वहां बड़े कीड़े-मकोड़े आदमियों में घूम रहे थे, छेद करके इधर से निकल रहे, उधर से निकल रहे, आदमियों को बिल्कुल छेद-छेद कर डाला था। नेता ने कहा कि नहीं-नहीं। कीड़े-मकोड़े? मैं दिल्ली में रहने का आदी हूं, मच्छरदानी लगा कर सोता हूं, फ्लिट छिड़कवाता हूं, यह मुझसे नहीं सहा जाएगा।
तीसरी जगह ले जाया गया। हालत तो वहां भी खराब थी, लेकिन दो से अच्छी थी। वहां हालात ये थे कि मल-मूत्र भरा हुआ था और लोग खड़े हुए थे मल-मूत्र में, गले तक मल-मूत्र, और कोई चाय पी रहा है और कोई काफी पी रहा है और कोई कोकाकोला पी रहा है। और लोग आ रहे हैं। और उनको कोकाकोला और काफी और फेंटा और जो-जो वे मांग रहे हैं, उनको दिए जा रहे हैं। हालांकि बास बहुत थी, दुर्गंध बहुत थी, मगर नेता भी बड़ा नेता था और एक चीज का अभ्यासी था-- स्वमूत्र पीता रहा था। तो उसने कहा, चलेगा! अरे, अपना हुआ कि पराया हुआ, सब एक ही है। और जब स्वमूत्र से नहीं डरे तो मल से भी क्या डरना? एक कदम और सही! और फिर कम से कम यहां जो चाहिए वह मिलता है। कोकाकोला तो दिल्ली में भी नहीं मिलता! और यहां अभी भी चल रहा है! उसने कहा यही चुन लेता हूं। फिर कोई चौथा नरक का हिस्सा था भी नहीं। लेकिन जैसे ही अंदर गया, बदबू में खड़ा हुआ और कहा, कोकाकोला, तभी घंटी बजी जोर से और शैतान ने कहा कि समय खत्म, चाय पीने का समय खत्म, अब सब अपने सिर के बल खड़े हो जाएं।
नरक तो नरक ही है।
इसलिए नेतागण शीर्षासन का अभ्यास करते हैं। कि अगर कहीं ऐसी नौबत आ जाए, तो शीर्षासन कर लिया और प्राणायाम साध कर खड़े हो गए।
बड़ी ईजादें हैं नरक में। वे किसने ईजादें की हैं? वे तुम्हारे तथाकथित महात्माओं ने। वह तुम्हें बताने को कि तुम्हारी अवस्था क्या होगी? और उन्होंने अपने लिए भी इंतजाम कर रखा है, स्वर्ग में। वहां शराब के चश्मे बहते हैं। ऐसे क्या कुल्हड़-कुल्हड़ पीना! यहां प्राहिबिशन है, यहां शराब पर बंदी है, और यहां सब महात्मा शराबबंदी के पक्ष में हैं कि शराब तो पीना ही मत और इन्हीं महात्माओं ने बहिश्त में मालूम है, शराब के चश्मे बहा रखे हैं--झरने! दिल खोल कर पीओ! पीओ ही क्यों, तैरो! डुबकी मारो। नहाओ।
यही महात्मा यहां कहते हैं कि स्त्री नरक का द्वार है और स्वर्ग में इन्होंने अप्सराएं बना रखी हैं। अप्सराएं क्या पुरुष हैं? ये अप्सराएं! आखिर स्वर्ग में भी नरक का द्वार है, इसका मतलब साफ हुआ कि स्वर्ग में से भी एक दरवाजा है। सावधान रहना! और अप्सराएं भी क्या बनाई हैं! स्वर्ण की उनकी देह है, पसीना उनकी देह से नहीं निकलता। और अप्सराएं भी क्या! सब सोलह साल पर ठहर गई हैं।
दो महिलाएं एक प्रदर्शनी को देखने गई थीं। वहां एक जुए का अड्डा भी था। वहां नंबर कोई भी चुन लो और एक गोल चाक था उसको घुमा दो; अगर तुम्हारे नंबर पर रुक जाए तो जितने पैसे तुमने लगाए हैं, उससे दस गुने पैसे तुम्हें मिलें। पहली महिला तो बड़ी आतुर थी दांव लगाने को, लेकिन दूसरी जरा डांवाडोल हो रही थी। पहली ने कहाः क्यों डांवाडोल हो रही है इतनी? अरे, जाएंगे दस-पांच रुपये और क्या? आए तो दस गुने, गए तो गए! इतनी क्या घबड़ाती है? उसने कहा, नहीं, मेरी घबड़ाहट जुआ नहीं है, मेरी घबड़ाहट यह है कि नंबर कौन सा चुना जाए? तो उस महिला ने कहाः अगर मेरी मान, तो मैं तो हमेशा अपनी उम्र का नंबर चुनती हूं। और इसने मुझे कभी धोखा नहीं दिया है। तो दूसरी ने कहाः ठीक, तो उसने तेईस साल तो उसने तेईस नंबर पर पचास रुपये लगाए। चाक घूमा और छत्तीस पर आकर रुका। उस महिला ने कहा कि हाय राम, चके को कैसे पता चला? ... थी तो छत्तीस की ही।... यहां स्त्रियां धोखा देती रहती हैं। बहुत

दिन तक धोखा देती रहती हैं। जितने देर तक खींच सकती हैं, खींचती हैं। मगर अप्सराएं सोलह पर रुकी हैं सो रुकी हैं।
भारत में सोलह साल अप्रतिम सौंदर्य की साल समझी जाती है। तो वहीं रोक दिया अप्सराओं को। सदियों से वहीं रुकी हैं। ये सोलह साल की अप्सराएं, ये स्वर्ण-देहें, ये शराब के झरने! वृक्षों में फूल नहीं लगते, हीरे-जवाहरात लगते हैं। और कल्पवृक्ष, कि जिनके नीचे बैठो, जो आकांक्षा करो, तत्क्षण पूरी हो जाए। यह महात्माओं ने अपने लिए इंतजाम कर रखा है।
आदमी का अहंकार अदभुत है। यहां जरा सा छोड़ते हैं तो वहां हजार गुना पाने का आयोजन पहले कर लेते हैं। असल में हजार गुना पाने के लिए ही छोड़ने की हिम्मत जुटाते हैं। यह सब सौदा है। यह सब लोभ का ही विस्तार है। यह सब वासना का ही खेल है। इससे धर्म का कोई लेना-देना नहीं। ये धार्मिकों की कल्पना नहीं है स्वर्ग और नरक, ये अधार्मिकों की कल्पना है। मगर अहंकार इसमें मजा लेता है कि दूसरे को नरक में डाल दो और खुद स्वर्ग चले जाओ। पूरे वक्त तुम इस कोशिश में लगे रहते हो कि अपने को दिखाऊं श्रेष्ठ। धन हो तो धन से दिखाऊं, ज्ञान हो तो ज्ञान से दिखाऊं, पद हो तो पद से दिखाऊं, अगर कुछ भी न हो तो कम से कम त्याग से दिखाऊं। क्योंकि दुनिया में पद पाना इतना आसान नहीं। बड़ा संघर्ष है, गलाघोंट प्रतियोगिता है। राष्ट्रपति तो कोई एक हो सकेगा, साठ करोड़ का देश! और साठ करोड़ राष्ट्रपति होने को उत्सुक हैं। बिड़ला-टाटा भी कुछ थोड़े से लोग ही हो सकेंगे। और ज्ञान भी संग्रहीत करना कुछ आसान नहीं! सदियों श्रम करो तब कहीं अलबर्ट आइंस्टीन की योग्यता पाओगे। लेकिन त्याग आसान है।
त्याग में एक बड़ा मजा यह है कि कुछ न भी हो तुम्हारे पास, तो भी तुम त्यागी हो सकते हो। कुछ न भी हो तो भी त्यागी हो सकते हो। और त्याग में कोई स्पर्धा भी नहीं है, कोई संघर्ष भी नहीं है, कोई प्रतियोगिता भी नहीं है। कोई योग्यता की भी जरूरत नहीं है--कोई यह भी नहीं पूछता कि भाई, मैट्रिक पास हो कि नहीं? कोई यह भी नहीं पूछता कि ज्ञान कितना? कि कौन सा पद त्यागा? कितने हाथी-घोड़े थे? कितने हीरे-जवाहरात थे? त्याग दिखता है सबसे सुगम। इसलिए इस देश में जो मूढ़ों की बड़ी जमात है, उसने त्याग को चुन लिया। लेकिन त्याग भी अहंकार को उतना ही भरता है। और भी ज्यादा भरता है।
इस देश में पचास लाख साधुओं की जमात है। इन पचास लाख में तुम्हें शायद
ही एकाध आदमी मिले जिसकी आंख में चमक है, प्रतिभा है। शायद ही एकाध आदमी मिले जिसके प्राणों में कोई धार है। शायद ही कोई एकाध आदमी मिले जिसके जीवन में कोई सुगंध है परलोक की। कि परमात्मा की कोई उपस्थिति का आभास हो। भगोड़े हैं। किसी की पत्नी मर गई, वह संन्यासी हो गए। उन्होंने देखा कि अब क्या करेंगे? किसी का दिवाला निकल गया, पहले आत्महत्या की सोची, फिर उतनी हिम्मत नहीं जुटा पाए, संन्यासी हो गए। सोचा कि चलो, यह आत्महत्या का ही एक सुगम उपाय है। और बड़ा मजा यह है कि जिस आदमी को तुम बर्तन मलने की नौकरी भी न दोगे, वह भी अगर घर-द्वार छोड़ दे--घर-द्वार के नाम पर भी कुछ नहीं, कोई झोपड़पट्टी होगी--तो तुम उसके पैर छुओगे, पैर दाबोगे। महात्मा की सेवा करोगे।
एक जैन मुनि मुझसे कहे कि आपकी बातें मुझे समझ में तो आती हैं, और मैं छोड़ देना चाहता हूं यह चक्कर मुनि होने का, मैं भी सीधा, सरल, ध्यान का जीवन बिताना चाहता हूं, मगर बहुत देर हो गई है। मैंने कहा, अभी क्या देर हो गई है? सुबह का भूला सांझ भी घर आ जाए तो भूला नहीं कहाता। माना कि आपकी सांझ होने लगी है, सत्तर साल की उम्र हो गई, मगर अभी भी अगर होश आ जाए तो कुछ बुराई नहीं हुई। और इस मुनि होने से अगर कुछ भी नहीं मिला है, तो फिर क्यों उलझे हो? उन्होंने कहाः मिलने का सवाल नहीं। असल में मैं छोड़ नहीं सकता, क्योंकि मैं मुनि पद छोड़ दूं... इस मुनि-पद के लिए मुझे कुछ ज्यादा करना नहीं पड़ता, और ऐसे भी अब मेरा चालीस साल का अभ्यास हो गया है, इसलिए कोई अड़चन नहीं है। एक बार भोजन करता हूं, एक बार ही भोजन करने की आज्ञा है, मगर इतना करता हूं जितना कि साधारण आदमी दो बार में भी न कर सके। और सब तरह की सुविधा है। श्रावक सेवा करते हैं, श्राविकाएं सेवा करती हैं, योग्यता

मेरी कुछ है नहीं, अगर मैं आज मुनि-पद छोड़ दूं, तो जो मेरे पैर दबाते हैं, ये मुझे पैर दबाने का भी काम देने को राजी नहीं होंगे।
बात तो मैंने कहा कि गणित की है! बात से मैं राजी हूं। क्योंकि यही हालत मैंने देखी है तुम्हारे बहुत से मुनियों की। अगर वे उनका मुनि-वेश छोड़ कर तुम्हें मिल जाएं, तो तुम उन्हें एक दफे का भोजन भी न कराओगे। तुम उन्हें एक कपड़ा भी न दे सकोगे भेंट में। और अभी? अभी तुम पालकी निकालते हो। शोभायात्रा होती है। सारा गांव स्वागत के लिए जाता है। इन व्यक्तियों के चेहरे पर न तो ध्यान की कोई आभा, न आंखों में विवेक का कोई तेज, न प्राणों में शांति की कोई सुगंध, क्या तुम्हें दिखाई पड़ता है? ये तुम्हारे जो माने हुए नियम हैं, उनको पूरा कर रहे हैं। दिगंबर जैन-मुनि होता है, वह नग्न खड़ा हो जाए, बस, पर्याप्त! नग्नता अपने आप में जैसे कोई गुण है! तो फिर आदिवासी जो जंगल में नंगे रहते हैं, उनको तुम क्यों नहीं पूजते?
दिगंबर जैन-मुनि अपने बाल उखाड़ ले, केश-लुंच करे, तो हजारों लोग देखने इकट्ठे होते हैं कि महान कार्य हो रहा है! अब बाल उखाड़ने में कौन सा महान कार्य है? कई पागल करते हैं बाल उखाड़ने का काम। और कभी-कभी तुम्हारी पत्नी भी जब जरा विक्षिप्त हो जाती है तो बाल खींचने लगती है... तुम्हारे नहीं, अपने ही खींचती है। देर नहीं है, जल्दी ही तुम्हारे भी खींचेगी, समय आ रहा है... अपने ही बाल खींचने लगती है। कई विक्षिप्त लोग हैं पागलखानों में बंद जो अपने बाल नोचते हैं। मगर उसका तुम कोई सम्मान नहीं करते। उनका बाल नोचने में क्या सम्मान कर रहे हो? मगर ये बातें क्या बहुत सृजनात्मक बातें हैं? इनसे कोई जगत सुंदर होता है? सत्यतर होता है? ज्यादा आनंदपूर्ण होता है? कितने आदमियों ने बाल नोंच लिए इससे जगत के सौंदर्य में कोई वृद्धि होगी? परमात्मा ज्यादा करीब आ जाएगा? तुम्हारी अपेक्षाएं पूरी कर दीं उन्होंने, फिर तुम उनकी सेवा में संलग्न हो गए।
लेकिन उनको एक और मजा आ रहा है साथ-साथ; बाल नोचे, नंगे खड़े हैं, वे महान हैं। तुम दो कौड़ी के हो, तुम नरक जाओगे, वे स्वर्ग जाएंगे। वे तुम्हारी बुराइयों की ही चर्चा करते हैं। वे तुम्हारी हर चीज में निंदा करते हैं। तुम्हारा प्रत्येक कृत्य पाप है। और उनका प्रत्येक कृत्य पुण्य है। बात इतनी आसान नहीं है, जिंदगी ज्यादा जटिल है, ज्यादा उलझी बात है, ज्यादा रहस्यपूर्ण है। यहां कृत्यों से कुछ तय नहीं होता, अभिप्रायों से तय होती हैं बातें और अभिप्राय आंतरिक होते हैं। कोई आदमी लोभ के कारण दान कर सकता है तो दान पाप हो गया। और कोई व्यक्ति प्रेम के कारण दान कर सकता है तो दान पुण्य हो गया।
लेकिन प्रेम है भीतर कि लोभ, यह तो तुम्हारे अतिरिक्त कोई भी नहीं जान सकेगा। कोई आदमी इसलिए त्याग कर सकता है कि भगोड़ा है, डरपोक है। जीवन के संघर्ष से घबड़ा गया है। और कोई आदमी इसलिए त्याग कर सकता है कि जीवन को ठीक से देखा, पहचाना, जाना, परखा, कुछ पाया नहीं। सब कूड़ा-कचरा है। भागता नहीं है, लेकिन कूड़े-कचरे को क्यों मुट्ठी में रखे? छोड़ देता है। दोनों त्यागी दिखाई पड़ते हैं लेकिन दोनों के त्यागों का अर्थ भिन्न-भिन्न हो गया। जमीन आसमान का भेद है। कोई आदमी इसलिए उपवासा रहता है क्योंकि अपेक्षा है लोगों की कि तुम उपवास करो, तो वे सम्मान देंगे। सम्मान पाने के लिए ही उपवासा रहता है। जैन-मुनि हिसाब रखते हैं कि उन्होंने कितने उपवास किए जिंदगी भर में। हर साल उनका कैलेंडर छपता है, जिसमें खबर होती है कि उन्होंने इतने उपवास किए, फलाने ने इतने उपवास किए। किसने ज्यादा किए, वह ज्यादा सम्मानित है।
और उपवास है क्या?
खुद का ही मांस-भक्षण है। और कुछ भी नहीं। और ये शाकाहारी लोग उपवास
को इतना मूल्य दे रहे हैं, इन्हें उपवास की प्रक्रिया का कुछ पता नहीं है कि उपवास में आदमी अपने ही मांस का भक्षण करता है। अपने ही मांस को पचा जाता है। जब मांस पच जाता है तो अपने ही स्नायुओं को पचाने लगता है। जब स्नायु भी पच जाते हैं, तो अपनी हड्डियां गलाने लगता है। धीरे-धीरे सिकुड़ता जाता है, वजन उसका कम होता जाता है। वजन कहां जा रहा है?

एक जैन मुनि मुझसे उपवास की बात कर रहे थे। मैंने उनसे पूछा कि जब तुम उपवास करते हो तो रोज कितना वजन कम होता है? उन्होंने कहाः शुरू-शुरू में दो पौंड, फिर धीरे-धीरे डेढ़ पौंड, फिर एक पौंड। मैंने उनसे पूछा कि दो पौंड वजन कम होता है तो तुम्हारा दो पौंड मांस कहां गया, मैं तुमसे पूछता हूं! वह अपना सिर खुजलाने लगे। उन्होंने कभी यह सोचा ही नहीं था। सोचने इत्यादि से तो संबंध ही नहीं है इन लोगों को। उन्होंने कहाः दो पौंड मांस कहां गया, यह मैंने कभी सोचा ही नहीं। मैंने कहाः तुम्हीं पचा गए, सोचोगे क्या खाक। मांसाहार है यह शुद्ध। अपने को ही खा रहे हो। और इसको कोई धार्मिक कृत्य बना रहे हो! और सोच रहे हो कि इससे स्वर्ग पहुंच जाओगे!
कुछ हिंदू महात्मा हैं, वे दूध ही पीकर जी रहे हैं। दुग्धाहारी हैं। सिवाय दूध के कुछ नहीं लेते।
मेरे पास एक दफा एक महात्मा को लाया गया। प्रशंसा में कहा गया कि ये दुग्धाहारी हैं। मैंने कहाः होंगे, इसमें कहने की क्या बात है? नहीं, उन्होंने कहा कि ये सिर्फ दूध ही पीते हैं। तो मैंने कहाः पीते होंगे, यह इनकी मौज! मगर इसमें सम्मान का क्या कारण है? और इनकी क्या खूबी है? उन्होंने कहा, और तो इनकी कोई खूबी नहीं है। तो मैंने कहाः दूध तो गाय के बछड़े भी पीते हैं। और सच तो यह है कि बछड़ों के लिए ही दूध है। ये कहते हैं गौमाता, लेकिन गौमाता से तो पूछो कि इनको बेटा मानती हैं कि नहीं? गौमाता इनको बेटा नहीं मान सकती, ये उसके बेटे के दुश्मन हैं। क्योंकि दूध जो बछड़े के लिए था, वह ये महाराज पी रहे हैं! बछड़ा भूखा मर रहा है, गौमाता को इनसे क्या लेना-देना? जरा किसी बच्चे की मां को, उसका दूध बछड़े को पीने दो, तब तुम्हें पता चल जाएगा असलियत का! कि वह स्त्री क्या कहती है, उस बछड़े को अपना बेटा मानती है कि नहीं? वह उठा कर डंडा बछड़े की पिटाई कर देगी कि मेरे बेटे के लिए जो दूध है, वह बछड़े के लिए नहीं है। लेकिन तुम कहे चले जाते हो, क्योंकि गौमाता कुछ बोलती नहीं, बोल नहीं सकती, इसलिए तुम्हें बड़ा फायदा है, कि गौ माता है। लेकिन तुम उसके बछड़े का दूध पी रहे हो। वह दूध उसके बछड़े के लिए है।
और वह दूध खतरनाक है। मनुष्य को छोड़ कर कोई पशु-पक्षी बचपन के बाद दूध नहीं पीता। क्योंकि बचपन के लिए ही दूध जरूरी है, उसके बाद जरूरी नहीं है, उसके बाद खतरनाक है। जैसे ही कोई भी बच्चा भोजन पचाने के योग्य हो गया, अब उसे दूध की कोई जरूरत नहीं है। तीन साल, चार साल के बाद वह भोजन पचाए; दूध की उसे क्या जरूरत है? और फिर यह दूध पीओगे तुम गाय का, भैंस का, तो फिर ख्याल रखो! कि यह दूध बना है सांड के लिए। यह तुम्हें सांड बना दे, तो फिर हैरान मत होना। तो तुम्हारे महात्मा अगर सांड हो जाते हैं, तो कुछ हैरानी की बात नहीं है।
कहते हैं, काशी में तीन ही तरह के लोग होते हैं: रांड, भांड और सांड।
इन सांडों में महात्माओं की भी गिनती कर लो। दुग्धाहारी! और दूध है क्या? दूध मांसाहार है। क्योंकि शरीर का हिस्सा है। जैसे खून शरीर का हिस्सा है, वैसे दूध शरीर का हिस्सा है। बच्चा मां का दूध पीता है, मां का खून कम होता है।
लेकिन इन बातों को करनेवाले लोगः महात्मा! और जो ये बातें नहीं कर रहे हैं बेचारे, साधारण रोटी, दाल, सब्जी से काम चला रहे हैं, ये पापी, ये नरक जाएंगे! हमारे मन की यह इच्छा होती है हमेशा कि किसी भी बहाने हम अपने को दूसरों से श्रेष्ठ सिद्ध कर दें, बस।
इस आकांक्षा से मुक्त होओ, कृष्णानंद! यह आकांक्षा ही तुम्हें दुख में बांधे रखेगी। इस आकांक्षा के जाते ही अहंकार मर जाएगा। और धन्यभागी हैं वे, जिनका अहंकार मर जाता है। क्योंकि परमात्मा की सारी संपदा फिर उनकी है। उसका सारा राज्य उनका है। परमात्मा उनका है।

आखिरी प्रश्नः ओशो, आप पंडितों के इतने विरोध में क्यों हैं?

अविनाश, करुणावश! और तो कोई कारण नहीं हो सकता है। जैसे कोई आदमी गड्ढे में गिर रहा हो और तुम कहो कि भाई रुको, नहीं तो गड्ढे में गिर जाओगे,

तो वह आदमी तुमसे पूछे कि आप लोगों के गड्ढे में गिरने के इतने विरोध में क्यों हैं? तो तुम क्या कहोगे? यही कि करुणावश। कि मुझे दिखाई पड़ रहा है कि यह गड्ढा है, तुम्हें दिखाई नहीं पड़ रहा है और तुम गिरे जा रहे हो। अंधे को गड्ढे से बचाने में कोई पाप तो नहीं है? और इस जगत में सबसे बड़ा गड्ढा पांडित्य का है। क्योंकि उस गड्ढे में जो गिरा, वह बुद्ध बनने से वंचित रह जाता है।

इस जगत में सबसे ऊंचा शिखर बुद्धत्व है और सबसे गहरा गड्ढा पांडित्य है।

पांडित्य का अर्थ होता हैः उधार ज्ञान। बुद्धत्व का होता हैः स्वयं का ज्ञान। बुद्ध से ठीक विपरीत है पंडित। मैं पंडित के विरोध में नहीं हूं। चाहता हूं कि लोग गड्ढे में न गिरें। चाहता हूं लोग उधार ज्ञान पर न जीएं। तोते न बनें। चाहता हूं कि शास्त्र न दोहराएं, शास्त्र बनें। चाहता हूं कि दूसरों के बासे शब्द न दोहराएं, अपनी अनुभूति को अभिव्यक्त करें।

तुम दूसरों के पहने हुए जूते नहीं पहनते, तुम दूसरों के पहने हुए कपड़े पहनने में सकुचाते हो, लेकिन तुम दूसरों का ज्ञान कितने मजे से ओढ़ लेते हो! और जूते तो पैर पर रहते हैं, जूते का क्या मूल्य है! और ज्ञान तो सिर पर चढ़ जाता है।

मुल्ला नसरुद्दीन ने अपने नौकर से कहा कि जरा जा और भीतर से सिरका ले आ। कोई घंटा भर बीतने लगा, मुल्ला दो-चार बार चिल्लाया कि भई, क्या कर रहा है, सिरका क्यों नहीं लाता? आखिर नौकर जूता लेकर बाहर आया। मुल्ला ने कहाः यह तू क्या लाया, हमने कहा था सिरका! उसने कहाः सिर का मिला नहीं तो पैर का ले आया।

लेकिन पैर का भी तुम उधार नहीं लेना चाहते। और सिर का? सब उधार। तुम्हारी खोपड़ी में सिवाय कचरे के और क्या भरते हो तुम। तुम्हारी खोपड़ी में जब तक तुम्हारे जीवन की ज्योति रोशन नहीं होती, तब तक जो भी तुम भरे हो, वह सब कचरा है। सब गोबर है--फिर चाहे गौमाता का ही क्यों न हो! कोई गोबर पवित्र नहीं होता, गोबर यानी गोबर।

मुल्ला नसरुद्दीन एक इंटरव्यू देने गया था। इंटरव्यू लेने वाले अफसर ने जो भी पूछा, उसने कहा कि मुझे मालूम नहीं। मुझे मालूम नहीं। मुझे मालूम नहीं। छोटी-छोटी बातें, कि भारत स्वतंत्र कब हुआ, उसने कहा, मुझे मालूम नहीं। मुझे यही नहीं मालूम कि स्वतंत्र हो भी गया।

आखिर अफसर को गुस्सा आ गया और उसने कहाः तुम्हारे सिर में गोबर भरा है क्या? नसरुद्दीन ने कहाः अगर गोबर भरा है तो तुम चाट क्यों रहे हो?

मगर सिर में कुछ और है भी नहीं। लोग एक-दूसरे का सिर का चाट रहे हैं। अब अपने सिर तक तो अपनी जीभ पहुंचाना है भी मुश्किल! जैसे जरूरत पड़ती है तो लोग एक-दूसरे की पीठ खुजला देते हैं। ऐसा जब भी जरूरत होती है एक-दूसरे का सिर का चाट लेते हैं।

पांडित्य है क्या? वेद कंठस्थ है, उपनिषद याद है, गीता ओठों पर रखी है, कुरान दोहरा सकते हो, बाइबिल मालूम है। पांडित्य है क्या? लेकिन बाइबिल मालूम होने से क्या तुम क्राइस्ट हो जाओगे? या गीता कंठस्थ हो जाने से कृष्ण हो जाओगे? काश, इतना सस्ता होता! काश, बात इतनी आसान होती! तो इस दुनिया को हमने बुद्धों से कभी का भर दिया होता! फिर इतने बुद्धू न दिखाई पड़ते। बुद्ध ही बुद्ध होते। अभी तो बुद्धू ही बुद्धू हैं। जहां देखो वहीं बुद्धू! और मैं पांडित्य के इसलिए खिलाफ हूं कि वह जो बुद्धू में बड़े "ऊ" की मात्रा लगी है, वह काटना चाहता हूं। ताकि बुद्ध रह जाओ।

मुल्ला नसरुद्दीन इंग्लैंड घूमने गया। लंदन हवाई अड्डे से होटल की दूरी लगभग दस मील थी। नसरुद्दीन को बोर होता हुआ देख टैक्सी ड्राइवर बोलाः आपको होटल तक पहुंचने में करीब आधा घंटा लगेगा, तब तक आप कहीं ऊब न जाएं, इसलिए आपसे एक सवाल पूछता हूं; सवाल बड़ा कठिन है!

मुल्ला ने कहाः पूछो-पूछो! मेरे लिए कुछ कठिन नहीं है।

टैक्सी ड्राइवर बोलाः मेरे मां-बाप की एक ही संतान है, जो न मेरा भाई है और न मेरी बहन है; बताइए वह कौन है?

नसरुद्दीन बड़ी उलझन में फंस गया। उसने बहुत सिर मारा, लेकिन समझ ही न
आए कि ऐसा हो ही कैसे सकता है! मां-बाप की संतान या तो भाई होगा या बहन होगी। अंततः सोचते-सोचते समय बीत गया, होटल आ गया।
ड्राइवर ने व्यंग्य से पूछाः कहिए, महाशय जी! मैंने पहले ही कहा था न, सवाल बड़ा कठिन है; अच्छे-अच्छों को जवाब नहीं सूझता!
बेचारे मुल्ला ने हार मान ली। ड्राइवर ने बताया, अरे! सीधी सी बात है, मैं खुद अपने मां-बाप की संतान हूं, एकमात्र, मगर न मैं खुद का भाई हूं, न खुद की बहन हूं।
जब नसरुद्दीन भारत वापस आया तो उसके मित्रों ने वापस लौटने की खुशी में एक पार्टी दी। मौका मिलते ही मुल्ला ने दोस्तों से वही सवाल पूछा। वह तो मौके की तलाश में ही था। बोलाः यारो, एक प्रश्न पूछता हूं। मेरे मां-बाप की एक औलाद है, जो न रिश्ते में मेरा भाई लगता है और न बहन लगती है, तो बताओ वह कौन है?
इस प्रश्न को सुन कर ढब्बू जी ने दांतों तले अंगुली दबा ली, चंदूलाल अपनी चांद पर हाथ फेरने लगे और मटकानाथ ब्रह्मचारी अपनी भारी-भरकम तोंद पर। भोंदूमल से तो फिर कोई आशा ही न थी। सबने पराजित होकर कहा: "मुल्ला, तुम्हीं जवाब दो, हमारी तो अक्ल काम नहीं करती, कि जो तुम्हारे मां-बाप की ही संतान है, किंतु न तुम्हारा भाई है, न बहन है, तो आखिर वह कौन हो सकता है फिर?
गर्व से छाती फुला कर नसरुद्दीन बोला: अरे, वही लंदन का टैक्सी ड्राइवर!
उधार ज्ञान बस ऐसा ही हो सकता है। वह तुम्हारी प्रतिभा नहीं। वह तुम्हारी प्रज्ञा नहीं। वह तुम्हारा बोध नहीं। तुम दोहरा सकते हो, लेकिन दोहराने से तुम्हारे जीवन में कोई क्रांति घटित नहीं हो सकती है। और मैं चाहता हूं तुम्हारे जीवन में क्रांति घटित हो। मैं चाहता हूं तुम्हारे भीतर पड़ा हुआ बीज वृक्ष बने। फूल बने।
वसंत आया है, इन वसंत के अदभुत क्षणों में तुम्हारे भीतर भी बहार आ सकती है। तुम दूसरों के उधार शब्दों में मत पड़े रहना। ज्ञान की फिकर छोड़ो, ध्यान की चिंता लो। ज्ञान की जिसने फिकर की, वह पंडित हो जाता है। और जिसने ध्यान की चिंता ली, वह बुद्धत्व को उपलब्ध होता है। वही सच्चा ज्ञानी है, जो ध्यान को पा लेता है। वह झूठा ज्ञानी है, जो पंडित होकर रह जाता है। पंडितों से मेरा कोई विरोध नहीं है--विरोध मेरा किसी से भी नहीं है! यद्यपि मेरी बातें बहुतों को लगती होंगी कि विरोध की हैं। लेकिन वह ऐसा ही है जैसे डाक्टर तुम्हारे फोड़े को फोड़े, मवाद को बाहर निकाले, तो पीड़ा होगी। तो तुम कहीं डाक्टर से लड़ने-झगड़ने को राजी मत हो जाना। कुश्तमकुश्ती न करने लगना! क्योंकि वह बेचारा केवल तुम्हें तुम्हारे फोड़े से मुक्त करवाने की चेष्टा कर रहा है। चीर-फाड़ भी कर रहा है तो तुम्हारे हित में।
मुझे जो इतनी गालियां पड़ रही हैं और पड़ेंगी, वह इसीलिए कि लोगों को यह ख्याल नहीं है कि मैं जो शल्य-चिकित्सा कर रहा हूं, वह तुम्हारे हित में है। तुम्हारे कल्याण के लिए। तुम्हारे आनंद के लिए।
बुद्धों को सदा गालियां पड़ी हैं, सदा पड़ती रहेंगी। यह स्वाभाविक है। क्योंकि लोगों को पता ही नहीं कि उनकी दशा क्या है, किस गड्ढे में पड़े हैं। किस मूर्च्छा में सोए हैं। लेकिन अपनी नींद में वे सपने देख रहे हैं और हो सकता है तुम सपना मधुर देख रहे हो, और मैं आ जाऊं और तुम्हें हिलाने लगूं और जगाने लगूं। तुम्हारा नाराज हो जाना भी स्वाभाविक है। तुम्हारी नाराजगी को मैं स्वीकार करता हूं। लेकिन फिर भी तुम्हें हिलाऊंगा। क्योंकि तुम्हें बिना जगाए मैं नहीं मानूंगा! जाग कर मैंने जो जाना है, वह तुम्हें भी जनाना चाहता हूं। जाग कर मैंने जो जाना है, उसमें तुम्हें भी साझीदार बनाना चाहता हूं।

आज इतना ही।

रामदुवारे जो मरे
तीसरा प्रवचन

अंत एक दिन मरौगे रे

सोई सहर सुबस बसे, जहं हरि के दासा।
दरस किए सुख पाइए, पूजै मन आसा।।
साकट के घर साधजन, सुपनैं नहिं जाहीं।
तेइ-तेइ नगर उजाड़ हैं, जहं साधू नाहीं।।
मूरत पूजैं बहुत मति, नित नाम पुकारैं।
कोटि कसाई तुल्य हैं, जो आतम मारैं।।
परदुख-दुखिया भक्त है, सो रामहिं प्यारा।
एक पलक प्रभु आपतें नहिं राखैं न्यारा।।
दीनबंधु करुनामयी, ऐसे रघुराजा।
कहैं मलूक जन आपने को कौन निवाजा।।
सोई सहर सुबस बसे, जहं हरि के दासा।

मुवा सकल जग देखिया, मैं तो जियत न देखा कोय, हो।
मुवा मुई को ब्याहता रे, मुवा ब्याह करि देइ।।
मुए बराते जात हैं, एक मुवा बधाई लेइ, हो।।
मुवा मुए से लड़न को, मुवा जोर लै जाइ।
मुरदे मुरदे लड़ि मरे, मुरदा मन पछिताइ, हो।।
अंत एक दिन मरौगे रे, गलि गलि जैहे चाम।
ऐसी झूठी देह तें, काहे लेव न सांचा नाम, हो।।
मरने मरना भांति है रे, जो मरि जानै कोइ।
रामदुवारे जो मरे, वाका बहुरि न मरना होइ, हो।।
इनकी यह गति जानिके, मैं जहं-तहं फिरौं उदास।
अजर अमर प्रभु पाइया, कहत मलूकदास, हो।
अजर अमर प्रभु पाइया, कहत मलूकदास, हो।।

ऊपर कदम तरु पर
बांसुरी बजाते तुम जब ढलती दोपहर
स्वर ऊपर खिंचता हवाओं को खनकाता
शाम धुली अलसाई जमुना के आर-पार
पगडंडी, गांव-गली, घर-आंगन लहराता सुर-नर-मुनि, जड़-चेतन सब पर करता टोना

नीचे मैं पोखर
कदम तरु के तले एक कच्ची तलैया भर
मैं क्या भला वंशी स्वर को पकड़ पाता? मुझको मिला सिर्फ तुम्हारी जलछाया का भार क्षणभंगुर साया जो दिन ढलते खो जाता

रह जाता मैला जल फैला कोना-कोना
वंशी पर तुमने जो भी जादू गाया हो
पर,
कसम धरा लो जो मैंने कुछ भी पाया हो!

बंधती होगी जमुना की धारा वंशी से यहां तो हमेशा से बंधा हुआ पानी है कीचड़ है, काई है, सड़े-गले-पत्ते हैं गंदे जल-सांपों की रेंगती निशानी है

होगी कोई राधा जो खिंच आती होगी

सम्मोहित गति, खिसका आंचल, अधखुल पायल मुझमें तो केवल कुछ थकी हुई लहरें बस अपने से टकरातीं अपने से ही घायल

ऊपर मेरे तट पर
बजता रहा वंशी स्वर
करता रहा सुर-नर-मुनि, जड़-चेतन पर टोना

नीचे मैं पोखर
रहा ज्यों-का-त्यों कीचड़ भर
व्यास को जो दिखा नहीं
सूर ने जो लिखा नहीं
मेरे हित सारी यह लीला असंगत रही बिल्कुल निरर्थक रहा मेरा होना कदम के तले होना, न होना

ऊपर कदम तरु पर
बांसुरी बजाते तुम जब ढलती दोपहर
स्वर ऊपर खिंचता हवाओं को खनकाता
शाम धुली अलसाई जमुना के आर-पार
पगडंडी, गांव-गली, घर-आंगन लहराता
सुर-नर-मुनि, जड़-चेतन सब पर करता टोना

विश्व एक जादू से व्याप्त है। बांसुरी बज ही रही है। हम बहरे हैं। कृष्ण का गीत उठ ही रहा है। हमारी सुनने की सामर्थ्य नहीं। सामने ही है परमात्मा और हम आंख बंद किए खड़े हैं। सूरज उसका निकला ही है। सूरज उसका कभी डूबता ही नहीं। रात उसके लोक में होती ही नहीं। अंधकार से उसकी पहचान ही नहीं। वहां चांदनी ही चांदनी है। वहां पूर्णिमा ही पूर्णिमा है। न कुछ कम होता न ज्यादा; सब वैसा का वैसा है। लेकिन हम? ... बस ऐसे ही हैं जैसे कीचड़ का पोखर--सड़ता और गलता। हमारे जीवन में नहीं कमल खिलता। खिल सकता है। सड़े-गले पोखर में भी कमल खिल सकता है। सड़े-गले पोखर में ही कमल खिलता है। कमल खिलने की क्षमता हमारे भीतर है। सामर्थ्य हमारी है। थोड़ा श्रम चाहिए। थोड़ी साधना चाहिए। थोड़ी सजगता चाहिए। थोड़ी साधना चाहिए थोड़े सत्य को खोजने की आकांक्षा, अभीप्सा चाहिए। तो अभी फूट पड़े बीज। अभी उग आए कमल। अभी उठ आए कमल, हो जाए पार कीचड़ से, हो जाए पार पोखर से, बात करने लगे चांद-तारों से, सुगंध उठे उसकी और कमल पहचान ले तत्क्षण बांसुरी को और कमल पहचान ले तत्क्षण राधा की पायल को।
कमल हमारा प्रतीक है सदियों से--चैतन्य के खुल जाने का। सहस्रदल कमल!
जब तुम्हारी चेतना पूरी की पूरी अनावृत हो जाती है, सब आच्छादन टूट जाते हैं, सब द्वार-दरवाजे खुल जाते हैं--तभी जानना कि तुम जीवित हो, अन्यथा तुम मृत हो!
ठीक कहते हैं मलूकदास--
मुवा सकल जग देखिया, मैं तो जियत न देखा कोय, हो।
कहते हैं कि मैंने मुर्दे ही मुर्दे देखे। सारा जगत छान डाला, मुर्दों के अतिरिक्त मुझे कोई जिंदा न मिला।
थोड़ा सोचो, तुम जिंदा हो या मुर्दा? मलूकदास तुम्हारी ही बात कर रहे हैं, किसी और की नहीं। सोचो, कीचड़ ही रहना है या कमल बनना है? विचारो, संकल्प को जगने दो, समर्पण को घटने दो, कीचड़ ही रहकर नहीं मर जाना है। नहीं तो जिए, न जीने के बराबर। जिए ही नहीं, बस रोज मरे और मरे। जन्म के बाद मरते ही रहे, मरते ही रहे। सत्तर साल लगे मरने में कि अस्सी साल, इससे क्या फर्क पड़ता है? लोग अपनी मरण-शैय्या पर पड़े हैं।
सोई सहर सुबस बसे, जहं हरि के दासा।

मलूकदास कहते हैंः बस जानना कि वही नगर आनंदमग्न है, जहां हरि के दास निवास करते हैं। बाकी तो सब मरघट हैं। बाकी तो नगर नहीं हैं।
इब्राहीम बड़ा सूफी फकीर हुआ। उससे कोई पूछता... उसने झोपड़ा बना रखा था राजधानी बल्ख के बाहर... कोई उससे पूछताः बस्ती का रास्ता कहां है? कहताः बाएं चले जाओ। भूल कर दाएं मत जाना। दायां रास्ता मरघट का है। लोग उसकी बात मान लेते। फकीर, मानने जैसा भी लगता, उसकी बातों में बल भी दिखता, उसकी आंखों में ज्योति, उसकी उपस्थिति, गवाही, कि वह ठीक ही कहता होगा और ऐसी बात झूठ कोई क्यों कहेगा! साधारण राहगीर भी किसी को गलत रास्ता नहीं बताता। लेकिन लोग लौटते घंटे दो घंटे बाद, बड़े नाराज लौटते, बड़े गुस्से में लौटते, लड़ने-झगड़ने को लौटते। इब्राहीम से कहते कि तुम होश में हो या पागल हो? तुमने मरघट भेज दिया। और हमने दूसरों से पता लगाया, मरघट पर जो लकड़ियां बेचता है उससे पता लगाया तो पता चला कि गांव तो दूसरी तरफ है। जिस तरफ तुमने मरघट बताया वहां गांव है और जहां तुमने गांव बताया वहां मरघट है।
इब्राहीम ने कहाः क्षमा करो--रोज कहता, क्षमा करो--अपनी-तुपनी भाषा अलग। तुमसे झूठ नहीं बोला हूं। जिसको तुम बस्ती कहते हो, वह बस्ती नहीं है, क्योंकि वहां कोई कब बसा रह सका? बस्ती तो उसे कहना चाहिए जहां बसे सो बसे। जिसको तुम मरघट कहते हो, उसको मैं बस्ती कहता हूं कि वहां जो बस गया एक बार सो बस गया, फिर कभी उजड़ता नहीं। और तुम जिसको बस्ती कहते हो, वहां रोज लोग उजड़ रहे हैं, वहां रोज लोग मर रहे हैं। उसको बस्ती कहते हो! जहां पंक्तिबद्ध लोग खड़े हैं मरने को, उसको बस्ती कहते हो! तो क्षमा करना, भाई! मेरी तुम्हारी भाषा अलग है। भाषा की भूल हो गई। जान कर तुम्हें भटकाया नहीं। तुमने अगर मरघट पूछा होता, तो मैं तुम्हें उस जगह भेज देता जिसको तुम बस्ती कहते हो। लेकिन तुम बस्ती जाना चाहते थे, तो मैंने तुम्हें बस्ती भेज दिया। बस्ती? वही, जहां बसे हुए कभी उजड़ते नहीं।
हमारी बस्तियों से तो मरघट बेहतर हैं। हमारी बस्तियों में सिवाए उपद्रव के, झंझटों के, जंजाल के और क्या है? मरघट में कम से कम शांति तो है, सन्नाटा तो है, मौन तो है, कलह तो नहीं।
सोइ सहर सुबस... वही शहर बसा हुआ जानना; ठीक से बसा है, ऐसा जानना-- सुबस--सोइ सहर सुबस बसे, जहं हरि के दासा। जहां परमात्मा को प्रेम करने वाले लोग, परमात्मा को परख लेने वाले लोग, परमात्मा के चरणों को गहने वाले लोग बसते हों--समझना वही बसती है, बाकी तो सब मरघट ही मरघट है।

कब्रों के मनाजिरने करवट न कभी बदली।
अंदर वही आबादी, बाहर वही वीराना।।

वह जो कब्र में सो जाता है, करवट भी नहीं बदलता।

कब्रों के मनाजिर ने करवट न कभी बदली।

बस गए एक दफा कब्र में, लेट गए एक दफा कब्र में, फिर कोई करवट भी नहीं बदलता। उतनी हलचल भी नहीं है वहां। अंदर वही आबादी, ... मरघट के भीतर कब्र के भीतर तो आबादी।

अंदर वही आबादी, बाहर वही वीराना।

जिसको तुम संसार कहते हो, वह वीराना है, मरुस्थल है। सहस्रदल कमल न खिले तो जानना कि मरुस्थल है। सिर्फ थोड़े से लोग जीए हैं--कोई बुद्ध, कोई महावीर, कोई कृष्ण, कोई जीसस, कोई कबीर, कोई मलूक, कोई नानक। बस, थोड़े से लोग जीए हैं यहां। अंगुलियों पर गिने जा सकते हैं उनके नाम। बाकी तो सब मुर्दा हैं।
मगर बड़ी हैरानी की बात है, मुर्दों के इतिहास लिखे जाते हैं, जिंदों
का इतिहास में उल्लेख नहीं! बात भी समझ में आती हैः मुर्दे ही इतिहास

लिखते हैं, मुर्दों का ही इतिहास लिखेंगे। बुद्धों ने इतिहास लिखा होता, जिंदों का इतिहास लिखते। मुर्दे-मुर्दों की ही समझ पाते हैं। मुर्दों की अपनी भाषा है, अपनी दुनिया है--पद, प्रतिष्ठा, धन, गौरव, अहंकार; बस, मुर्दे इन्हीं के पीछे दौड़ते रहते हैं।

अविनश्वर हुआ रूप
शाश्वत हो गई प्यास
हर कण चेतन-हुलास
हर क्षण मधु महारास
रजनी की कबरी में, गुथे स्वर्ण-रश्मि फूल
कुंदन हो गए चरण, चंदन हो गई धूल
चेतन के सिरहाने
पंखा झलता प्रकाश
मधु लय में तैर गए, पांखी-से मगन छंद
प्राणों से बहा प्यार, फूलों से ज्यों सुगंध
मुट्ठी में बंद हुआ
पूरा मधु महाकाश

परमात्मा के चरण पकड़ो तो यह चमत्कार घटे। यह घटता रहा है। परमात्मा
के सामने झुको तो यह सारा आकाश तुम्हारा है, ये सारे चांद-तारे तुम्हारे हैं। परमात्मा से जुड़ो तो मिट्टी सोना हो जाती है। अभी तो तुम सोना भी छुओ तो मिट्टी हो जाता है।
अविनश्वर हुआ रूप! जो उससे जुड़ गया, उसने ही जाना कि सौंदर्य क्या है।
यह भी कोई सौंदर्य है, जो आज है और कल नहीं! यह भी कोई सौंदर्य है, जो चमड़ी से भी ज्यादा गहरा नहीं है! यह भी कोई सौंदर्य है, ऊपर-ऊपर सुंदर और भीतर? हड्डी-मांस-मज्जा! काश, तुम देख सको अपने को कि भीतर क्या है! अस्थि-पंजर मात्र हो।
मैंने सुना, एक अस्थि-पंजर एक डाक्टर के घर पहुंच गया।... हैरान न होना, अस्थि-पंजर ही पहुंच रहे हैं।... दस्तक दी, आधी रात का वक्त--लेकिन डाक्टर को तो चौबीस घंटे तत्पर होना चाहिए, सो उसने द्वार खोला। अस्थि- पंजर को देख कर उसकी भी श्वास रुक गई। बहुत देखे थे उसने मरीज, ऐसा मरीज कभी नहीं देखा था। यह तो मर चुका है। लेकिन डाक्टर भी डाक्टर, ऐसे कोई डर जाए! उसने कहाः आइए, महाशय! लेकिन जरा आपको देर हो गई आने में।
और क्या कहो!
काश! तुम भी अपने को देख सको जैसे हो, तो अस्थि-पंजर के अतिरिक्त कुछ
भी नहीं है वहां। कहां रूप, कहां सौंदर्य!

अविनश्वर हुआ रूप...

लेकिन जुड़ गया जो प्रभु से, उसका सौंदर्य विनाश के पार हो जाता है। मृत्यु भी उसके सौंदर्य को छीन नहीं सकती।

अविनश्वर हुआ रूप
शाश्वत हो गई प्यास
हर कण चेतन-हुलास...

हुलास पैदा होता है! हर कण चेतन-हुलास। सारा जगत नाचता हुआ मालूम पड़ता है। कण-कण नृत्यमय हो जाता है। रास रच जाता है।

हर-कण चेतन-हुलास
हर-क्षण मधु महारास
रजनी की कबरी में, गुथे स्वर्ण-रश्मि फूल
कुंदन हो गए चरण, चंदन हो गई धूल

प्रभु से जुड़ो तो तुम्हें वह रसायन हाथ लगे, वह कला...

कुंदन हो गए चरण, चंदन हो गई धूल
चेतन के सिरहाने
पंखा झलता प्रकाश
मधुलय में तैर गए, पांखी से मगन छंद

तुम्हारे भीतर भी उठे काव्य, तुम्हारे भीतर भी छंदों का जन्म हो, तुम्हारे भीतर भी छंद पर फड़फड़ाएं, उड़ें आकाश में। तुम्हारे भीतर भी भगवद्गीता पैदा हो सकती है; कुरान पैदा हो सकता है।

मधुलय में तैर गए, पांखी-से मगन छंद
प्राणों से बहा प्यार, फूलों से ज्यों सुगंध
मुट्ठी में बंद हुआ
पूरा मधु महाकाश

परमात्मा के चरण क्या हाथ में आ जाएं कि सारा आकाश तुम्हारी मुट्ठी में आ जाता है। तब जीवन है। जब महाजीवन है तभी जीवन है! जब शाश्वत जीवन है तभी जीवन है! शेष सब तो मृत्यु है। शेष सब धोखा है।
दरस किए सुख पाइए, पूजै मन आसा।
और वह दूर नहीं है, उसका मंदिर दूर नहीं है। हिंदुओं के मंदिर दूर होंगे, मुसलमानों की मस्जिदें दूर होंगी, ईसाइयों के गिरजे दूर होंगे, परमात्मा का मंदिर दूर नहीं है। तुम जहां हो, वही तुम्हें घेरे हुए है। जहां झुक जाओ, वहीं काबा। जहां उसकी पूजा में मग्न हो जाओ, वहीं काशी। जहां नाच उठो, वहीं यमुना-तट, वहीं बंसीवट। जहां मगन होकर, मस्त होकर डोलने लगो, वहीं कृष्ण के हाथ में हाथ पड़ जाए।
दरस किए सुख पाइए...
उसके दर्शन मात्र से सुख की बरखा हो जाती है। परस की तो बात दूर, दरस काफी! दिखाई भर पड़ जाए, एक झलक भर दिखाई पड़ जाए कि अंधेरा सदा के लिए मिट जाता है। और दरस होता है तो फिर परस भी होता है। पहले देखना, फिर स्पर्श। और उसका स्पर्श तो तुम्हें रूपांतरित कर देता है।
दरस किए सुख पाइए...
तब तक सुख नहीं मिलेगा। तब तक तुम लाख करो उपाय, दुख ही पाओगे। उपाय तो करते ही हो, सारे लोग उपाय कर रहे हैं, एक ही उपाय में संलग्न हैं--कैसे सुख मिले? मगर दिखता है कोई सुखी? धन है, सुख नहीं। पद है, सुख नहीं। नाम है, यश है, कीर्ति है, सुख नहीं।
भीतर प्राणों में झांको धनियों के, पद वालों के, यशस्वियों के--राख ही राख पाओगे। वही गंदी तलैया, जिसके ऊपर बांसुरी बजती रही, तलैया ने न कुछ सुना, न कुछ जाना। कृष्ण का रास रचता रहा तलैया के तट पर, राधा आती रही, सुर-नर-मुनि आह्लादित होते रहे, मगर तलैया थी तलैया ही रही, वहां कीचड़ ही बनती रही। वहां पत्ते ही सड़ते रहे। वहां दुर्गंध ही उठती रही। सुख है कहां?
इस संसार में इतने लोग तुम्हें दिखाई पड़ते हैं, मगर कहीं तुम्हें ऐसा लगता है कि भीतर वसंत आया है, मधुमास आया है? राख ही राख! रिक्तता ही रिक्तता! या कूड़ा-करकट! इसीलिए लोग अपने को छिपाते हैं, वस्त्रों में छिपाते हैं, मुखौटों में छिपाते हैं, मुस्कुराहटों में छिपाते हैं। लेकिन सब छिपावट के भीतर से असलियत प्रकट हो जाती है।
देखा, जिमी कार्टर जब नये-नये प्रेसिडेंट बने थे तो उनकी बत्तीसी दिखाई पड़ती थी! अब उनकी नई तस्वीरें देखीं? दो-तीन साल में ही सब पत्ते झड़ गए, फूलों का कुछ पता नहीं। वह हंसी कहां बिला गई?
जीवन के यथार्थ तुम्हारे सब मुखौटे छीन लेंगे; तुम्हारी सब मुस्कुराहटें छिन जाएंगी। आशाओं में हंस सकते हो। जब तक दूर हो, पद नहीं मिला, तब तक आशा रख सकते हो; पद मिलते ही निराशा हाथ लगती है। जब तक धन नहीं

मिला, तब तक सोच सकते हो, सपने देख सकते हो कि मिल जाएगा तो ऐसा करूंगा, वैसा करूंगा; मिल जाए, फिर अड़चन शुरू होती है।
मेरे एक परिचित को एक प्राचीन शास्त्र पता नहीं कहां से हाथ लग गया हैः "कुर्सी-सूत्र!"
ओम श्री कुर्सीयाय नमः। अथ श्री कुर्सी सूत्रम्।।
टीकाः हे कुर्सी माता, मैं आपको नमस्कार करता हूं। अब मैं कुर्सी- सूत्र का श्रीगणेश करता हूं।
शंकाः कुर्सी शब्द स्त्रीलिंग है, फिर भी "श्री" लगाने का औचित्य स्पष्ट करें।
निवारणः कुर्सी स्त्री, पुरुषों, आबाल वृद्धों को समान रूप से प्रिय है, अतः श्री ही उपयुक्त है। हां, तुम चाहो तो सुश्री लगा कर कुर्सी का महत्व बढ़ा सकते हो।
कुर्सी चरित्रम नेतास्य भाग्यम्।
दैवो न जानाति कुतो मनुष्यम्।।
टीकाः सुश्री कुर्सी का चरित्र और नेता-रूपी आसीन जंतु का भाग्य तो देवता भी नहीं जान सकते, मनुष्य क्या जानेगा!
शंकाः महाराज, इस गूढ़ श्लोक का अर्थ बताइए।
निवारणः बालक, सद्यः राजनीति पर दृष्टिपात करो और नारायण भजो, सब तुम्हारी बुद्धि में समा जाएगा।
त्वमेव माता च पिता त्वमेव।
टीकाः कुर्सी ही मेरी माता और पिता है, इस संसार में इसके अलावा और कुछ भी मेरा नहीं है, अतः इसे पाने के लिए साम-दाम-दंड-भेद सब कुछ सही है।
जो इस सत्य को स्वीकार नहीं करेंगे, वे कष्ट के भागी होंगे।
कुर्सी क्षेत्रे-दिल्ली क्षेत्रे समवेता युयुत्सवः।
नेता-नेताइन किम्कुर्वते।।
टीकाः कुर्सी का क्षेत्र दिल्ली है, ऐसा शास्त्रों में लिखा है।
नेता-नेताइन वहां पर क्या कर रहे हैं?
निवारणः हर नेता को अर्जुन की तरह केवल कुर्सी दिखाई दे रही है, और इस कुर्सी हेतु वह लड़-लड़ मर रहा है, घिघिया रहा है और सभी संभव कार्य कर रहा है।
कुर्से त्वमधिक धन्या नेतारपि धन्यो भवतारकोऽपि।
मज्जति चुनाव समुद्रे तव कुच कलशावलंबनम कुरुते।।
टीकाः हे कुर्सी! नेता दूसरों को तो भवसागर पार करा देते हैं, परंतु
जब वे स्वयं चुनाव-रूपी काम के समुद्र में डूबने लगते हैं, तब आपके कुच-कलशों (हत्थों) को पकड़ कर ही पार कर पाते हैं।
शंकाः अगर कुर्सी बिना हत्थोंवाली हो, तो क्या होता है?
निवारणः ऐसी स्थिति में कुर्सी की टांगें या पूंछ पकड़ कर भी भवसागर
को पार करने का विधान है।
सर्वेरक्षकाः कुर्सी। कुर्सी रक्षका नेता।।
टीकाः सभी की रक्षा कुर्सी करती है और कुर्सी की रक्षा नेता करता है।
शंकाः नेता कुर्सी की रक्षा कैसे कर सकता है?
निवारणः लगता है तुम आजकल अखबार नहीं पढ़ते। नेता कुर्सियों के पीछे ऐसे ही पड़े हैं, जैसे कुंआरियों के पीछे लड़के। छेड़ो तो दुख, न छेड़ो तो दुख।
उत्साहवंत पुरुषाः प्राप्तः कुर्सी।
टीकाः उत्साही और परिश्रमी पुरुष कुर्सी को प्राप्त करते हैं।
शंकाः क्या कुर्सी को बिना पाए काम नहीं चल सकता है?
निवारणः सामान्यजन का काम तो चल सकता है, लेकिन जानवरों के बाड़े में सभी कुर्सी चाहते हैं, अतः उनका कार्य नहीं चल पाता है। जाओ और जॉर्ज ऑरवेल का उपन्यास पढ़ो।
कर्मण्येवाधिकारस्ते, कुर्सी फलेषु कदाचनः।
टीकाः कर्म किए जाओ, कभी तो कुर्सी-रूपी फल की प्राप्ति होगी।
शंकाः लेकिन यह श्लोक तो कृष्ण ने गीता में कहा है।

निवारणः तो क्या हुआ, वत्स, उस समय भी तो लड़ाई कुर्सी के लिए ही हो रही थी।
कुर्सीनाम मालिक डिक्टेटर भवते।
टीकाः कुर्सी का मालिक डिक्टेटर बन जाता है।
शंकाः कोई उदाहरण दीजिए।
निवारणः इमर्जेंसी का इतिहास देखो, बालक! वहां हर ऐरा-गैरा-नत्थू- खैरा अपने आपको डिक्टेटर से कम नहीं समझता था। और कुछ तो वास्तव में ही बन गए।
उच्चासने, उच्चपदे, उच्चयौवन गर्विते,
उच्चाधिकार संयुक्ते, कुर्से नमोस्तुते।
टीकाः हे ऊंचे आसन, बड़े पद और उच्च यौवन तथा अधिकारों से संपन्न कुर्सी, तुझे नमस्कार है!
शंकाः कुर्सी का यौवन कैसा होता है?
निवारणः कुर्सी चिरयौवना होती है, मूर्ख, कुर्सी कभी बूढ़ी नहीं होती।
हां, कभी-कभी भारत सरकार की तरह लंगड़ा कर चलने लग जाती है।
प्रतिशंकाः लंगड़ी कुर्सी कब स्थिर होती है?
प्रतिनिवारणः जब इमर्जेंसी लगती है।
या कुर्सी सर्वभूतेषु लज्जारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै, नमस्तस्यै, नमस्तस्यै नमोः नमः।।
टीकाः कुर्सी-रूपी देवी सभी जगह व्याप्त है और इसे बार-बार नमस्कार है।
शंकाः यह श्लोक तो दुर्गापाठ का है।
निवारणः तो क्या हुआ, अब यह नव-कुर्सीपाठ में भी सम्मिलित है।
यो भजंते मानवाः तै प्राप्तः कुर्सी।।
टीकाः जो इस सूत्र का पारायण करेंगे, वे कुर्सी को आसानी से प्राप्त करेंगे।
शंकाः क्या कुर्सी आवश्यक है?
निवारणः हां, रहीम ने कहा हैः कुर्सी गए न ऊबरे, नेता, मानस, चून।
प्रतिशंकाः क्या नेता मानस में नहीं आते?
प्रतिनिवारणः यह शंका व्यर्थ है, स्वयं समझो।
सुफलम प्राण्नुवन्ति प्रातः भजन्ति ये।
रतिरंभा भवेद दासी, लक्ष्मीस्तुगति सहगामिनी।।
टीकाः जो व्यक्ति इस सूत्र का पारायण प्रातः उठ कर करेंगे, उसे रतिरंभा तथा लक्ष्मी जैसी सहगामिनियां अभिसार हेतु कुर्सी देवी प्रदान करेंगी।
इति श्री कुर्सी सूत्रम्।
टीकाः अब मैं कुर्सी सूत्र का समापन करता हूं।
दौड़ रहे हैं लोग, विक्षिप्त की तरह दौड़ रहे हैं--धन, पद, प्रतिष्ठा। हाथ क्या लगता है? इस जीवन के पूरे ही श्रम के बाद परिणाम क्या है, प्रतिफल क्या है, निष्पत्ति क्या है? जिसने एक बार भी विचार किया, वह थोड़ा चौंकेगाः कैसे इतने लोग भागे चले जाते हैं--व्यर्थ के पीछे, असार के पीछे! देखते हैं दूसरों को रोज गिरते कब्र में, देखते हैं रोज अरथी उठते और फिर भी इस तरह लगे रहते हैं दौड़ में जैसे उन्हें इस जगत से कभी नहीं जाना है! मरते-मरते दम तक भी लड़ते रहते हैं।
मलूकदास ने तो बहुत अदभुत बात कही है। उन्होंने तो कहा है कि मर जाते हैं, फिर भी लड़ते रहते हैं।
साकट के घर साधजन, सुपनैं नहिं जाहीं।
जो इस तरह शक्ति की, पद की, प्रतिष्ठा की पूजा में संलग्न हैं... साकट। शक्ति की पूजा मनुष्य का बड़े से बड़ा दुर्भाग्य है। शांति को पूजो, शक्ति को नहीं। शक्ति की जिसने पूजा की, शांति तो पाएगा ही नहीं, शक्ति भी नहीं पाएगा। और जिसने शांति को पूजा, अदभुत घटता है। शांति तो मिलती ही मिलती है और एक अपूर्व शक्ति का आविर्भाव होता है। शक्ति जो तुम्हारी नहीं, शक्ति, जो परमात्मा की है। तुम तो केवल एक उपकरण हो जाते हो। जो शक्ति का

पूजक है--फिर शक्ति धन की हो, पद की हो, ज्ञान की हो, त्याग की हो--जो भी शक्ति का पूजक है, अगर वह परमात्मा की भी पूजा कर रहा है इसलिए कि मुझे कुछ शक्ति मिल जाए, चाहे वह शक्ति साधारण हो, स्थूल हो, चाहे सूक्ष्म हो, चमत्कार की हो, जो भी शक्ति की पूजा कर रहा है, साधजन, जो सच्चा साधु है, उसके सपने में भी नहीं आता। सत्य में आना तो दूर, उसके स्वप्न में भी साधुता की छाया नहीं पड़ती।
तेइ-तेइ नगर उजाड़ हैं, जहं साधू नाहीं।
और जहां साधु न हो, वह नगर उजाड़ है। नगर से प्रयोजन है तुम्हारा। मनुष्य को हम कहते हैं पुरुष। पुरुष शब्द बड़ा प्यारा है; वह बनता है पुर से। पुर का अर्थ होता हैः नगर। पुरुष का अर्थ होता हैः तुम्हारी देहरूपी नगर का वासी। तुम्हारी देह एक बड़ा नगर है, छोटा-मोटा भी नहीं। तुम्हारी देह में सात करोड़ जीवाणु हैं। बंबई की संख्या कम है, कलकत्ते की संख्या भी कम है, टोकियो की संख्या भी कम है... टोकियो दुनिया का सबसे बड़ा नगर है--एक करोड़ की आबादी। तुम तो उससे भी बड़े नगर हो, सात गुने बड़े। तुम्हारे भीतर सात करोड़ जीवाणु बसे हैं सात करोड़ जीवित अणु, जीवित कोष्ठ। और उन सात करोड़ जीवित कोष्ठों के बीच तुम्हारा निवास है, इसलिए तुम्हें पुरुष कहा है। तेइ-तेइ नगर उजाड़ हैं, जहं साधू नाहीं।
और तुम्हारे भीतर तब तक साधुता का जन्म नहीं होगा। जब तक तुम शक्ति की आराधना में लगे हो--धन, पद, प्रतिष्ठा; इस लोक की शक्ति या परलोक की शक्ति। एक आदमी ने बहुत वर्षों की मेहनत के बाद पानी पर चलना सीख लिया। स्वभावतः दूर-दूर तक उसकी ख्याति पहुंच गई--ऐसा चमत्कारी, जो पानी पर चले! कहते हैं वह आदमी रामकृष्ण से मिलने आया। दिखाने आया था चमत्कार। दिखाने आया था कि तुम क्या खाक परमहंस! परमहंस मैं हूं! रामकृष्ण को उसने कहा कि आओ नदी के तट पर... दक्षिणेश्वर है भी गंगा के किनारे, जहां रामकृष्ण रहते थे... कहाः आओ गंगा के पास; वहां दिखलाऊंगा चमत्कार।
रामकृष्ण ने पूछाः तुम्हारा चमत्कार क्या है?
उसने कहाः मैं पानी पर चल सकता हूं।
रामकृष्ण ने कहाः बड़ी हैरानी की बात है! तुमने हर आदमी की तरह तैरना क्यों नहीं सीखा? ! कितने साल लगे तुम्हें पानी पर चलना सीखने में?
उसने कहाः अठारह साल साधना की।
रामकृष्ण ने कहाः हद हो गई, अठारह साल गंवाए! अरे, मुझे तो जब भी उस पार जाना होता है, दो पैसे में तो नाव मुझे पार कर देती है! दो पैसे की चीज को तुमने अठारह साल में कमाया! और ऐसे रोज उस पार मुझे जाना भी नहीं पड़ता, कभी वर्ष में एकाध बार, दो बार। अठारह साल में मुश्किल से मैं दस-पांच बार उस पार गया हूं। सो चार-छह आने की चीज को तुम दिखाने मुझे आए हो! और इतनी अकड़ से आए हो! अरे, कुछ शरम खाओ, कुछ संकोच करो!
रामकृष्ण ने ठीक कहा। आखिर पानी पर चलोगे भी तो इससे क्या होगा? पानी
पर चल भी लिए तो क्या प्रयोजन है? हवा में उड़ भी लिए तो क्या होगा? मछलियां पानी में चल रही हैं, और पक्षी हवा में उड़ रहे हैं! हवा में उड़ोगे तो सिर्फ बुद्धू मालूम पड़ोगे; लोग हंसेंगे, और कुछ भी नहीं। कुछ जंचोगे भी नहीं हवा में उड़ते।
लेकिन यही धर्म के नाम पर।
निन्यानबे प्रतिशत लोग धर्म के नाम पर भी अपनी वही पुरानी मूढ़ता को थोपे चले जाते हैं। यहां संसार में भी खोजते थे यही कि दूसरों से बलशाली हो जाएं, धर्म में भी खोजते हैं वही। अहंकार की ही यह खोज है। और जहां अहंकार है, वहां साधु से पहचान नहीं हो पाएगी। साधु से पहचान तो निर-अहंकारिता में हो सकती है। सदगुरु को देख ही न पाओगे तुम। निर-अहंकार में ही दरस होगा, निर-अहंकार में ही परस होगा।
मूरत पूजैं बहुत मति, नित नाम पुकारैं।
बहुत पूजते हैं मूर्तियां लोग और बड़े नाम की रटन भी करते हैं।
कोटि कसाई तुल्य हैं, जो आतम मारैं।
लेकिन जिन्होंने अपनी आत्मा को ही बेच दिया है सस्ती चीजों के लिए, वे कसाइयों से बड़े कसाई हैं, महा कसाई हैं। एक करोड़ कसाई भी उनके सामने कम

हैं। कोटि कसाई तुल्य हैं, जो आतम मारैं। जिन्होंने अपनी आत्मा को बेच दिया है।
और इस दुनिया में हम सारे लोग आत्मा को बेचने को तैयार हैं। दो कौड़ी में बेचने को तैयार हैं! कोई तुम्हें हाथ से राख गिराना दिखा दे और तुम बिकने को तत्पर हो! और तुम लगे बाबा के पीछे! चाहे जिंदगी लग जाए, अब तुम्हें एक ही धुन सवार है कि हाथ से राख कैसे टपके। राख के तुम पहाड़ लगा दो हाथ से, तो भी क्या होगा! राख तो तुम हो ही, अब और क्या राख पैदा कर रहे हो? और अगर राख की देह से राख गिर भी गई तो कौन सा चमत्कार है? यह तो मरकर हो ही जाने वाला है सब राख, क्या गिराते हो!
मगर नहीं, लोग इन बातों से प्रभावित होते हैं। लोग मूढ़ हैं और महामूढ़ों से प्रभावित होते हैं। जो तुमसे भी आगे है मूढ़ता में, वह तुम्हें प्रभावित करता है।

हमने
परिचित नेता से
प्रश्न किया,
"आपने जिस ढंग से
अपने सिर पर
टोपी लगाई है
उसे देख कर
सभी की बुद्धि
भरमायी है
आपको देख कर
लोग कई तरह के
अनुमान लगा रहे हैं
अतः कृपया बताएं
कि आप
पार्टी में आ रहे हैं,
या पार्टी से जा रहे हैं?"

वे धूर्त की तरह
मुस्करा कर बोले,
"न तो हम
पार्टी में आ रहे हैं
न जा रहे हैं
हम तो सिर्फ यह दिखा रहे हैं कि हमारे पैरों में अभी दम है हम चलने-फिरने में
सक्षम हैं
टिकट मिलेगा
तो हम यहां टिक जाएंगे
अन्यथा
जो टिकट देगा
उसी के हाथों,
बिक जाएंगे।"

यह जो बिक जाना है, उसको ही मलूकदास कह रहे हैंः जो आतम मारैं! तुम देखते हो, यहां हर आदमी बिकने को तैयार है! हर आदमी के ऊपर उसके दाम की टिकट लगी है।
मुल्ला नसरुद्दीन एक लिफ्ट में सवार हुआ। एक सुंदर महिला भी लिफ्ट में थी। दोनों ही थे। मुल्ला ने नमस्कार किया और कहा कि अगर दस हजार रुपये दूं तो एक रात मेरे साथ गुजारोगी? वह स्त्री एकदम नाराज हो गई। उसने कहाः तुमने मुझे समझा क्या है? अभी लिफ्ट रोक कर पुलिस को बुलाती हूं। मुल्ला

ने कहाः पुलिस वगैरह बुलाने की कोई जरूरत नहीं, बीस हजार दूंगा। महिला नरम हुई। मुल्ला ने कहाः जो मांगो--तीस, चालीस, पचास। गर्मी मुस्कुराहट में बदल गई। स्त्री ने कहाः पचास! पचास हजार रुपये एक रात के! राजी हूं। मुल्ला ने कहाः और अगर पच्चीस रुपये दूं तो? तो स्त्री फिर भन्ना गई। कहाः जानते हो कि मैं कौन हूं? मुल्ला ने कहाः वह तो हमने तय कर लिया; जब पचास हजार में राजी हो गई, तो वह तो तय हो गया कि तू कौन है, अब तो दाम तय कर रहे हैं। अब पुलिस-वुलिस को बुलाने की कोई जरूरत नहीं है। पचास हजार में बिको या पच्चीस रुपये में बिको, क्या फर्क पड़ता है? वह तो तय हो गया कि तू कौन है? अब रह गई दाम करने की बात, सो सौदा कर लें। सो आपस में निपटारा कर लें। पुलिस को बुलाने की क्या जरूरत है? पुलिस क्या करेगी इसमें?
मुल्ला ठीक कह रहा है। तुम भी सोचना, कितने में बिक जाओगे? कितनी तुम्हारी कीमत है? कितनी ही कीमत हो, जो बिक सकता है उसने अभी आत्मा को नहीं जाना, क्योंकि आत्मा की कोई कीमत ही नहीं है। सारा संसार भी मिलता हो तो भी जिसने स्वयं को जाना है, वह बिकने को राजी नहीं हो सकता। यह सारा संसार रख दो तराजू के एक पलड़े पर और आत्मा को रख दो दूसरे पलड़े पर, तो भी आत्मा का तराजू ही भारी होगा। आत्मा यानी परमात्मा! आत्मा यानी परमात्मा का बीज, उसकी संभावना। आत्मा ही तो फैल कर, शुद्ध होकर, निखर कर परमात्मा बनती है। कहीं कोई और दूसरा परमात्मा थोड़े ही है।
वह जिसने समर्पण की कला सीख ली, उसके हाथ में अपने को निखारने का राज आ गया। उसकी आत्मा ही धीरे-धीरे शुद्ध होते-होते परम हो जाती है, परमात्मा हो जाती है। मगर लोग बहुत करते हैं पूजा, सब पूजा झूठी है। क्योंकि पूजा उनकी परमात्मा की नहीं है, कुछ मांग रहे हैं। किसी को नौकरी चाहिए, किसी को धन चाहिए, किसी को पद चाहिए।
मूरत पूजैं बहुत मति, नित नाम पुकारैं।
और लगाए हुए हैं धुन, राम-नाम की चदरिया ओढ़े बैठे हैं, माला फेर रहे हैं, राम-राम, राम-राम जप रहे हैं। मगर पीछे उनके झांक कर देखो तो कोई कामना खड़ी है। वे राम को भी इसलिए जप रहे हैं कि उनकी कोई कामना पूरी हो जाए। कोई मांग है। और जिसने राम को कामना से जपा, उसने जपा ही नहीं। राम को तो आनंदभाव से जपो। उल्लास से। कुछ मांगना क्या है? उसके सामने भिखारी होकर मत जाओ! उसके सामने मालिक की तरह जाओ! झुको जरूर मगर आनंदमग्न होकर। झोली मत फैलाओ--और तुम्हारे प्राण भर दिए जाएंगे अनंत खजानों से! और तुमने झोली फैलाई तो कंकड़-पत्थर भी न पाओगे।
कोटि कसाई तुल्य हैं, जो आतम मारैं।
परदुख-दुखिया भक्त है, सो रामहिं प्यारा।
यह सूत्र समझने जैसा है। दूसरे के दुख की जिसे प्रतीति होती है, जो संवेदनशील है, वही राम का प्यारा है।
लेकिन दूसरे के दुख की प्रतीति किसे हो सकती है?
जिसके अपने दुख मिट गए, उसे ही दूसरे के दुख की प्रतीति हो सकती है। यह बात तुम्हें पहले तो थोड़ी उलटी लगेगी, बेबूझ लगेगी। साधारणतः तुम सोचते हो कि जो आदमी दुखी है, उसे दूसरे का दुख पता चलेगा। तुम गलती में हो। जो दुखी है, वह तो अपने दुख को झेलने के कारण, झेलने के लिए कठोर हो जाता है, नहीं तो दुख झेल नहीं सकता। दुख तोड़ देगा उसे। दुख झेलने के लिए उसे अपनी संवेदना खो देनी पड़ती है; वह संवेदनशून्य हो जाता है।
यहां पश्चिम से इतने लोग आते हैं। उनमें से अधिक मुझे पत्र लिखते हैं
कि बात क्या है? रास्तों पर भिखारी हैं, हम उन्हें देखते हैं तो बड़ी पीड़ा होती है। हम उन्हें बिना कुछ दिए उनके सामने से गुजर ही नहीं पाते। बड़ी ग्लानि होती है, बड़ा पश्चात्ताप होता है। लेकिन भारतीय तो बड़े मजे से निकल जाते हैं--फिल्मी धुन गुनगुनाते! कोई मतलब ही नहीं भिखारी से! भिखारी आगे भी आ जाए तो वे कहते हैंः आगे हटो, आगे बढ़ो, रास्ता लगो!
कारण है।
भारतीय खुद ही दुखी हैं। भिखारियों में और उनमें कुछ ज्यादा भेद नहीं है। वे क्या खाक इन भिखारियों को दें! उनके पास देने को खुद नहीं है, वे खुद मांग रहे हैं। और वे कठोर हो गए हैं--कठोर न हों तो जिंदा नहीं रह सकते।

भारत में अगर जिंदा रहना हो तो कठोर होना पड़ेगा। अगर यहां तरल-हृदय हुए, तो तुम्हारी भी दशा जल्दी वही हो जाएगी जो भिखमंगे की है। इससे किसी भिखमंगे को लाभ होगा, ऐसा नहीं, सिर्फ भिखमंगे और बढ़ जाएंगे--तुम भी उसमें सम्मिलित हो जाओगे।
सदियों-सदियों की गरीबी, दीनता और दुख ने भारत के हृदय को कठोर कर दिया है, पाषाण कर दिया है; कोई पसीजता ही नहीं। पश्चिम में समृद्धि है। भिखमंगा तो सड़कों पर दिखाई पड़ता नहीं पश्चिम में, भारत ही आकर पहली दफा भिखमंगा दिखाई पड़ता है। तो उनको बड़ी हैरानी होती है!
दो चीजें उन्हें बहुत सताती हैं--
मेरे पास जितने पत्र आते हैं उनमें दो बातों का जरूर उल्लेख होता है।
एक तो भिखमंगे का। छोटे-छोटे बच्चे! पश्चिम का आदमी भरोसा ही नहीं कर सकता है कि इतने छोटे बच्चे भी इस अवस्था में हमने छोड़ रखे हैं कि भीख मांगें। और दूसरी बात की उन्हें हैरानी होती है कि जब भी वे सांताक्रूज पर हवाई जहाज से उतरते हैं और बंबई की तरफ बढ़ते हैं, तो रास्ते के दोनों तरफ लोग पाखाना कर रहे हैं! यह उनकी समझ में नहीं आता कि यह क्या हो रहा है? भारतीयों को बिल्कुल अखरता ही नहीं। भारतीय देखते ही नहीं इधर-उधर; उन्हें कोई लेना-देना नहीं है। सारा देश संडास है! और कोई खराब काम तो कर नहीं रहे, खाद बढ़ा रहे हैं! स्वाभाविक समझ में आता है भारतीयों को। यह तो गांव-गांव में हो रहा है, जगह-जगह लोग बैठे हैं। अब उनको देखते रहो, उनके लिए दुख मनाते रहो, तो तुम्हें जीना ही मुश्किल हो जाए। किस-किसका दुख मनाओ! लोग अंधे हो गए हैं। लोगों को दिखाई ही नहीं पड़ता। भारतीयों को नहीं दिखाई पड़ता।
जब पहली दफा कोई पाश्चात्य लेख लिखता है तो भारतीयों को बहुत अखरता है, बहुत दुख होता है उन्हें कि हमारे देश की बदनामी की जा रही है। उनको दिखाई ही नहीं पड़ता कि बात तो सच है; बदनामी नहीं की जा रही है, बात तो ठीक ही है। तुम स्वच्छता की इतनी बातें करते हो और तुम्हें स्वच्छता का बोध कितना है? जहां दिल आया वहां मल-मूत्र विसर्जन कर देते हो--तुम्हें कोई अड़चन ही नहीं होती। पश्चिम में यह असंभव है, कल्पना के बाहर है। भिखमंगा विदा हो गया है, बचा ही नहीं। तो संवेदनशीलता बढ़ती है।
इस दुनिया में जिनको थोड़ा सा आंतरिक आनंद अनुभव हुआ है, वे ही दूसरों
की आंतरिक दुख की दशा का अनुभव कर पाएंगे, नहीं तो नहीं।
मुझसे लोग आकर पूछते हैं कि देश में लोग दुखी हैं और आप लोगों को ध्यान समझा रहे हैं! मैं उनसे कहता हूंः इसके सिवाय और कोई रास्ता नहीं। ध्यान इन्हें थोड़ा सा सुख देगा। इन्हें थोड़ा सुख मिले, इनकी संवेदनशीलता बढ़े; इन्हें थोड़ा सुख का अनुभव हो तो इन्हें दिखाई पड़े कि चारों तरफ दुख है। नहीं तो दिखाई ही नहीं पड़ेगा। तुलना करने का कोई उपाय ही नहीं है। खुद ही इतने दुखी हैं कि किसका दुख देखें? अपना देखें कि औरों का?
जिसकी अपनी समस्याएं मिट जाती हैं, वह दूसरों की समस्याओं को देख सकता है। और जिसके अपने भीतर शांति छा जाती है, उसे दूसरे की अशांति दिखने लगती है। जिसके भीतर गुलाब के फूल खिल जाते हैं, उसे दूसरों के जीवन के कांटे अनुभव में आने लगते हैं। फिर कुछ हो सकता है।
परदुख-दुखिया भक्त है, सो रामहिं प्यारा।
वह जो राम का प्यारा है, वही अनुभव कर सकेगा दूसरे के दुख को। और जो दूसरे के दुख को अनुभव कर सकता है, वह राम का प्यारा होता जाता है। ये दोनों अन्योन्याश्रित बातें हैं।

तलाशो-जुस्तुजू की सरहदें अब खत्म होती हैं।
खुदा मुझको नजर आने लगा इंसाने-कामिल में।।

एक बार परमात्मा दिखाई पड़े तो फिर मनुष्यों में भी वही दिखाई पड़ेगा
और वृक्षों में भी वही दिखाई पड़ेगा और पत्थरों में भी वही दिखाई पड़ेगा।
एक पलक प्रभु आपतें, नहिं राखैं न्यारा।।

और काश तुम उससे संबंध जोड़ लो तो तुम चकित होओ। यह जान कर तुम हैरान होओगे कि उसने तुम्हें एक पलक के लिए भी अपने से दूर नहीं रखा था। दूर थे तो तुम अपने कारण थे। पीठ की थी तो तुमने की थी, उसने नहीं। और एक दफा पहचान लोगे तब तुम्हें दिखाई पड़ेगा कि वह एक पल को भी तुम्हें अपने से दूर नहीं रखता है।
एक पलक प्रभु आपतें, नहिं राखैं न्यारा।
वह तुम्हारी प्रतिपल चिंता कर रहा है। सारा अस्तित्व तुम्हारा सहयोगी है, शत्रु नहीं।

निजामे-सुबहो-शामे-देहर है जिसके इशारों पर।
मेरी गफलत तो देखो मैं उसे गाफिल समझता हूं।।

जो चांद-तारों को चला रहा है, जिसके इशारों पर सुबह और शाम की व्यवस्था चल रही है। यह सारा जगत जिसके इशारों पर अंगुलियों पर ठहरा हुआ है...

निजामे-सुबहो-शामे-देहर है जिसके इशारों पर।
मेरी गफलत तो देखो मैं उसे गाफिल समझता हूं।

क्या तुम सोचते हो वह बेहोश है? क्या उसे तुम्हारा पता नहीं?
अस्तित्व तुम्हारी चिंता करता है। अस्तित्व का पूरा-पूरा प्रयास है
कि तुम भी जागो, कि तुम भी आनंदित होओ, कि तुम्हारे जीवन में भी गीत जगें, कि तुम्हारे प्राणों में भी बांसुरी बजे। मगर तुम ही अपने दुश्मन हो। तुमसे बड़ा तुम्हारा कोई दुश्मन नहीं।
महावीर ने ठीक कहा हैः आदमी ही अपना मित्र है; उससे बड़ा उसका कोई मित्र नहीं। और आदमी ही अपना शत्रु है; उससे बड़ा उसका कोई शत्रु नहीं।
दोनों बातें सच हैं। अगर तुम अपनी तरफ मुड़ो तो मित्र हो जाओ; अगर अपनी तरफ पीठ किए रहे तो अपने ही शत्रु हो। अपने ही हाथ से अपनी आत्मा का हनन कर रहे हो।
दीनबंधु करुनामयी, ऐसे रघुराजा।
कहै मलूक जन आपने को कौन निवाजा।।
मलूकदास कहते हैं कि मुझ तरह के अज्ञानी को, मुझ जैसे साधारण जन को आखिर किसने उद्धारा? सुनते हो! ध्यान देना इस बात पर। मलूक कहते हैं कि मुझ जैसे अज्ञानी को, मुझ जैसे अपात्र को आखिर किसने उद्धार किया? उसी ने! मेरी क्या बिसात थी? मेरा क्या वश था? मेरी क्या सामर्थ्य थी? मेरी क्या थी साधना और मेरी क्या थी पात्रता? मैं था निर्बल, अपंग; लेकिन उसकी कृपा, उसका प्रसाद कि मैं लंगड़ा था और पर्वत चढ़ गया। और मैं अंधा था और मैंने चांद-तारे देखे। और मैं बहरा था और मेरे कानों में उसकी बांसुरी की आवाज सुनाई पड़ी। उसकी ही कृपा है, उसका ही प्रसाद है!
मुवा सकल जग देखिया, मैं तो जियत न देखा कोय, हो।
मलूकदास कहते हैंः बहुत घूम कर देखा हूं, जगत देख डाला, मुर्दे ही मुर्दे देखे; जिंदा तो मुझे कोई दिखाई न पड़ा। जिंदा तो कभी कोई दिखाई पड़ जाए तो तुम सौभाग्यशाली हो! जिंदों को ही हमने सदगुरु कहा है--वे जो सचमुच जीवित हैं।

ये बेड़ा कहां जाकर पार लगेगा
इधर भी अंधेरा, उधर भी अंधेरा,
नये मांझियों ने नये जोश से कल
नई बल्लियों में नये पाल बांधे,
कमर में उमंगों के फेंटे लपेटे
नई साध से फिर नये डांड़ साधे! नई बाढ़ में छोड़ दी मुक्त नौका नये हौसलों की हिलोरें उठाते

नये ज्वार के सर्जना के स्वर में धरा औ गगन के मिलन गीत गाते.
अभय हो गए जो मुसाफिर विकल थे, अनिश्चय-अनास्था के दुहरे भरम में, नई मुक्ति हित में ये लगाएंगे गोता, नया सेतु बांधेंगे रामेश्वरम में. मगर ये तो पहले ही दम हांफ बैठे झिझकते न तक पतवार तोड़ने में,
कभी बौखलाते हैं अपने वहम पे
कभी अपनी जानिब जुबां मोड़ने में. अभी तो किनारे से कुछ ही हटे थे अभी दूर आवर्त घूर्णित घटा तम, अभी शेष मंझधार की थी चुनौती अभी देखना था समुंदर का दम-खम लुटा दी है हर सांस जिसने वतन को बड़ी साध से जिसने सपने सजाए, सभी अंग नासूर से रिस रहे हों मसीहा कहां कहां मरहम लगाए! इधर कूप उस ओर खाई खुदी है
करे कौन जन-मन व्यथा का निवारण! उधर नादां बच्चे पर ईमां निछावर इधर गुट-परस्ती औ बहरुपियापन! बड़ी ऊंची बातें, बड़े ऊंचे वादे हवा में रफू हो गए सब हिरन से, ये तम-तोम से जूझने के प्रवादी
करेंगे किनाराकशी गर किरन से
ऊफक के धुंधलके में उल्टेगा बेड़ा
कहां फिर उजेला, कहां फिर सवेरा!
ये बेड़ा कहां पार जा कर लगेगा
इधर भी अंधेरा, उधर भी अंधेरा!

जरा अपने चारों तरफ देखो, अंधों ही अंधों की जमात है! मुर्दों की भीड़ है। और ये मुर्दे ही नेता हैं। ये मुर्दे ही अनुयायी हैं। ये मुर्दे ही पुरोहित हैं। ये मुर्दे ही मंदिरों में पूजा पाठ करा रहे हैं, हवन, यज्ञ करा रहे हैं। और मुर्दे ही सम्मिलित हो रहे हैं। मुर्दों के कुंभ मेले भर रहे हैं, करोड़ों मुर्दे इकट्ठे हो रहे हैं। हज-यात्रा पर मुर्दे जा रहे हैं।
मुवा सकल जग देखिया, मैं तो जियत न देखा कोय, हो।
मुवा मुई को ब्याहता रे, ...
मुर्दा ही मुर्दा स्त्री से विवाह कर रहा है।
... मुवा ब्याह करि देइ।।
और कोई मरा हुआ पंडित जंतर-मंतर पढ़ कर विवाह करवा देता है।
मुए बराते जात हैं, ...
मुर्दे बरात में जा रहे हैं।
... एक मुवा बधाई लेइ, हो।
और मुर्दे ही बरात का स्वागत कर रहे हैं।
मुवा मुए से लड़न को, मुवा जोर लै जाइ।
बड़ा मजा चल रहा है, मुर्दे ताल ठोंक रहे हैं! एक-दूसरे से लड़ने को आतुर
हो रहे हैं, भुजाएं फड़फड़ा रहे हैं।
मुरदे मुरदे लड़ि मरे, मुरदा मन पछिताइ, हो।
मुर्दे मुर्दे लड़ जाते हैं, मर जाते हैं, बाकी जो बचे मुर्दे हैं वे पछताते हैं, वे रोते हैं। वे आंसुओं के फूलों के उपहार चढ़ाते हैं।
इस मुर्दा बस्ती को जरा गौर से देखो!

दो बुढ़ियाएं आपस में बातें कर रही थीं। एक ने कहाः सामने जो नौजवान लड़का रहने आया है, उसने मुझे चांद कहा है।
दूसरी बुढ़िया ने हैरत से पूछाः वह कैसे?
पहली बुढ़िया कहने लगीः कल रात मेरी बेटी सड़क पर जा रही थी, तो उस नौजवान ने उसे देख कर कहाः हाय! क्या चांद का टुकड़ा है!
बुढ़ापा आ जाए, मगर होश नहीं आता। वही बेहोशी, वही बचपना। उम्र से लोग बड़े हो जाते हैं, मगर बोध से नहीं।
चंदूलाल ने कहाः दुनिया में एक से बढ़ कर एक चीजें हैं। जो चीज देखो, मन होता है, काश, यह मेरी होती! लेकिन मनुष्य की क्षमता बहुत कम है; उसे हमेशा चुनाव करना होता है।
बोलेः भाई, कुछ उदाहरण दो, तब तुम्हारी बात समझ में आएगी।
सुनो--चंदूलाल ने समझाया--इन्सान एक ही बार शादी कर सकता है, लेकिन दुनिया में इतनी खूबसूरत और लुभावनी स्त्रियां हैं कि उन्हें देख कर शादीशुदा आदमी भी सोचता है कि काश, कितना अच्छा होता अगर मैं अभी तक कुंआरा होता!
ढब्बू जी ने कहाः अच्छा, अब मेरी समझ में बात आई। मेरे जीवन में भी एक ऐसी स्त्री है जिसे देख कर ख्याल आता है कि काश, मैं अभी तक कुंआरा होता तो कितना बढ़िया रहता!
कौन है वह स्त्री--चंदूलाल ने अधीरता से पूछा--यहीं मोहल्ले में रहती है, इसी शहर में?
ढब्बू जी ने कहाः इसी शहर में, इसी मोहल्ले में, इसी घर में--मेरी धरम-पत्नी! उसे देख कर मुझे एक ही ख्याल आता है कि काश, मैं भी कुंआरा होता!
इस जगत में अभाव रहे तो खलता है; कुछ न मिले तो अखरता है, कुछ मिल जाए
तो अखरता है। गरीब परेशान है कि धन नहीं। धनी परेशान है कि धन है, मगर और कुछ नहीं है। धन का क्या करूं! धन का क्या हो! गरीब परेशान है कि सोने को बिस्तर तक नहीं। और अमीर परेशान है कि बिस्तर तो है, मगर नींद नहीं आती। करवटें बदलते रात गुजर जाती है।
इस सत्य को देख कर तुम चौंकते हो या नहीं, कि गरीब देशों में आत्महत्या कम होती है, अमीर देशों में ज्यादा? क्या कारण है? होना उलटा चाहिए। गरीब देशों में आत्महत्या ज्यादा होनी चाहिए। लोगों के पास कुछ नहीं है। लेकिन नहीं, यह नहीं होता। अमीर देशों में लोग ज्यादा पागल होते हैं, गरीब देशों में कम। मामला बड़ा अदभुत है। गणित कुछ उलटा है। गरीब देशों में पागल होने चाहिए। लेकिन गरीब देश में आशा होती है; अभी मिला नहीं है, मिलेगा, कल मिलेगा, परसों मिलेगा--आशा जिलाए रखती है। लेकिन अमीर को सब मिल गया है, सब आशा टूट गई। अब आगे सब अंधेरा है। कोई आशा नहीं। अमावस, जो कभी टूटेगी, इसकी भी कोई संभावना नहीं है। अब अमीर करे तो क्या करे? या तो पागल हो जाए या समाप्त कर ले अपने को। ऐसी जिंदगी जीने से क्या फायदा, जहां आशा भी न हो! गरीब तो थोड़ी-बहुत आशा चलाए रखता है, जिलाए रखता है। थोड़ी सी जगमग उसके भीतर बनी रहती है कि अब पहुंचा, अब पहुंचा, यह मंजिल दो ही कदम रह गई। यह मंजिल कभी मिलती ही नहीं, यह हमेशा दो ही कदम रहती है; और मिल जाए, तो उससे बड़ा कोई दुर्भाग्य नहीं।
मुवा सकल जग देखिया, मैं तो जियत न देखा कोय, हो।
मुवा मुई को ब्याहता रे, ...
मुर्दे मुर्दों से विवाह रचा रहे हैं, भांवरें पड़ रही हैं। और फिर मुर्दों से विवाह रचाओगे, भांवरें पड़वाओगे, तो फल भी पाओगे।
झगड़ा हो जाने पर मुल्ला नसरुद्दीन की बीवी ने सूटकेस उठाते हुए कहाः
लो मैं चली अपनी अम्मा के घर!
शौक से जाओ--मुल्ला बोला--मगर तुम्हें पता नहीं है, अब तो बहुत देर हो चुकी है।
उसकी पत्नी ने कहाः तुम्हारा मतलब?
नसरुद्दीन ने कहाः मतलब यह है कि तुम्हारी अम्माजान अपने पति परमेश्वर से लड़-झगड़ कर खुद अपनी अम्माजान के यहां चली गई हैं। आज ही यह खत आया है। और मेरा विचार है कि वे शायद ही अपनी अम्माजान को वहां पाएं।

ठीक कहते हो मलूकदासः मुवा मुई को ब्याहता रे, मुवा ब्याह करि देइ। नसरुद्दीन ढब्बू जी से कह रहे थेः मेरी पत्नी तो स्वर्ग की परी है, परी!
ढब्बू जी ने कहाः नसरुद्दीन, तुम किस्मत वाले हो।
नसरुद्दीन ने कहाः मतलब?
ढब्बू जी ने कहाः मेरी तो अभी जिंदा है।
मुए बराते जात हैं, एक मुवा बधाई लेइ, हो।
मुवा मुए से लड़न को, मुवा जोर लै जाइ।
मुरदे मुरदे लड़ि मरे, मुरदा मन पछताइ, हो।
यह सारा संघर्ष, यह सारा उपद्रव मुर्दों के कारण है। मुर्दे लड़ते हैं तभी उनको थोड़ा लगता है कि जीवन है; टकराते हैं एक-दूसरे से, तो थोड़ा सा लगता है कि हां, हम भी कुछ हैं! .जरा ताकत आजमाते हैं, तो लगता है कि नहीं, अभी मरे नहीं।
एक अमरीकन कहानी मैं पढ़ रहा था।... अमरीका में ही ऐसी कहानी घट सकती है। अभी दूसरे देश इतने भाग्यशाली नहीं।... एक पचहत्तर साल की बुढ़िया अपनी सहेली दूसरी बुढ़िया को कह रही थी कि कल रात एक बुड्ढे के साथ मैंने बिताई। लेकिन चार-छह दफे उसे मुझे चांटा लगाना पड़ा।

दूसरी बुढ़िया ने पूछाः अरे! क्या बुड्ढा छेड़ाखानी कर रहा था? ज्यादा छेड़खानी कर रहा था, कितनी उमर थी?
बुढ़िया ने कहाः होगा कोई पचासी साल का।
दूसरी बुढ़िया बोलीः हद हो गई! तुझे दो-चार दफे चांटा मारना पड़ा!
उसने कहाः हां, मुझे दो-चार दफे चांटा मारना पड़ा। लेकिन तू गलत समझ रही है! छेड़ाखानी नहीं कर रहा था। मुझे दो-चार दफे चांटा मारना पड़ा, तब मुझे पता चला कि जिंदा है कि मर गया। जब मैं चांटा मारूं तब थोड़ा हिले- डुले। नहीं तो बिल्कुल मुर्दे की भांति।
ढब्बू जी चुनाव लड़ रहे हैं। उन्होंने पटाखा अपना चुनाव-चिह्न चुना है। किसी ने पूछा कि ढब्बू जी, बहुत तरह के चुनाव-चिह्न देखे, पटाखा! इसका राज?
ढब्बू जी ने कहाः इसलिए कि यह फूट भी सकता है और फुस्स भी हो सकता है। इसमें दोनों गुण हैं, जो हो जाए। लग जाए तो तीर, न लगे तो तुक्का। दोनों हाथ बाजी अपनी है।
लोग लड़ते हैं। लड़ने का कारण है। सबसे बड़ा कारण है कि लड़ने में थोड़ी उन्हें गरमी मालूम होती है, जिंदगी मालूम होती है; लगता है मैं भी हूं, मैं भी कुछ हूं! थोड़े अहंकार को भोजन मिलता है। अगर लोग लड़ें न तो उनका भरोसा ही खो जाए कि हम जिंदा भी हैं कि मर गए!
पति आकर पत्नी से कुछ कहे न, बोले न, चुपचाप बैठ जाए, तो पत्नी नाराज,
कि तुम्हें क्या हो गया है, सांप सूंघ गया है? चुप क्यों बैठे हो? अगर पति बोले तो झंझट।
एक छोटा सा लड़का एक दूसरे लड़के से कह रहा था कि मेरी मां गजब की है! बस,
एक जरा सा विषय उसे दे दो, घंटों बोलती है!
दूसरे ने कहाः यह कुछ भी नहीं! अरे, मेरी मां, विषय इत्यादि का सवाल ही नहीं और घंटों बोलती है! पिता जी बिल्कुल चुप बैठे रहते हैं और मां मेरी बोले चली जाती है। वह इसकी फिकर ही नहीं करती कि कोई विषय भी है या नहीं। कारण है। कारण यही है कि अगर पति चुप बैठे तो पत्नी को लगता है कि जिंदगी गई! जिंदगी वही हैः खटर-पटर। बर्तन... बर्तन थोड़े एक-दूसरे से टकराते हैं, थोड़ी आवाज होती रहती है, शोरगुल होता रहता है, लगता है जिंदगी है।
.जरा तुम सोचो कि अगर सब सन्नाटा हो जाए, लोग लड़ना-झगड़ना बंद कर दें, लोग चुपचाप बैठें, शांत, मौन--शक पैदा हो जाएगा कि क्या हो गया? आज बात क्या है? सब कोलाहल कहां गया? इतना सन्नाटा क्यों? सन्नाटा काटने लगेगा। मलूकदास का निरीक्षण ठीक हैः मुरदे मुरदे लड़ि मरे! तलवारें खींच लेते हैं मुर्दे।

जापान में एक कहावत है कि आदमी जब मरता है तभी उसे पता चलता है कि अरे, मैं जिंदा था! मरने की घटना झकझोर देती है। होश आता है कि अरे, मैं जिंदा था! जिंदगी इतना नहीं झकझोर पाती। जब तक मौत ही तुम्हें न झकझोर दे, जब तक मौत ही तुम्हारी जड़ों को न उखाड़ने लगे, तब तक तुम्हारी नींद ही नहीं टूटती, तुम्हारे सपने ही नहीं टूटते। ऐसी गहरी तंद्रा है। और फिर पीछे जो रह जाते हैं, वे भी मुर्दे हैं, वे पछताते हैं।
जीसस का बहुत प्रसिद्ध वचन है, मुझे बहुत प्यारा है।
जीसस सुबह-सुबह एक झील पर रुके। सूरज उग रहा है और झील पर एक मछुवे ने अपना जाल फेंका है--मछलियां पकड़ने के लिए। जीसस ने उसके कंधे पर हाथ रखा। उस मछुवे ने लौट कर पीछे देखा कि कौन है! एक अजनबी आदमी--और अदभुत आदमी! ऐसा आदमी जैसा मछुवे ने कभी देखा नहीं था। झील भी इसकी आंखों के सामने झेंप जाए। इसकी आंखें ज्याद गहरी, झील से ज्यादा गहरी। झील की नीलिमा कुछ भी नहीं, इसकी आंखों की नीलिमा कुछ और! इसके चेहरे पर छाप किसी और लोक की, जैसे अभी-अभी उतरा हो आकाश से! सुबह की ओस की तरह ताजा, सुबह की पहली सूरज की किरण की तरह ताजा! वह ठगा रह गया, देखता ही रह गया!
जीसस ने कहाः अब देखते क्या हो? आओ मेरे साथ! कब तक मछलियां पकड़ते रहोगे? बहुत पकड़ लीं मछलियां। जिंदगी मछलियां पकड़ने में ही गंवाने को नहीं है। आओ मेरे साथ, मैं तुम्हें आदमियों को पकड़ना सिखाऊं।
मछुआ भी हिम्मत का रहा होगा। इतनी श्रद्धा, इतने अजनबी आदमी के साथ!
और जीसस जैसे व्यक्ति हमेशा ही अजनबी होते हैं। पहले दिन मिलें तो अजनबी और तुम वर्षों उनके साथ रहो तो अजनबी। क्योंकि वे किसी और लोक के हैं। जब तक तुम जाग ही न जाओ तब तक वे अजनबी ही रहते हैं। उस मछुए ने जाल वहीं फेंक दिया और वह जीसस के पीछे हो लिया। गांव के बाहर निकलते थे, तब एक आदमी भागा हुआ आया और उसने मछुए से कहाः पागल, तू कहां जा रहा है? तेरे पिता बीमार थे, उन्होंने दम छोड़ दी, घर चल! उस मछुए ने जीसस से कहाः क्षमा करें! मैं तो आपके पीछे आता था, लेकिन अब यह दुर्घटना घट गई। जाऊं घर, अंतिम संस्कार करके दो-चार दिन में लौट आऊंगा। जीसस ने कहाः फिकर छोड़। गांव में काफी मुर्दे हैं, वे मुर्दे को जला देंगे। तू मेरे पीछे आ!
जीसस का वचन बड़ा हैरान करने वाला हैः गांव में बहुत मुर्दे हैं, वे मुर्दे को दफना देंगे, तुझे क्या फिकर पड़ी! तू मेरे साथ आ, मैं तुझे जिंदा होने का राज बताऊं! मैं तुझे जिंदगी से मिलाऊं! मैं तुझे जीवित कर सकता हूं, मेरे साथ आ! अब तेरे पिता तो गए। मरे ही थे, कुछ नई बात नहीं हो गई है। श्वास चलती थी मुर्दे की, अब नहीं चलती, बस इतना ही समझो। मगर गांव में कई हैं श्वास जिनकी चल रही है, वे दफना देंगे।
हिम्मतवर मछुआ रहा होगा। नहीं लौटा। जीसस के पीछे ही चल पड़ा।
इतनी हिम्मत ही होनी चाहिए सदगुरु के पीछे चलने की, तो ही कोई कभी जाग सकता है। जीवित है सदगुरु, जीवंत है सदगुरु। उसके साथ जुड़ जाओ, उसकी लपट तुम्हारी लपट बन जाए, तो तुम भी जीवित हो सकते हो।
अंत एक दिन मरौगे रे, गलि गलि जैहे चाम।
एक दिन मरना होगा। एक दिन मृत्यु निश्चित है। जिस दिन जन्मे उसी दिन निश्चित हो गई है। मिट्टी में पड़ोगे, हड्डी-मांस-मज्जा सब गल जाएगी। उसके पहले जाग जाओ!

सांसों ने बार-बार टेरा
बंजारा वक्त नहीं ठहरा है!
सांसों ने बार-बार टेरा
बंजारा वक्त नहीं ठहरा है!

यादों के चाहे हों कैसे भी बांध
एक बार डूब नहीं उगे वही चांद सपनों को बार-बार हेरा,
व्यर्थ गया पलकों का पहरा है!

एक बूंद से झांके सारा आकाश कौन प्रहर जाने बन जाए इतिहास नचा रही बीन या संपेरा,
झूम रहा सांप जो कि बहरा है!

चूक गए अवसर हर, रीते सब जाल करते हम रहे सिर्फ तोतले सवाल गीत गुनगुना रहा मछेरा,
सागर से भी पोखर गहरा है!

मोहरे सब चुके सिर्फ अब बची बिसात
कोलाहल बीत गया फिर सूनी रात
झांक रहा है परिचित चेहरा
कौन कहे शायद यह मेरा है!

सांसों ने बार-बार टेरा
बंजारा वक्त नहीं ठहरा है!

समय टेर रहा है, पुकार रहा है। एक क्षण रुकेगा नहीं। मौत द्वार पर दस्तक देगी, प्रतीक्षा न करेगी। और मौत कब आ जाएगी, कहा नहीं जा सकता। कल होगा भी या नहीं, कुछ निश्चित नहीं है। इस क्षण के अतिरिक्त और कुछ निश्चित नहीं है। इस क्षण का उपयोग करो! इस अवसर को गंवाओ मत, जागो! तोड़ो अपनी नींद!
अंत एक दिन मरौगे रे, गलि गलि जैहे चाम।
ऐसी झूठी देह तें, काहे लेव न सांचा नाम, हो।।
यह देह झूठी है, इसके नाते-रिश्ते झूठे हैं।

कहां की बज्मे-आलम? यह तो मेरी तंग-फहमी है।
कि मैं इक चलती-फिरती छांव को महफिल समझता हूं।।

चलती-फिरती छांव, बस इतना ही हमारा पता-ठिकाना है। यह छांव कभी भी तिरोहित हो जाएगी। जरा धूप गहरी होगी और छांव तिरोहित हो जाएगी। इस छांव का क्या भरोसा है?
यह दुनिया तुम्हारे हाथ से गई-गई है। जैसे पारा छितर जाए, ऐसे यह सब छितर जाएगा। ये सब नाते-रिश्ते, ये सब सगे-संबंधी, ये मित्र-प्रियजन-परिजन--कोई काम न आएंगे। इसका यह अर्थ नहीं है कि तुम भाग जाओ, छोड़ दो संसार, कि छोड़ दो पत्नी, कि छोड़ दो बच्चे। इसका इतना ही अर्थ हैः रहो, यहीं, जैसे हो वैसे ही, मगर लगाव जाने दो, आसक्ति जाने दो, आग्रह जाने दो। पत्नी को मत छोड़ो, मगर पत्नी पर जो पकड़ है, वह छोड़ दो। बच्चों को मत छोड़ो, लेकिन मेरे हैं, ऐसा जो आग्रह है, वह छोड़ दो।
मगर लोग बड़े अजीब हैं! वे कहते हैंः या तो हम आसक्ति रखेंगे, आग्रह रखेंगे, जंजीरें रखेंगे, चाहें रखेंगे और अगर हमसे चाहें, जंजीरें, आग्रह छोड़ने को कहते हो, तो हम फिर सब छोड़-छाड़ कर जंगल में भाग जाएंगे।
आए दिन मंत्री-पुत्रों और मंत्रियों के रिश्तेदारों को भ्रष्टाचार
के मामलों में अखबारों की सुर्खियों में देख कर एक मुख्यमंत्री की पत्नी अपने युवा पुत्रों के बारे में बहुत चिंतित थी। उनको लगा कि उन्हें अपने पति को सलाह देनी चाहिए कि वे अपने पुत्रों से नाता तोड़ लें, अपने सभी रिश्तेदारों को पहचानना बंद कर दें।
काम-काज निबटा कर मुख्यमंत्री घर पधारे। सोने से पहले उन्होंने अपने पति से कहाः तुम तो अपने सभी रिश्तेदारों को पहचानना ही बंद कर दो। मुख्यमंत्री पति ने गंभीरता के साथ सारी बात सुनी और अजनबी दृष्टि से घूर कर पत्नी को करीब-करीब अनजानी सा देखता हुआ पूछाः आपका शुभ नाम?
इतने जल्दी!

मगर लोग ऐसे ही हैं; या तो कुआं या खाई! या तो पकड़ेंगे तो पागल की तरह! पागलपन न छोड़ेंगे, छोड़ेंगे तो पागल की तरह, मगर पागलपन न छोड़ेंगे! तुम्हारे भोगी पागल, तुम्हारे योगी पागल। भोगी पागल की तरह पकड़ते हैं, योगी पागल की तरह छोड़ देते हैं। मैं चाहता हूं कि मेरा संन्यासी पागल न हो। छोड़ने-पकड़ने में क्या रखा है! छांव ही है, पकड़ो तो कुछ सार नहीं, छोड़ो तो कुछ सार नहीं। छांव को कोई पकड़ता-छोड़ता है! छांव-छांव है, इतना जानो, बस इतना होश रहे।

आता है जज्बे-दिलको, वह अंदाजे-मैकशी।
रिंदों में रिंद भी रहें, दामन भी तर न हो।।

मैखाने में भी बैठो तो कुछ हर्ज नहीं, रिंदों में भी बैठो तो कुछ हर्ज नहीं, पियक्कड़ों में भी बैठो तो कुछ हर्ज नहीं; तुम्हारा दामन तर न हो, बस इतना ही ख्याल रहे।

आता है जज्बे-दिलको, वह अंदाजे-मैकशी।
रिंदों में रिंद भी रहें, दामन भी तर न हो।।

पीने का भी एक सलीका है, एक राज है, एक कला है। मगर लोग तो ऐसे हैं कि जिंदगी में तो संसार में उलझे ही रहते हैं, मर जाएं तो भी संसार में ही उलझे-उलझे मरते हैं।
नसरुद्दीन की पत्नी मरी। नसरुद्दीन तो बहुत पहले मर चुका था; पत्नी मरी, स्वर्ग के द्वार पर उसने पहरेदार से पूछा कि कुछ मुल्ला नसरुद्दीन का पता बता सकते हो? दस साल हो गए मेरे पति को मरे। पहरेदार ने कहा कि यहां तो न मालूम कितने नसरुद्दीन हैं, सदियों-सदियों से लोग मरते रहे हैं। कुछ ठीक-ठीक निशान अपने पति का बताओ, सिर्फ नाम से काम न चलेगा। कौन मुल्ला नसरुद्दीन? यहां मुल्लाओं की कोई कमी है, नसरुद्दीनों की कोई कमी है? यहां तो भीड़ है, करोड़ों-अरबों लोग हैं! पत्नी ने कहाः अब और क्या निशान बताऊं, इतना ही कह सकती हूं कि मरते वक्त नसरुद्दीन ने मुझसे कहा था कि देख, एक बात याद रखना, मैं तो मर रहा हूं, मगर मेरे बाद किसी पुरुष की तरफ आंख भी उठाकर मत देखना। अगर तूने किसी पुरुष की तरफ आंख भी उठा कर देखी तो मैं कब्र में करवटें बदलूंगा। पहरेदार ने कहाः फिर घबड़ा मत, फिर हम पहचान गए। तेरा मतलब घनचक्कर नसरुद्दीन, जो चौबीस घंटे करवटें बदलता रहता है? वह जब से यहां आया है, यही काम करता है।
लोग मर जाएं तो भी इस संसार पर पकड़ रखते हैं। मर गए, मगर पत्नी पर अभी
भी पकड़ है कि कहीं पत्नी किसी दूसरे पुरुष को न देख ले।
कुछ लोग हैं, यहां संसार में रहते हैं और संसार को अपने में नहीं रहने देते, वे ही संन्यासी हैं। और कुछ लोग हैं, जो मर भी जाते हैं तो भी संसार उनके भीतर बसा ही रहता है।

बाद मरने के भी दिल लाखों तरह के गम में है।
हम नहीं दुनिया में लेकिन एक दुनिया हम में है।।

मर जाते हैं, दुनिया से छूट जाते हैं; मगर दुनिया उनके भीतर बसी है, उससे कैसे छूटें? वे जो भाग जाते हैं संसार से, सिर्फ भगोड़े हैं, संन्यासी नहीं। वे अपनी गुफाओं में बैठ कर भी संसार की ही चिंता करते हैं, यहीं की फिक्र में लगे रहते हैं, यहीं का हिसाब-किताब बिठाते रहते हैं। और वहां भी संसार ही फिर बना लेंगे। बनाना ही पड़ेगा। क्योंकि संसार से भाग जाओगे, लेकिन मन कैसे बदलेगा? उसी मन ने यहां संसार बनाया था, वही मन वहां संसार बना लेगा।
मैं एक मित्र को जानता हूं, उन्हें मकान बनाने का शौक। ऐसा शौक, खुद तो अपना मकान उन्होंने बनाया ही सुंदर, बहुत सुंदर! वे प्लेटो के इस कथन में विश्वास करते थे, प्लेटो ने कहा है कि हर आदमी को कम से कम एक सुंदर मकान

पृथ्वी पर बनाना चाहिए। प्लेटो को भी सुंदर मकानों में बड़ा रस था। इस सज्जन ने अपनी दीवाल पर प्लेटो का वचन लिख रखा था कि हर आदमी को कम से कम मरने के पहले संसार में एक सुंदर मकान बनाना चाहिए।... इन्होंने एक नहीं, कई मकान बनाए। एक बन जाता कि उसको बेच कर दूसरा बनाते। ऐसा ही नहीं, मित्रों के मकान बनते होते तो भी वे दिन-रात वहां खड़े रहते।
फिर वे संन्यासी हो गए।... मेरे संन्यासी नहीं, भगोड़े संन्यासी हो गए। कोई दस साल बाद मैं उनके आश्रम के पास से गुजरता था, तो मैंने कहा जरा देख तो लूं कि हालतें क्या हैं। बस, वे छाता लगाए भरी दोपहरी में मकान बनवा रहे थे। मैंने उनसे पूछा कि भलेमानुस, यह क्या कर रहे हो? उन्होंने कहाः आश्रम बनवा रहा हूं! जरा देखो भी! जिंदगी भर जो मकान बनाए, उन सबकी कला इसमें ढाल दी है। एक चीज रहेगी! मैंने कहाः तुम संसार से छोड़ कर भाग आए, मगर तुम तो तुम ही हो। वहां मकान बनवाते थे, यहां आश्रम बनवाते हो। मगर फर्क क्या पड़ा? तो वहीं रहने में क्या हर्ज था, मकान ही बनवाते रहते! सिर्फ मकान का नाम आश्रम हो गया तो फर्क हो गया?
मन वही है तो फिर संसार वही का वही निर्मित हो जाएगा। मन में सारे बीज हैं। मन से छुटकारा संन्यास है; संसार से छुटकारा नहीं। मन गया कि संसार अपने-आप चला जाता है।
इस मन के जाने को, मन की इस मृत्यु को मलूकदास ने बड़े प्यारे शब्दों में प्रकट किया है--ठीक वैसे प्यारे शब्दों में जैसा तुम्हें याद होगा गोरखनाथ का वचन। गोरख ने कहा हैः
मरौ हे जोगी मरौ, मरौ मरन है मीठा।
तिस मरणी मरौ, जिस मरणी मर गोरख दीठा।।
मरौ हे जोगी मरौ! ... मरने की एक कला है, बड़ी से बड़ी कला है। मरौ हे जोगी मरौ, मरौ मरन है मीठा। बहुत मिठास है मरण में। लेकिन किस मरण में? एक तो यह सारी दुनिया है, जहां मुर्दे घूम रहे हैं, इस मृत्यु की बात नहीं हो रही है। यह किसी और ही मृत्यु की बात हो रही है। उस मृत्यु की जो महाजीवन से जोड़ देती है; शाश्वत मिठास बरस जाती है; एक सुगंध उतर आती है--सत्य की, सौंदर्य की, शिवत्व की, अमरत्व की।
मरौ हे जोगी मरौ, मरौ मरन है मीठा।
तिस मरणी मरौ...
मरने का भी ढंग है, वैसा मरना।
तिस मरणी मरौ...
उस ढंग का मरण हो! ...
जिस मरणी मर गोरख दीठा।
जैसे गोरख मरा, मन को मार कर मरा! और मन जहां मरा कि वहीं दर्शन है। मन
की मृत्यु परमात्मा का दरस, परमात्मा का परस।
ठीक वैसा ही वचन मलूकदास का--
मरने मरना भांति है रे, ...
मरने मरने में फर्क है, रे! एक तो सारी दुनिया है जो मुर्दा है, यह भी
एक मरना है। और एक और मरना है जो संन्यासी का है, जो ज्ञानी का है।
मरने मरना भांति है रे, जो मरि जानै कोइ।
अगर मरने की कला आती हो, मरना आता हो, तो मरने मरने में फर्क है। दो तरह
के मरने हैं। एक तो दुनिया का मरना है कि लोग बेहोश हैं और मरे हुए हैं और एक होश का मरना है।
मरने मरना भांति है रे, जो मरि जानै कोइ।
रामदुवारे जो मरे, वाका बहुरि न मरना होइ, हो।।
जो राम के द्वार पर मर जाता है! जो अहंकार को समर्पित कर देता है परमात्मा को! जो कहता हैः तुम रहो अब मेरे भीतर, मैं नहीं रहूंगा, मैं चला, मैं विदा हुआ! जो अपने हृदय को परमात्मा का आवास बना लेता है।... मंदिर मत बनाओ! पत्थर-ईंटों से बने हुए मंदिर परमात्मा का आवास नहीं हो सकते। हृदय का मंदिर बनाओ! हृदय की यात्रा करो; वही तीर्थ-यात्रा है। रामदुवारे जो मरे! राम के द्वार पर मरना। एक ही शर्त है। उस द्वार पर हमेशा से एक ही शर्त हैः अपने को बाहर छोड़ दो तो तुम भीतर जा सकते हो। शर्त जरा बेबूझ है। जरा

उलटबांसी है, एकदम से समझ में न आए; क्योंकि तुम कहोगेः अपने को बाहर छोड़ दूं! तो फिर भीतर कौन जाएगा?
तुम दो हो। एक तुम हो जो झूठ है; वही तुम्हारा अहंकार है। और एक तुम हो
जो तुम्हारा सत्य है; वही तुम्हारी आत्मा है। झूठ को बाहर छोड़ दो, सत्य को भीतर जाने दो। लेकिन अभी तो तुमने झूठ को ही समझ रखा है कि यह मैं हूं--नाम-धाम, पता-ठिकाना, सोचते हो यही मैं हूं। शरीर मैं हूं, मन मैं हूं। यह तुम नहीं हो। न तुम शरीर हो, न तुम मन हो, न तुम विचार, न तुम वासना। इन सबके साक्षी हो तुम। इन सबसे भिन्न और इन सबके पार हो तुम।
उस साक्षी को जगाओ। देखो अपनी देह को और तादात्म्य तोड़ लो देह से। मत कहो कि मैं देह हूं। इतना ही कहो कि मैं देह में हूं। देह के भीतर निवास कर रहा हूं। देह मेरा घर--एक अस्थायी आवास; सराय, धर्मशाला। आज रुके, कल विदा हुए। और मैं मन भी नहीं हूं। क्योंकि जो भी मैं देख सकता हूं, वह मैं नहीं हो सकता।... मन को तुम देख सकते हो। विचारों की धारा चलती रहती है, तुम देख सकते होः यह विचार आया, दूसरा गया; एक वासना उठी, दूसरी उठी; सतत चल रही है धारा वहां। क्रोध आया, मोह आया, लोभ आया, तुम देख सकते हो। तो निश्चित ही एक बात तय हो गई कि तुम क्रोध नहीं, तुम मोह नहीं, तुम लोभ नहीं। तुम देखने वाले हो, तुम दृष्टा हो! इस दृष्टा के साथ तुम अपने को समग्ररूपेण जोड़ लो। यही तुम्हारा स्वरूप है। यही तुम्हारा सत्य है। यही तुम्हारा परमात्मा है। बस अहंकार गया--जैसे ही शरीर और मन से संबंध छूटा, अहंकार गया; उसी को मृत्यु कह रहे हैं।
मरने मरना भांति है रे, जो मरि जानै कोइ।
मर जाओ शरीर के तरफ से, मर जाओ मन के तरफ से, तो तुम जीवित हो जाओगे साक्षी की तरह!
रामदुवारे जो मरे, वाका बहुरि न मरना होइ, हो।
और यह है राम के दरवाजे पर मरने की कला। और जो राम के दरवाजे पर मर गया, उसका फिर दुबारा मरना नहीं होता। फिर बचता ही नहीं कुछ दुबारा मरने को। तुमको तो बहुत बार मरना पड़ा है और बहुत बार मरना पड़ेगा। जब तक राम के द्वार पर न मरोगे, तब तक द्वार-द्वार पर मरना पड़ेगा। अनंतशृंखला है। जन्म और मृत्यु की। लेकिन एक मरने से काम हल हो जाता है; क्योंकि उस एक मरने से महाजीवन मिल जाता है जिसकी कोई मृत्यु नहीं है।
इनकी यह गति जानिके, मैं जहं-तहं फिरौं उदास।
मलूक कहते हैं कि लोगों की यह गति मैं देखता हूं कि कितने जन्मे, कितने मरे, फिर भी उसी में लगे हैं! वही चक्कर, वही उपद्रव जारी है; वही मूर्च्छा, वही बेहोशी! इनको देख कर मन उदास होता है। इन पर दया आती है।
क्या करूं, कैसे इन्हें जगाऊं? ... यही सब सदगुरुओं की पीड़ा है।
इनकी यह गति जानिके, मैं जहं-तहं फिरौं उदास।
अजर अमर प्रभु पाइया, कहत मलूकदास, हो।।
मलूकदास कहता है कि सुनो, मैंने अजर-अमर प्रभु पा लिया--एक छोटी सी बात से, एक छोटी सी कुंजी से, कि मैं राम के द्वार पर मर गया। तुम भी मरो, ताकि शाश्वत को पा लो!
रामदुवारे जो मरे!

आज इतना ही।

रामदुवारे जो मरे
चौथा प्रवचन

भोर कब होगी?

पहला प्रश्नः ओशो, वर्षों की अभिलाषा लेकर दर्शन हेतु गत वर्ष मैं आश्रम आया था। प्रातः समय प्रवचन में दर्शन के बाद मेरे अंदर नजदीक से दर्शन करने की प्रबल आकांक्षा जाग्रत हुई। इसके लिए बस एक ही उपाय था कि मैं झूठ बोलूं कि मुझे संन्यास लेना है। तभी निकटता प्राप्त हो सकती थी। और वही मैंने किया। यहां तक कि आपने भी पूछा कि ध्यान करते हो, तो मैं झूठ ही बोला था कि हां, सक्रिय-ध्यान करता हूं।
मैं निकट से दर्शन कर वापस चला गया। कुछ दिनों के बाद अचानक मुझमें परिवर्तन आ गया। अब मैं तीन महीने से गैरिक वस्त्र, माला पहनता हूं और नियमित ध्यान भी रम गया है। यह सब कैसे परिवर्तन हो गया, मुझे पता नहीं। लेकिन एक बात मुझे सदैव कचोटती थी कि मैंने ओशो से झूठ बोला है, इसके लिए मैं माफी मांगूं। आज मैं पुनः आश्रम में हूं। मुझे माफ करें! और जिस अजूबे ढंग से, प्रभु, मुझे आपने रंग डाला है, इसके लिए मैं बहुत-बहुत अनुगृहीत हूं। आरसी की एक पंक्ति याद आती है--
प्रेम! प्रेम! हे भुवन विमोहन! छबि के सागर,
यद्यपि तुममें है बस, केवल ढाई आखर।
पर त्रिलोक को तूने बांधा दृढ़ बंधन में,
वह बंधन, जो है असूत्र, अदभुत जीवन में।
पुनश्चः मेरी गलतियों को क्षमा करें, प्रभु!

गौरीशंकर भारती! प्रभु के रास्ते सूक्ष्म हैं। अगोचर, अदृश्य। कब कैसे तुम पर जाल फेंकेगा, कब कैसे तुम उसके जाल में फंस जाओगे, शायद तुम्हें खबर भी न हो पाए। तुम्हें पता भी न चले। प्रभु के मार्ग स्थूल नहीं हैं। आंखों से दिखाई पड़ें, तर्क से समझ में आएं, ऐसे नहीं हैं। कब किस अनजान रास्ते से बुलावा आएगा, कब किस बहाने तुम उसके निकट आने लगोगे, कोई भी भविष्यवाणी नहीं की जा सकती। ऐसा तुम्हें ही हुआ हो, ऐसा नहीं, सदियों- सदियों में बहुतों को हुआ है। सोचा भी न था और परम घटना घटी। सोचने से तो कभी घटती नहीं। अनसोचे आसानी से घट जाती है।
अंगुलिमाल हत्यारा था। बड़ा हत्यारा, बड़े से बड़ा हत्यारा। उसने कसम खा रखी थी कि एक हजार लोगों की गर्दनें काट कर उनकी अंगुलियों की माला बना कर पहनूंगा। इसलिए अंगुलिमाल उसका नाम पड़ गया। उसने न मालूम कितने लोग मारे। कहते हैं, नौ सौ निन्यानबे लोग मारे, एक की कमी थी। उसकी मां भी उसके पास जाने से डरने लगी थी। क्योंकि वह ऐसा हत्यारा आदमी और एक की ही कमी बची है, मां से भी पूरी कर सकता था। जिस जंगल में वह रहता था, वहां से रास्ते बंद हो गए, लोगों ने गुजरना बंद कर दिया। सम्राट भी उसे देख कर, उसकी कल्पना-मात्र से, उसकी मौजूदगी की खबर पाकर थर-थर कांपता था। अकेला पूरे राज्य को हिला रहा था।
बुद्ध उस रास्ते से गुजरे। गांव के लोगों ने कहाः आप मत जाएं उस रास्ते से। उस दुष्ट का कुछ भरोसा नहीं है। दूसरा रास्ता है, जरा लंबा है, लेकिन चुनने योग्य है। नाहक जीवन को खतरे में क्यों डालना? बुद्ध के भिक्षुओं ने भी उनको प्रार्थना की कि भगवान, वहां जाने की क्या जरूरत है? बुद्ध ने कहाः मुझे अगर पता न होता तो शायद मैं दूसरे रास्ते से भी जा सकता था, अब तो पता है। कोई वहां न जाएगा, मुझे तो जाना ही चाहिए। शरीर तो ऐसे ही गिरेगा; चलो, इस आदमी की आकांक्षा ही पूरी हो जाएगी! उसे एक की ही जरूरत है, एक शरीर मेरे पास है। और यह शरीर तो जाने वाला है; किसी के काम आ जाए, इससे और शुभ क्या होगा? थोड़ी सेवा हो जाएगी।
जो भिक्षु सदा बुद्ध के साथ-साथ चलते थे, गौरव अनुभव करते थे साथ-साथ चलने में, दिखलाते थे लोगों को कि हम बुद्ध के इतने निकट हैं, वे भी पीछे रह गए। बुद्ध जब अंगुलिमाल के पास पहुंचे तो अकेले थे। मीलों पीछे छूट गए थे उनके शिष्य। अंगुलिमाल दूर से ही चिल्लाया कि हे भिक्षु, रुक जा! शायद

तुझे पता नहीं है कि मैं कौन हूं! बुद्ध हंसे और उन्होंने कहा कि शायद तुझे भी पता नहीं है कि मैं कौन हूं। और मैं तुझसे कहता हूं कि मुझे पता है कि मैं कौन हूं, तुझे यह भी पता नहीं है कि तू कौन है। अंगुलिमाल झिझका, एक क्षण ठिठका, ऐसा आदमी तो उसने नहीं देखा था जो इस बल से बोले! फिर भी उसने कहा कि अच्छा हो लौट जाओ, जहां हो वहीं ठहर जाओ, एक कदम और आगे बढ़े कि खतरा है। बुद्ध ने कहाः अंगुलिमाल, मुझे तो वर्षों हो गए, तब मैं रुक गया। तू रुक! अंगुलिमाल ने कहा कि तुम विक्षिप्त मालूम होते हो।
तुम्हारी पहली बात से ही मुझे पता चल गया कि तुम विक्षिप्त हो, अब दूसरी से तो बिल्कुल प्रमाण मिल गया। खुद तो चले आ रहे मेरी तरफ और कहते हो तुम रुक गए हो! और मुझ रुके हुए को कहते हो कि मैं चल रहा हूं। बुद्ध ने कहा कि हां; क्योंकि जिस दिन मेरा मन रुका, उस दिन मैं रुक गया। तेरा मन अभी चल रहा है। देह जरूर ठहरी है। और मन चल रहा है तो सारा संसार चल रहा है। इसलिए कहता हूं कि तू चल रहा है और मैं ठहरा हुआ हूं।
अंगुलिमाल को सोचना पड़ा। बात पते की थी। बुद्ध बिल्कुल सामने आकर खड़े
हो गए। उसके हाथ उठाना चाहते थे फरसे को, उठा नहीं पा रहे थे। यह आदमी मारने जैसा तो नहीं! इस आदमी के चरणों में मर जाना मिल जाए, तो सौभाग्य है। लेकिन फिर भी पुरानी आदत, पुराने संस्कार, बल मारे, उठा, उठाया फरसा। बुद्ध ने कहा कि देख, कुछ जल्दी नहीं; मुझे तो तू जब चाहे तब मार लेना, यह गर्दन तो कटी ही हुई है, मैं कुछ भागने वालों में से नहीं हूं, अन्यथा आता ही नहीं, मगर इसके पहले कि तू मुझे मारे, एक छोटी सी मेरी जिज्ञासा है, वह पूरी कर दे। उसने पूछा, क्या? बुद्ध ने कहाः इस वृक्ष के, जिसके नीचे हम खड़े हैं, कुछ पत्ते तोड़ दे। उसने कहाः पत्ते क्यों? उसने उठाया अपना फरसा और एक पूरी शाखा काट दी। बुद्ध ने कहाः बस, आधी आकांक्षा पूरी हो गई, आधी और पूरी कर दे। अब इसे वापस जोड़ दे! अंगुलिमाल बोलाः तुम निश्चित पागल हो! टूटी शाखा अब कैसे जोड़ी जा सकती है? बुद्ध ने कहाः अगर जोड़ नहीं सकता, तो तोड़ने की जुर्रत भी नहीं करनी चाहिए। तोड़ना तो कोई बच्चा भी कर सकता था, जोड़ने की कला ही कला है। तूने इतने लोग मारे, एक चींटी को भी जिला सकता है? और जिसे हम जीवन न दे सकते हों, उसे मारने का हमें हक क्या है?
जैसे अंगुलिमाल सदियों-सदियों की निद्रा से जागा। फरसा हाथ से गिर गया, बुद्ध के चरणों में झुक गया, बुद्ध ने उसके सिर पर हाथ रखा और कहाः भिक्षु अंगुलिमाल, उठो! उसने कहाः आप भिक्षु मुझे क्यों कहते हैं? बुद्ध ने कहाः मैंने दीक्षा दे दी। मैं ऐसे ही हिम्मतवर लोगों की तलाश में हूं। अंगुलिमाल ने दीक्षा मांगी न थी, झुका था तब हत्यारा अंगुलिमाल था, उठा तब भिक्षु अंगुलिमाल था। बुद्ध ने कहाः मैंने तो दीक्षा दे दी। तू मेरा संन्यासी हो गया। चल मेरे पीछे! अंगुलिमाल, तू प्यारा व्यक्ति है! इतनी जल्दी बहुत कम लोगों की समझ में आता है। अंगुलिमाल ने कहाः मैं हत्यारा हूं। मुझसे ज्यादा पापी नहीं कोई। और यह क्या ढंग है मुझे दीक्षा देने का? मैंने मांगी नहीं! बुद्ध ने कहाः तू मांगे या न मांगे, तू पात्र है और मैं देता हूं। ऐसे अंगुलिमाल दीक्षित हुआ।
और दूसरे दिन ही अदभुत घटना घटी।
जब शहर में आया बुद्ध के साथ, तो ऐसा भय व्याप्त हो गया कि लोगों ने द्वार-दरवाजे बंद कर लिए। जान कर भी कि वह भिक्षु हो गया है, लेकिन पुरानी आदतें! झपट पड़े किसी पर, किसी की गर्दन काट दे! ऐसे आदमी का कोई भरोसा करता है! लोगों ने पत्थर मारे अपने मकानों पर चढ़ कर। ये बहादुर लोग, जो रास्ते पर जाने से डरते थे, ये उस निहत्थे आदमी पर पत्थर फेंकने लगे। अंगुलिमाल पत्थरों की चोटें खाकर गिर पड़ा, लहूलुहान हो गया। बुद्ध उसके पास झुके और अंगुलिमाल से पूछा अंगुलिमाल, इन लोगों के प्रति तेरे मन में क्या होता है? उसने कहाः कुछ भी नहीं। करुणा उठती है, कि बेचारों को कुछ भी पता नहीं क्या कर रहे हैं! अरे, उसे तोड़ रहे हैं जिसे जोड़ नहीं सकते। उसे मार रहे हैं जिसे जिला नहीं सकते। और फिर अब आपके चरणों में झुक कर मैंने अपने भीतर जो देखा है, उसकी कोई मृत्यु नहीं। बुद्ध ने कहाः अंगुलिमाल, अब तू न केवल भिक्षु है, ब्राह्मण भी हो गया। हे भिक्षु, हे ब्राह्मण, उठ! मेरे साथ आ! तूने ब्रह्म को जान लिया।

सांझ सम्राट बिंबिसार को खबर मिली तो वे बुद्ध के दर्शन को आए देखने
तो आए अंगुलिमाल को, जीवन भर का दुश्मन था, लेकिन बहाना तो बुद्ध के दर्शन का था। बुद्ध के चरणों में झुके और कहाः मैंने सुना है अंगुलिमाल दीक्षित हुआ! बुद्ध ने कहाः नहीं, दीक्षित हुआ नहीं, दीक्षा दी गई; प्रसाद-रूप, पात्र था। बिंबिसार ने कहाः अंगुलिमाल और पात्र! तो फिर अपात्र कौन है? बुद्ध ने कहाः अपात्र कोई भी नहीं है। जो अपात्र माने है अपने को, अपात्र है। मान्यता की अपात्रता है अन्यथा प्रत्येक व्यक्ति के भीतर बुद्धत्व विराजमान है। जरा उकसाओ, जरा राख झाड़ो और अंगारा निकल आएगा--दमकता अंगारा, शाश्वत ज्योति प्रकट हो जाएगी।
बिंबिसार का जैसे लेकिन अभी समय नहीं आया था। उसे इन बातों में उत्सुकता न थी। उसने कहाः मैं जानना चाहता हूं वह अंगुलिमाल है कहां? मैं उसे देखना चाहता हूं। जीवन भर की इच्छा है उसे देखने की, वह आज पूरी हो जाए। बुद्ध ने कहाः यह जो मेरे बगल में बैठा हुआ भिक्षु है, यह अंगुलिमाल है। सम्राट तो इतना घबड़ा गया कि उसने जल्दी से अपनी तलवार बाहर निकाल ली। बुद्ध ने कहाः म्यान में रखो तलवार को; अब इससे डरने की कोई भी जरूरत नहीं; तुम इसके टुकड़े-टुकड़े भी काट डालो, तो भी इसके मन से, इसके प्राणों से कोई दुर्भावना नहीं उठेगी, आशीष ही बरसेंगे। यह न केवल भिक्षु है, यह ब्राह्मण भी हो गया। उसने ब्रह्म को भी जान लिया है। लेकिन बिंबिसार को पसीना छूट गया।
ऐसे अंगुलिमाल बुद्धत्व को उपलब्ध हुआ। कुछ सोचा भी न होगा, कभी कल्पना भी न की होगी, कभी सपना भी न देखा होगा।
वाल्मीकि ने सोचा था? नहीं सोचा था। अचानक मिलना हो गया था नारद से। नारद को लूटना चाहता था वाल्मीकि। लेकिन नारद ने कहाः मुझे लूटे इसके पहले घर जाकर एक बात पूछ आ कि लूटने से जो पाप लगता है, घर के लोग, जिनके लिए तू लूट रहा है--पत्नी, तेरे पिता, तेरे बेटे--वे भागीदार होंगे पाप में? साझीदार होंगे पाप में! वाल्मीकि हंसा। तब उसका नाम था वाल्या भील, वह हंसा। उसने कहाः मुझे धोखा देते हो? इधर मैं पूछने जाऊं, तुम उधर भाग जाओ! नारद ने कहाः मुझे बांध दो एक वृक्ष से। बांध कर गया वाल्या नारद को, पूछने घर!
पिता से पूछा, पिता ने कहा कि मुझे क्या मतलब कि तू कैसे पैसा लाता है। बूढ़े बाप की सेवा करना तेरा कर्तव्य है, पाप-पुण्य तू जान! इसमें कैसी साझेदारी? मैंने कभी तुझसे पूछा भी नहीं, न कभी पूछूंगा, तू कैसे कमाता है, यह तू सोच! पत्नी ने कहाः मुझे क्या पता; मुझे विवाह कर लाए थे, तब से तुम्हारा कर्तव्य है कि मेरी चिंता करो, मेरी देखभाल करो। मैं तुम्हारा घर सम्हालती, तुम्हारा भोजन बनाती, तुम्हारे बच्चे पालती, तुम्हारे पिता की सेवा करती--और क्या चाहते हो? इतना बहुत है। पाप-पुण्य का हिसाब तुम समझो! बेटों ने कहाः हमें क्या पता? तुमने जन्म दिया! हम तो अभी बड़े भी नहीं हुए। हमें कुछ पता भी नहीं किसको पुण्य कहें, किसको पाप। आप समझें। वाल्या चौंका और जागा।
लौटा तो नारद से कहाः मुझे क्षमा कर दें, मैं भूल में था। वे कोई भी मेरे पाप में भागीदार नहीं हैं। तो अब और पाप नहीं हो सकेगा। मुझे कुछ मंत्र दें, मुझे कुछ विधि दें, मुझे कुछ जीवन-रूपांतरण की प्रक्रिया दें। बेपढ़ा-लिखा हूं, शास्त्र पढ़ नहीं सकता, मुझ सरल, सीधे-सादे आदमी को, ग्रामीण आदमी को भी कुछ उपाय हो तो बता दें। नारद ने कहाः तो तू फिर राम-राम जप!
लौटे जब नारद तो वाल्या ज्ञान को उपलब्ध हो गया था, वाल्या नहीं था, वाल्मीकि हो गया था। ज्योति बिखर रही थी उससे। आभामंडल उसे घेरे हुए था। सैकड़ों गजों की दूरी से उसकी सुगंध, उसका संगीत नारद को अनुभव होने लगा। पास आए तो बहुत चौंके। वह राम-राम तो भूल गया था, मरा-मरा जप रहा था। लेकिन मरा-मरा जपते भी! ... राम-राम जोर से जपो, बार-बार जपो, तेजी से जपोः राम, राम, राम, राम, बेपढ़ा-लिखा आदमी था, भूल-चूक हो गई, "रा" पीछे हो गया, "म" आगे हो गया, तो मरा-मरा जपता रहा। लेकिन मरा-मरा जप कर भी राम को उपलब्ध हो गया। जाप में एक भाव था, एक श्रद्धा थी, एक सरलता थी, एक हार्दिकता थी, एक प्रेम

था। सोचा होगा वाल्या ने कभी कि ऐसे जीवन में क्रांति हो जाएगी? नहीं तुम जानते परमात्मा कब, किस द्वार से तुममें प्रवेश करेगा?
तुम ठीक कहते हो, गौरीशंकर, कि "मैं वर्षों की अभिलाषा लेकर दर्शन के हेतु आया था।"
वह अभिलाषा ही तो बीज है। अभिलाषा प्रगाढ़ हो, तो बीज टूटेगा, अंकुरित होगा।
तुम कहते हो कि "प्रातः प्रवचन में दर्शन के बाद मेरे अंदर नजदीक से दर्शन करने की प्रबल आकांक्षा जाग्रत हुई।"
दरस-परस की आकांक्षा, पास आने की अभीप्सा अनजानी है। तुम पहचान न सके
उस समय। जब बीज को कोई बोता है तो पता भी तो नहीं होता कि कैसे पत्ते निकलेंगे, कैसे फूल लगेंगे, वृक्ष कितना ऊंचा उठेगा, बादलों को छुएगा कि चांद-तारों से बातें करेगा? कौन कह सकता है? बीज में तो सब छिपा होता है। बीज की तरह तुम आए थे, बीज की तरह ही तुम सरके पास। तुम कहते हो, पास आने का कोई और उपाय नहीं था, सिवाय इसके कि संन्यास लूं। इसीलिए तो औरों को पास आना रोक दिया है। पास आना सस्ता न रह जाए। नहीं तो तुम बीज के बीज लौट जाओगे। पास आना महंगा होना चाहिए। पास आने के लिए तुम्हें कुछ झुकना चाहिए, कुछ मिटना चाहिए। इसलिए जैसे-जैसे मेरे पास संन्यासियों की उपस्थिति बढ़ेगी, वैसे-वैसे मेरे पास आने के लिए तुम्हें कीमत चुकानी होगी। तुमने सोचा कि चलो, धोखा ही दे देंगे! झूठा ही संन्यास ले लेंगे! लेकिन कई बार ऐसा हो जाता है कि धोखा देने आदमी जाता है और धोखा खा जाता है। इस तरह के धोखे खतरनाक हैं।
मैंने सुना है, एक आदमी ने चोरी की। घर के लोग जाग गए, शोरगुल मच गया, आदमी भागा। उसके पीछे घर के लोग भागे। रास्ते से पुलिसवाला भी पीछे हो लिया। वह आदमी तो बड़ी घबड़ाहट में पड़ गया। वर्षा के दिन, नदी के किनारे आया तो बाढ़, हिम्मत न पड़ी कूदने की। कुछ और नहीं सूझा, कपड़े तो फेंक दिए नदी में, नंगा होकर किनारे पर बैठ गया। जब तक लोग पहुंचे, उन सबने उसे झुक कर नमस्कार किया और कहा कि साधु महाराज, एक चोर अभी-अभी यहां आया है, आपने जरूर देखा होगा।
उस चोर के भीतर एक क्रांति हो गई! उनका कहना साधु महाराज और उसने सोचा
कि मैं तो सिर्फ धोखे का साधु हूं, मेरे चरणों में झुक रहे हैं, काश, मैं सच्चा साधु होता! एक आकांक्षा जगी, न मालूम किन जन्मों की सोई हुई आकांक्षा रहीं होगी! फिर उसने चोरी का रास्ता ही नहीं छोड़ा, साधारण संसार का रास्ता भी छोड़ दिया। फिर तो वहीं रम गया।
सम्राट भी एक दिन उसके चरण छूने आया। सम्राट ने पूछाः आप कहां से आए? कौन हैं? आपकी प्रतिभा की बड़ी ख्याति सुनी है। आपके सौमनस्य, आपकी शांति, आपकी कीर्ति दूर-दूर तक फैल रही है। वह हंसने लगा, उसने कहाः मत पूछो। धोखा देने चला था, धोखा खा गया। उसने अपनी कहानी कही कि हूं मैं वही चोर। अब छुपाऊंगा नहीं। अब साधुता उस जगह आ गई जहां छुपाना मुश्किल हो जाता है। साधुता उस जगह आ गई जहां सत्य ही प्रकट करना होता है। था तो चोर, कपड़े ही फेंके थे, कभी सोचा भी न था कपड़े फेंकते वक्त कि साधु हो जाऊंगा। कोई और उपाय न देख कर साधु का वेश बना कर बैठ गया था, नंग-धड़ंग, राख पड़ी थी घाट पर, उसी को लपेट लिया था, लेकिन जो लोग पीछे आए थे, पैर छुए; उन्होंने मुझे दीक्षा दे दी उन्होंने पैर छुए और मेरी दीक्षा हो गई। वस्त्र ही नहीं गए नदी में, चोर भी बह गया। और जब मुझे दिखाई पड़ा कि झूठे साधु को भी इतना सम्मान है, तो सच्चे साधु को कितना सम्मान न होगा! बस, मेरे भीतर कुछ मिट गया और कुछ नया उमग आया।
तुमने संन्यास झूठा ही लिया था। इसीलिए तो मैं फिकर ही नहीं करता कि कौन संन्यास झूठा ले रहा है, कौन सच्चा ले रहा है। मैं कहता हूं, लेने भी दो। फिर निपट सुलझ लेंगे। चलो झूठा ही सही; चलो अभी इतना ही बहुत; उंगली पकड़ में आ गई, तो पहुंचा बहुत दूर नहीं। बहुतों को मैं जानता हूं--तुम अकेले नहीं हो--जिनको संन्यास देते वक्त मुझे स्पष्ट साफ होता है कि वे झूठा ले रहे हैं; लेकिन फिर भी मेरी आस्था मनुष्य में है, मेरे मन में परम सम्मान है मनुष्य का, मैं जानता हूं कि जो आज झूठा ले रहा है, वह भी क्या

करे, जिंदगी भर उसकी झूठ से भरी है, जन्म-जन्म झूठ से भरे हैं, आज अचानक सत्य का उसमें आगमन हो भी कैसे जाए? इस सारी झूठ की लंबी प्रक्रिया का परिणाम यह है कि वह संन्यास भी ले रहा है तो भी झूठ ले रहा है। इस सारी प्रक्रिया की निष्पत्ति यह है कि बुरा तो वह करता ही रहा है, आज भला भी करने चला है तो भी तन-प्राण से, एकाग्र होकर, पूरा-पूरा नहीं कर पा रहा है। लेकिन एक बार संन्यास ले जाने के बाद तुम्हारी जिंदगी में कुछ न कुछ होना सुनिश्चित है। क्योंकि मुझसे जुड़े। एक किरण भी उतर आई तुम्हारी अंधेरी रात में तो भी काफी है। उसी किरण का सहारा लेकर फिर तुम सूरज तक पहुंच जाओगे।
ऐसे ही तुम्हारे जीवन में घटा। तुमने मुझसे झूठ बोल दिया था कि ध्यान करता हूं। लेकिन अच्छे रास्ते पर झूठ भी सच हो जाते हैं, गलत रास्ते पर सच भी झूठ हो जाते हैं। ठीक संदर्भ में झूठ भी सीढ़ी बन जाता है, गलत संदर्भ में सत्य भी गड्ढा हो जाता है। सारी बात संदर्भ की है। आए थे झूठ संन्यास लेने, बोल गए थे झूठ, फिर वही कचोटने लगा होगा, फिर वही काटने लगा होगा। फिर बार-बार रह कर लगने लगा होगा, यह मैंने क्या किया? संन्यास भी झूठा लिया? कम से कम संन्यास को तो छोड़ देता। संन्यास को तो झूठ में न डुबाता। झूठ बोला कि ध्यान करता हूं! तुमने अगर मुझसे कहा होता कि नहीं करता हूं, तो भी कोई अड़चन नहीं थी; तो भी कुछ हर्ज न था; लेकिन अहंकार यहां भी झूठ बुलवा गया।
मैंने सुना है एक शराब-घर में एक पहलवान आया। डट कर उसने शराब पी, टेबल
पर रखा हुआ आधा नीबू उठाया... पहलवान था, उसको निचोड़ दिया! एक-एक बूंद उस नीबू से निचुड़ गई। फिर उसने आवाज दी कि है कोई शराबखाने में जवां मर्द, अगर एक बूंद और इसमें से रस निकाल दे, तो ये हजार रुपये! खीसे से निकाल कर हजार रुपये टेबल पर पटक दिए। एक दुबला-पतला सा आदमी उठा।... और लोगों ने तो देख कर हिम्मत नहीं की, क्योंकि उसकी भुजाएं, उसका ढंग, और उसने इस जोर से निचोड़ा था नीबू कि उसमें से एक बूंद निकलनी मुश्किल थी।... एक दुबला-पतला आदमी उठा और उसने उठ कर उस नीबू में से तीन बूंदें निचोड़ दीं, एक नहीं। पहलवान भी चौंक गया; शराब भी पी थी, वह भी उतर गई। हजार रुपये उस आदमी ने खीसे में रख लिए। पहलवान ने कहाः मेरे भाई, इतना तो बता दे कि किस अखाड़े में रियाज करता है? उसने कहाः अखाड़े-मखाड़े से मुझे क्या मतलब; मैं इनकम टैक्स आफिसर हूं। अरे, मारवाड़ियों से निचोड़ लेता हूं, तो यह तो नींबू है, इसमें क्या रखा है!
मैं कोई इनकम टैक्स आफिसर तो नहीं हूं। तुम अगर कह भी देते कि ध्यान नहीं करता हूं, तो तुमसे कुछ निचोड़ता नहीं। मारवाड़ी भी होते तो भी! क्या कर सकता था? लेकिन अहंकार हर तरफ अपनी सुरक्षा करता है। झूठ बुलवा देता है। लेकिन पीछे पछताए होओगे। क्योंकि मुझ जैसे आदमी से, जिसके साथ झूठ बोलने का कोई कारण नहीं, कुछ लेना-देना नहीं, उससे झूठ बोल गए! और मैंने तुम्हारे झूठ पर भरोसा किया। मैंने तुम्हारा झूठा संन्यास भी अंगीकार किया। तुम्हारा झूठा उत्तर भी स्वीकार किया। इससे तुम्हारे भीतर एक पीड़ा उठी होगी। उसी पीड़ा ने घना होकर, घनीभूत होकर धीरे-धीरे तुम्हें गैरिक वस्त्रों में रंग डाला। यह होने वाला था। उसी ने तुम्हें माला पहना दी; उसी ने तुम्हें नियमित ध्यान में भी डुबा दिया। क्योंकि झूठा संन्यास लेकर भी तुम्हें शांति की एक झलक मिली होगी। ख्याल आया होगा कि सच्चा संन्यास! यहां तुमने संन्यासी देखे होंगे नाचते, गाते, आनंदित होते, मस्त, उन सबकी याद तुम्हारे मन में धीमे-धीमे, भीगी-भीगी सुगंध की तरह तैरती रही होगी। यहां तुमने संन्यासियों को ध्यान करते देखा होगा, ध्यान के बाद उनकी आंखों में झांका होगा, वह सब तुम्हारे भीतर एक परिस्थिति को निर्माण करता रहा। हुआ तो आकस्मिक तुम्हारे ऊपर से, लेकिन शायद जन्मों-जन्मों की साधना पीछे हो। शायद पहले और भी कभी संन्यासी हुए हो, बीच से छोड़ दिया हो। शायद जन्मों-जन्मों में कभी और भी ध्यान किया हो।
जिंदगी का एक नियम है कि यहां हम जो भी करते हैं, वह कभी खोता नहीं; वह हमारे भीतर संगृहीत होता चला जाता है। फिर कभी तार मिल जाते हैं, फिर कभी साज बैठ जाता है, फिर कभी संगीत उठ आता है।

फूल चमन में खिल-खिल जाए
याद तुम्हारी जब-जब आए

संन्यास है क्या? उसकी याद। मेरी उपस्थिति का और कोई अर्थ नहीं है, यही कि उसकी याद तुम्हें दिला दूं और तुम्हारे और उसके बीच से हट जाऊं, कि तुम्हारा हाथ उसके हाथ में पकड़ा दूं और तुम्हारे और उसके बीच से हट जाऊं।

फूल चमन में खिल-खिल जाए
याद तुम्हारी जब-जब आए

याद तुम्हारी आए ऐसे
ज्यों सावन में चमके बिजली
पिउ-पिउ बोले प्राण-पपीहा
और जगाए सुधियां उजली

गगन घटाएं घिर-घिर आए
याद तुम्हारी जब-जब आए

ओ मेरे वासंतिक वैभव!
कुहुक तुम्हारी अमृत घोले महक तुम्हारी जादूगरनी
इस मस्ती में तन-मन डोले

सागर लहर-लहर लहराए
याद तुम्हारी जब-जब आए

तुम मेरे प्राणों के मधुबन! मन भाया गुंजार तुम्हारा मनचीता सौंदर्य तुम्हारा मदिराया संसार तुम्हारा

मेरे मन में प्यार जगाए
याद तुम्हारी जब-जब आए

याद तुम्हारी बड़ी रसीली
बड़ी रुपहली, बड़ी रंगीली
तन लहकाए, मन बहकाए
याद तुम्हारी बड़ी नशीली

आंगन में शत दीप जलाए
याद तुम्हारी जब-जब आए

धीरे-धीरे याद आने लगी। धीरे-धीरे एक-एक कदम परमात्मा तुम्हारे भीतर प्रवेश करता है। अब डरना मत! अब बढ़े जाना! अभी और भी मंजिलें हैं। आसमां के आगे भी और मंजिलें हैं। पहुंचना है परम पद तक। संन्यास तो पहला कदम है। ध्यान तो सेतु है, पहुंचना है उस पार। पहुंचना है ऐसी जगह जहां ध्यान स्वाभाविक हो जाए। आ जाती है वह घड़ी भी एक दिन; और ऐसी ही आकस्मिक आती है जैसे संन्यास आया, जैसे ध्यान आया। इससे भरोसा लो; इससे आस्था लो; इससे श्रद्धा को सम्हालो। तुम ही परमात्मा को नहीं खोज रहे हो, इससे सिद्ध होता है कि परमात्मा भी तुम्हें खोज रहा है। तुम अकेले ही नहीं चल पड़े हो उसकी यात्रा पर, वह भी तुम्हारी तरफ निकला है। सूफी फकीर कहते हैंः तुम एक कदम उसकी तरफ उठाओ, वह हजार कदम तुम्हारी तरफ उठाता है। और मैं तो तुमसे कहता

हूंः तुम एक कदम भी न उठाओ, पुकार ही उठाओ और वह भागाेचला आता है। ध्यान पुकार है। संन्यास पुकार को ठोस रूप देना है।
गौरीशंकर, शुभ हुआ! माफी मत मांगो! अगर तुमने झूठा संन्यास न लिया होता तो माफी मांगने की बात थी, फिर यह सच्चा कैसे घटता! तुमने अगर मुझसे झूठा न कहा होता कि मैं ध्यान करता हूं, तो फिर तुम सच्चा ध्यान कैसे करते! माफी क्या मांगनी! तुम धन्यभागी हो कि झूठ तुम्हें सच तक ले आया, कि मिथ्या ने तुम्हारे लिए सत्य का मंदिर उपलब्ध करा दिया।
इसीलिए तो मैं पात्र नहीं पूछता, अपात्र नहीं पूछता। आते हैं मेरे पास पुराने ढब के संन्यासी कभी, तो वे कहते हैं--न आप पात्र देखते, न अपात्र देखते, आप ढाले जाते हैं। मैं उनसे कहता हूंः अगर अमृत पास में हो तो क्या सोने के पात्रों में ही ढालोगे तब अमृत होगा? मिट्टी के पात्र में भी ढालोगे तो भी अमृत अमृत है। अरे, पीने के लिए सोने का पात्र हो कि मिट्टी का पात्र हो, सब बराबर है। और अमृत अमृत तभी है जब उस पात्र को भी अमृत से भर दे जो जहर से भरा रहा है। अमृत जहर से थोड़े ही हारता है! जहर अमृत से हारता है। इसलिए अपात्र से अपात्र को भी मैं संन्यास देने को तत्पर हूं। क्योंकि मैं जानता हूं जो मैं दे रहा हूं उसे, वह अमृत है; जो मैं दे रहा हूं, वह परमात्मा है। और परमात्मा के लिए क्या सीमा है! उसके लिए कौन सी परवशता है! तुम झूठ भी उसे चुन लो, तो भी वह सच तुम्हें चुन लेता है। वह तुम्हारे झूठ पर भी भरोसा कर लेता है--उसका भरोसा तुम पर इतना है! और इसी भरोसे में तुम फंसे; कि रूपांतरण हुआ, क्रांति हुई।
मत मांगो! क्षमा मांगने की कोई भी जरूरत नहीं है। तुम धन्यभागी हो! कि
इस बहाने, मेरे पास आने के बहाने संन्यास ले लिया; मेरे पास आने के बहाने ध्यान की बात की। उसी से तुम्हारे जीवन में क्रांति का सूत्रपात हुआ है। मेरे आशीर्वाद तुम्हारे साथ हैं। क्षमा मैं न करूंगा; क्षमा की कोई बात ही नहीं है। तुम आए। कैसे आए, बैलगाड़ी से आए कि हवाई जहाज से आए, क्या फर्क पड़ता है? तुम आए। झूठ पर सवार होकर आए, कि सच पर सवार होकर आए, इससे क्या फर्क पड़ता है? तुम आए। एक बार तुम मेरे पास आओ, फिर काम मेरा है। विवेकानंद अमरीका जा रहे थे, तो राजस्थान में एक राज-परिवार में मेहमान थे। राजा ने उनके स्वागत में एक समारोह किया--अमरीका जाता है संन्यासी। राजा तो राजा! उसने काशी से एक प्रसिद्ध वेश्या भी बुलवा ली। क्योंकि समारोह और बिना वेश्या के हो, यह तो उसकी समझ के बाहर था। नहीं तो समारोह ही क्या? वह तो दीवाली हुई बिना दीयों के। वेश्या तो होनी ही चाहिए। जब विवेकानंद को पता लगा--पता लगा आखिर-आखिर में; सांझ आ गई उत्सव की और विवेकानंद को ले जाने के लिए द्वार पर आकर गाड़ी खड़ी हो गई, तब उनको पता लगा कि एक वेश्या भी आई है समारोह में, वह विवेकानंद के सामने नाचेगी-- तो विवेकानंद ने जाने से इनकार कर दिया कि मैं नहीं जाऊंगा। मैं संन्यासी हूं, वेश्या का नृत्य देखूं! पास ही शामियाना था जहां विवेकानंद ठहरे थे, जहां उत्सव होनेवाला था। लेकिन राजा तो राजा, राजा ने कहा अब नहीं आते तो न आएं, उत्सव तो चलेगा ही। अब वेश्या भी आ गई, मेहमान भी आ गए, शराब भी आ गई, अब जलसा तो बंद नहीं हो सकता; तो उनके बिना चलेगा।
जलसा शुरू हुआ। लेकिन उस वेश्या ने बड़ा अदभुत गीत गाया। उसने नरसी मेहता का एक भजन गाया। पास ही था शामियाना, विवेकानंद को सुनाई पड़ने लगा नरसी मेहता का भजन। उस वेश्या के टपकते आंसू और नरसी मेहता का भजन! नरसी मेहता के भजन में यह कहा गया है कि पारस पत्थर को इस बात की चिंता नहीं होती कि जो लोहा वह छू रहा है, वह पूजागृह में रखा जानेवाला लोहा है या कसाई के घर जिस लोहे से जानवरों की हत्या की जाती है, वह लोहा है। पारस पत्थर तो दोनों लोहों को छूकर सोना बना देता है। तो वह वेश्या अपने गीत में कहने लगी कि तुम कैसे पारस हो? तुम्हें अभी वेश्या दिखाई पड़ती है! मैं तो कितने भाव लेकर आई थी, मैं तो कितने भजन संजो कर आई थी--वेश्या सच में भजन संजो कर आई थी। सोचा वेश्या ने कि विवेकानंद, संन्यासी के सामने नृत्य करना, गीत गाने हैं, तो मीरा के भजन लाई थी, नरसी मेहता के भजन लाई थी; जीवन को धन्य समझा था, कि आज मेरा नृत्य भी सार्थक होगा।

विवेकानंद को बहुत चोट लगी जब उन्होंने सुना यह नरसी मेहता का भजन। उठे और पहुंच गए समारोह में और वेश्या से क्षमा मांगी और कहाः मुझसे भूल हो गई। मेरी गलती। मैं ही अभी पारस नहीं हूं, इसीलिए यह विचार किया कि कौन लोहा पात्र, कौन लोहा अपात्र। विवेकानंद ने कहा है कि उस दिन मेरी आंख खुल गई। उस दिन से मैंने भेद करने छोड़ दिए पात्र-अपात्र के। वह पुरानी आदत उस वेश्या ने छुड़ा दी। वह वेश्या मेरी गुरु हो गई।
जीवन बहुत अनूठा है। रहस्यपूर्ण है। कहां से द्वार खुलेगा परमात्मा का, कहना मुश्किल है।

दूसरा प्रश्नः ओशो, भोर कब होगी?

रामतीर्थ, भोर तो कब की हुई ही हुई है। भोर ही है। आंख खोलो, सुबह तो कब
की हो गई है। सुबह तो स्वभाव है अस्तित्व का। रात तो यहां होती ही नहीं। हां, बाहर सूरज ढलता है और उगता है। भीतर न तो सूरज ढलता और न उगता। वहां तो सदा सब जगमग है। वहां तो सदा सब ज्योतिर्मय है। वहां तो सदा दीवाली है, सदा होली है। वहां तो फाग गाई जा रही है, गीत गुन गुनाए जा रहे हैं, मस्ती बह रही है। वहां दीये जले हैं जो कभी नहीं बुझते--बिन बाती बिन तेल। वहां तो शाश्वत रास है, महारास है। तुम क्या पूछ रहे हो कि भोर कब होगी! भोर तो हुई ही है। आंख खोलो, जागो।
लेकिन हम अक्सर गलत प्रश्न पूछते हैं। हम गलत हैं, हममें गलत प्रश्न लगते हैं। अंधा आदमी पूछता हैः प्रकाश कहां है? बहरा आदमी पूछता हैः कैसा संगीत? बहरा यह नहीं पूछता कि मुझे कान कैसे मिलें? अंधा यह नहीं पूछता कि मुझे आंख कैसे मिले? अंधे को आंख चाहिए, बहरे को कान चाहिए। लेकिन प्रश्न उनके बड़े अजीब होते हैं। बहरा कहता हैः संगीत! मैं मानता ही नहीं कि संगीत होता है। जब मुझे सुनाई नहीं पड़ता तो कैसे हो सकता है? लोग झूठ कहते होंगे। अंधा कैसे माने कि प्रकाश होता है। और अंधा हजार दलीलें दे सकता है।
बुद्ध एक गांव में ठहरे थे। उस गांव के लोग एक अंधे को बुद्ध के पास लाए। उन्होंने कहाः यह अंधा है, अंधा ही होता तो भी ठीक था, बड़ा तार्किक है। इसने गांव भर की नाक में दम कर रखी है। यह कहता हैः प्रकाश होता ही नहीं। हम आंख वालों को गलत सिद्ध कर रहा है। पूरा गांव एक तरफ, यह अंधा एक तरफ और हम सिद्ध नहीं कर पाते। हम थक गए। यह प्रमाण चाहता है प्रकाश के। यह कहता हैः लाओ मैं उसे छूकर देखूं। लाओ, मैं उसे चख कर देखूं। लाओ, मैं उसे बजा कर देखूं। यह अंधा कहता है कि अरे, आदमी दो पैसे की हंडी खरीदने जाता है तो बजा कर देखता है! कहां है प्रकाश? गंध है उसमें कोई तो सूंघ लूं। स्वाद है कोई तो चख लूं। ध्वनि है कोई तो सुन लूं। रूप है कोई तो देख लूं-- कहां है लेकिन? अस्तित्व है उसका तो स्पर्श करूं। मगर न हम इसे स्पर्श करा सकते हैं, न इसे गंध दिला सकते हैं, न इसे स्वाद दिला सकते हैं। और आंखें इसके पास हैं नहीं, इसलिए देखने का सवाल ही नहीं उठता। और प्रकाश तो केवल देखा जा सकता है। प्रकाश छुआ नहीं जा सकता, चखा नहीं जा सकता। प्रकाश तो तुम्हारे भीतर एक ही मार्ग से प्रवेश करता है, वह आंख है। और चूंकि हम प्रकाश को सिद्ध नहीं कर पाते, यह अंधा कहता है कि तुम सब मुझे अंधा सिद्ध करने के लिए प्रकाश की परिकल्पना गढ़ लिए हो! तुम मुझे बुद्धू न बना सकोगे। हम इसे आपके पास लाए हैं, उन लोगों ने बुद्ध से कहाः आप समझा दें। बुद्ध ने कहाः अंधा ठीक कहता है। तुम गलत हो। तुम्हारी गलती इसमें है कि तुम इसे समझाते हो; अंधे को कहीं समझाया जाता है! अरे, इसे किसी वैद्य के पास ले जाओ! मेरा वैद्य है, जीवक, ... बुद्ध कभी जब बीमार हो जाते, तो जीवक उनकी चिकित्सा करता था... तुम जीवक के पास ले जाओ, वह श्रेष्ठतम वैद्य है, अगर आंख का कुछ भी इलाज हो सकता है तो जरूर हो जाएगा।
और इलाज हो गया। छह महीने में उस आदमी की आंख पर जाली थी, वह कट गई। जब उसकी आंखें खुल गईं, तब तक बुद्ध दूसरे गांव जा चुके थे। छः महीने में काफी यात्रा उन्होंने कर ली होगी। वह दूसरे गांव पहुंचा। उनके चरणों पर गिरा और माफी मांगी कि मुझे माफ कर दो, मेरी बड़ी भूल थी। अगर आप मेरे गांव में न

आते तो मेरी जिंदगी यूं ही विवाद करते-करते बीत जाती, और मैं प्रकाश को कभी जान न पाता। और बेचारे मेरे गांव के लोग ठीक ही कहते थे! मगर वे भी क्या करते! और मैं भी क्या करता! मैं अंधा था, मेरा अहंकार मानने को राजी नहीं होता था कि मैं अंधा हूं और उनके वश के बाहर थी बात। अब मैं जानता हूं कि उनके वश के बाहर की बात थी कि मैं जो उनसे प्रमाण मांगता था, वे जुटाने में असमर्थ थे। आपने भला किया जो मुझे प्रमाण न दिए, मुझे वैद्य के पास भेज दिया।
बुद्ध कहते हैं बार-बार, मैं भी वैद्य हूं--भीतर की आंख का। नानक ने भी कहा है कि मैं वैद्य हूं--भीतर की आंख का। यही मैं तुमसे कहता हूंः मैं भी वैद्य हूं--भीतर की आंख का।
मत पूछो रामतीर्थ, भोर कब होगी! भोर ही भोर है। भोर से अन्यथा कुछ है
ही नहीं। रोशनी ही रोशनी है। यह सारा अस्तित्व रोशनी से ही बना है। संत तो सदा कहे कि अस्तित्व रोशनी से बना है, अब तो वैज्ञानिक भी कहने लगे कि सारा अस्तित्व विद्युत से निर्मित है, रोशनी ही आधार है, सब तरफ प्रकाश ही प्रकाश है, प्रकाश का सागर है जिसमें हम जी रहे हैं, जिसमें हम पैदा हुए हैं, जिससे हम बने हैं और जिसमें हम लीन हो जाएंगे। मगर आंख चाहिए।
और अंधे भी नहीं हो तुम, रामतीर्थ!
भीतर की दृष्टि से कोई अंधा पैदा होता ही नहीं। अब तक तो मेरे देखने में नहीं आया और अब तक किसी बुद्ध के देखने में नहीं आया है कि भीतर से कोई अंधा पैदा होता है। भीतर तो सिर्फ आंख बंद रखे हैं लोग, बस। तुम बाहर ही बाहर देखते हो, देखने की क्षमता बाहर ही आबद्ध हो जाती है और तुम भूल ही जाते हो कि यह देखने की क्षमता भीतर भी लौट सकती है। यह लौट भी सकती है भीतर, यह तुम्हारी स्मृति से उतर गई है बात, बस। इतना ही करना है कि यही ऊर्जा जो आंखों से बाहर जा रही है, यही ऊर्जा भीतर लौटने लगे तो तीसरा नेत्र--कोई तीसरा नेत्र है नहीं, प्रतीक मात्र है--तीसरा नेत्र खुल जाता है। बाहर को देखने के लिए दो आंखें हैं, क्योंकि बाहर द्वंद्व है, द्वैत है, द्वी है। भीतर को देखने के लिए एक आंख काफी है, क्योंकि भीतर अद्वैत है, एक है, तो एक आंख काफी है। ये दोनों आंखों से तुमने बहुत देखा, पाया क्या? अब जरा इन आंखों को बंद करो और यही ऊर्जा भीतर संक्रमण करे। ऊर्जा का अंतर्गमन ध्यान का ही रूप है। ध्यान का कुछ और अर्थ नहीं, ऊर्जा का अंतर्गमन, अंतर्यात्रा। सोए हुए हो तुम, बस, सुबह तो है, जागो!

रात के गेसू ता कमर आए
सोए हुए को कौन जगाए

लेकिन बड़ी मुश्किल है सोए हुए को जगाना। क्यों? क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति ने अपनी नींद में बहुत-से सपने संजो लिए हैं! स्वर्णिम, मधुर, प्रीतिकर, मधुमय। जागो तो वे सपने टूटते हैं। अब जैसे किसी को राष्ट्रपति होना है, उसने एक सपना बना रखा है कि अब चुनाव करीब आ रहे हैं, कि प्रधानमंत्री हो जाऊंगा, कि अब राष्ट्रपति हो जाऊंगा। अब जैसे कोई बाबू जगजीवन राम को जगाने की कोशिश करे, तो वे नाराज तो होंगे ही। यह कोई वक्त है जगाने का! अभी दो-चार साल तो और सो लेने दो। अब तो मौका आया है कि सपना साकार होने के करीब दिखाई पड़ता है--हालांकि कोई सपना कभी साकार नहीं होता। साकार होता हुआ दिखाई ही पड़ता है, बस। सपने कहीं साकार हुए हैं! सपने कहीं सत्य हुए हैं! पहले लोग सपने देखते हैं तो जागने से डरते हैं; और जो जगाए, उस पर नाराज होते हैं।
तुमने जीसस को ऐसे ही थोड़े सूली दे दी! नाराज किया होगा जीसस ने। कसूर जीसस का है, तुम्हारा नहीं। सोयों को जगाओगे, उनके सपने मिटाओगे--कब-कब से संजो रखे हैं उन्होंने, उनको भस्मीभूत कर दोगे, उनको धूल-धूसरित कर दोगे; वे अभी एक करवट लेकर और सो रहना चाहते थे और तुम उनको जगाने पहुंच गए, नाराज न होंगे तो क्या करेंगे। बुद्धों को उन्होंने सदा गालियां दीं। कसूर बुद्धों का है, बुद्धुओं का नहीं। बुद्धू और कर ही क्या सकते हैं! इसलिए तो जीसस ने मरते वक्त कहा कि हे प्रभु! इनको क्षमा कर देना, ये जो कर

रहे हैं, इसमें इनका कोई कसूर नहीं है; इन्हें पता ही नहीं है कि ये क्या कर रहे हैं!
सुकरात जहर पीकर मर गया, लेकिन एक शब्द भी नहीं बोला अपने जहर पिलाने वालों के खिलाफ। जानता हैः कसूर मेरा है।
... सीता है हमारी संन्यासिनी। उसके पति हैं, .जरा अपनी मौज के आदमी हैं वे। लोग समझते हैं झक्की। वे पास-पड़ोस के लोगों को हैरान करते रहते हैं। दो बजे रात उठ आएंगे, बगल वाले को जाकर जगा देंगे। पूछेगा कि दो बजे रात आप क्या कह रहे हैं? वे पूछते हैं कि दूधवाला आया कि नहीं? दो बजे रात किसी को जगा कर पूछो कि दूधवाला आया कि नहीं; कि अभी तक अखबार नहीं आया! ... उनसे तो कोई कुछ नहीं कहता क्योंकि लोग समझते हैं, झक्की हैं, मगर सीता की जान खाते हैं लोग कि अपने पति को रोकती क्यों नहीं? मगर वे कोई रुकने वाले हैं! वे किसी से रुक सकते हैं! वे सारे मोहल्ले को हैरान किए रहते हैं। बंबई रहते थे, तो बंबई के लोग सीता के पीछे पड़े थे... सीता यहां रहने लगी... कि इनको पूना ले जाओ, क्योंकि हमको परेशान किए रहते हैं। वक्त-बेवक्त आकर हाजिर हो जाते हैं। और ऐसा सवाल पूछते हैं जिसमें कि कोई मतलब ही नहीं। दो बजे रात कहां का अखबार! कहां का दूधवाला! आखिर दूधवाले भी सोएंगे कि नहीं? आखिर अखबार वाले भी सोएंगे कि नहीं? और तुम दूसरों को नहीं सोने देते... खुद उनको नींद नहीं आती। वृद्ध हो गए हैं और दिन भर आराम करते हैं, तो नींद आए भी तो कैसे आए?
साधारण नींद में भी तुम्हें कोई जगाए तो बुरा लगता है।
मैं जबलपुर में रहता था तो मेरे पड़ोस में एक पहलवान रहते थे। वे तीन
ही बजे रात से उठ कर दंड-बैठक लगाना शुरू करते थे। किसी को भी ट्रेन पकड़नी हो जल्दी, सुबह कहीं जाना हो, तो पहलवान से कह देते लोग। मुझे एक दफा छह बजे ट्रेन पकड़नी थी तो मैंने उनसे कहा कि भाई, पांच बजे उठा देना। उन्होंने आकर मुझे पहले तीन बजे उठाया। मैंने कहाः भाई, यह कोई वक्त है? अभी बहुत देर है, मुझे छह बजे की गाड़ी पकड़नी है! उन्होंने कहा कि मैं कहीं भूल न जाऊं दंड-बैठक लगाने में, मैंने कहा कि पहले दंड-बैठक लगाऊं उसके पहले आपको जगा दूं। चार बजे फिर मुझे जगाया। मैंने कहा कि... उन्होंने कहा कि बीच में मैं थोड़ा आराम करता हूं दंड-बैठक के, मैंने सोचा कि अभी निपटा आऊं, नहीं फिर भूल जाऊं। और पांच बजे वे भूल ही गए!
जब मैं सात बजे उठा तो मैंने उनको जाकर देखा, तो वे बोले कि माफ करिए, मैं भी क्या करूं, दो-दो बार आपको जगाया, आप उठे नहीं! फिर मैं भूल गया। उसी भूलने के कारण तो आपको दो बार जगाया, बेवक्त अकारण, आपकी नींद खराब की। साधारण नींद में भी कोई जगाएगा, हो सकता है तुमने ही कहा हो कि जगा देना, तो भी नाराजगी मालूम होती है। विश्राम टूटता मालूम पड़ता है, स्वप्न टूटते मालूम पड़ते हैं।

रात के गेसू ता कमर आए
सोए हुए को कौन जगाए

सांस की नद्दी तेज है कितनी
नींद तलातुमखेज है कितनी
होश का साहिल दूर है जैसे
जीस्त यहां मजबूर है जैसे थक के जवानी चूर है जैसे

ऐसी थकन में कौन सताए
सोए हुए को कौन जगाए

हुस्न के ख्वाब-ए-नाज का आलम फूल की करवट नींद की शबनम पैकर-ए-सीमीं माह-ए-गनूदा जुल्फ-ए-परीशां निकहत-ए-सूदा

ख्वाब की मस्ती जाम-ए-रुबूदा

नींद की गागर कौन उठाए
सोए हुए को कौन जगाए

सांस की नद्दी तेज है कितनी...

यहां जिंदगी भागी जा रही है तेजी से; यहां किसी को रोक कर झकझोरो, जगाओ, तो वह कहता हैः ठहरो, मत मेरी नींद खराब करो! कुछ अभी मेरी आकांक्षाएं हैं, अभीप्साएं हैं, पूरी कर लेने दो! जिंदगी ये गई कि ये गई, जाग लेंगे बाद में! लोग कहते हैंः ले लेंगे संन्यास बुढ़ापे में; कि स्मरण कर लेंगे मरते वक्त परमात्मा का; कि चले जाएंगे काशी, आखिरी करवट ले लेंगे वहां, मगर अभी नहीं!

सांस की नद्दी तेज है कितनी
नींद तलातुमखेज है कितनी

नींद में कितनी आंधियां और कितने तूफान उठते हैं! मगर फिर भी सब तूफान
और सब आंधियों को टाल कर भी हम सोए रहते हैं।

होश का साहिल दूर है जैसे...

बहुत दूर है किनारा होश का।

जीस्त यहां मजबूर है जैसे

और जिंदगी जैसे मजबूर है नींद में डूबी रहने को।

थक के जवानी चूर है जैसे
ऐसी थकन में कौन सताए
सोए हुए को कौन जगाए

सवाल सुबह का नहीं है। सवाल यह है कि तुम थके हुए हो, चूर हो थकान से, सपनों से भरे हुए हो--माना कि आंधियां हैं, तूफान हैं--मगर साहिल होश का बहुत दूर है, दिखाई भी नहीं पड़ता, धुंध में छिपा है। तुम बुद्धों की बातें सुनते हो, पर भरोसा थोड़े ही आता है कि बुद्ध सच में कोई हो सकता है! या अगर कभी बहुत हिम्मत करके भरोसा भी किया, तो यही भरोसा आता है कि हां, कोई हो गया होगा, लेकिन मैं हो सकता हूं, यह तो असंभव! हो गए होंगे गौतम सिद्धार्थ बुद्ध और हो गए होंगे वर्धमान महावीर जिन, और हो गए होंगे कृष्ण परमात्मा के अवतार, लेकिन मैं साधारण आदमी, मेरी सीमाएं, मेरी असमर्थताएं, मेरी आकांक्षाएं, मेरी वासनाएं, मेरी महत्वाकांक्षाएं, मैं कहां हो सकता हूं। यह किनारा बहुत दूर है। यह अभी आज अपने पास आने वाला नहीं। आज तो सो लो, फिर कल देखेंगे। इसलिए सुबह दिखाई नहीं पड़ती। तुम कल पर टाले चले जाते हो। तुम रोज-रोज टालोगे। ऐसे तुमने सदियों टाला है। स्थगित करने की तुम्हारी आदत हो गई है।
और इसी बेहोशी में तुम बुद्धों से भी मिल लिए हो--विश्वास करो, अनंत-अनंत यात्रा में ऐसा नहीं हो सकता कि तुम्हारा कभी किसी कबीर से, किसी मलूक से, किसी दादू से, किसी फरीद से मिलना न हुआ हो--अनंत-अनंत यात्रा में न मालूम कितनी बार तुम बुद्धपुरुषों के करीब से गुजर गए होओगे, मगर तुम्हें दिखाई ही नहीं पड़ा होगा। तुम ऐसी नींद में हो कुछ दिखाई किसको पड़ता है!
मैंने सुना, अमरीकी एक होटल में दो बूढी महिलाएं एक साथ ठहरी हुई हैं।
उन पर कोई ध्यान नहीं देता। कोई ध्यान दे भी क्या? लोगों के ध्यान जवानी

पर अटके होते हैं। वे बूढ़ी महिलाएं इससे बड़ी दुखी हैं। क्योंकि अहंकार हमेशा ध्यान की आकांक्षा करता है, लोग ध्यान दें। आखिर एक दिन उनको इतना गुस्सा आया कि लोग इस तरह व्यवहार कर रहे हैं जैसे हम हैं ही नहीं। होटल में आते हैं, जाते हैं, गुजरते हैं, कोई देखता ही नहीं! कोई "हलो" भी नहीं कहता। कोई यह भी नहीं कहता कि नमस्कार, कहिए कैसी हो? कोई देखता ही नहीं!! लोग अपने-अपने नशे में मस्त हैं। किसको फुरसत पड़ी है। उनको इतना गुस्सा आया, कुछ करके दिखाना पड़ेगा। लोगों का ध्यान आकर्षित करना ही होगा। अस्सी साल की बुढ़िया हैं दोनों। मगर अमरीका में यह हो सकता है। उन्होंने कपड़े फेंक दिए, दोनों नग्न होकर अंदर होटल में घुसीं कि अब तो देखेंगे लोग! मगर किसी ने नहीं देखा। सिर्फ दो बूढ़ों ने जो एक टेबल पर बैठे चाय पी रहे थे, उनने भर इतना कहा कि अरे भाई, ये कौन महिलाएं हैं? दूसरे ने कहाः कोई भी हों, मगर कपड़े भी किस जमाने के पहने हुए हैं! और कम से कम इस्तरी तो कर ली होती!
ध्यान देने वाले भी मिले तो ऐसे मिले! उन्हें भी यह दिखाई पड़ा कि कम से
कम कपड़ों पर थोड़ी इस्तरी तो कर ली होती! किस जमाने के कपड़े! कौन सा रिवाज, किस ढंग के कपड़े!
किसको पड़ी है? कौन देखता है? लोग अपने-अपने में खोए हैं, अपने-अपने में मस्त हैं। बुद्धों के पास गुजर जाते हैं--सोए, नींद में डूबे।

चेहरे पे मलाहत तारी
सांसों में नशे की धारी
आंखों के पपोटे भारी
ओंठों में लहू सा जारी
कौन आया, यह कौन आया

इठलाता और लजाता
इतराता और शरमाता
कलियों को फूल बनाता
फूलों का रंग उड़ाता
कौन आया, यह कौन आया

आंचल उड़ता सर धुनता
सांसों पे निकाबें बुनता सारी का किनारा चुनता
हर चीज की आहट सुनता
कौन आया, यह कौन आया

तारों के महल बनवाऊं
फूलों के चिराग सजाऊं
पलकों का फर्श बिछाऊं
गालिब के शेर सुनाऊं
कौन आया, यह कौन आया

हमें कुछ दिखाई नहीं पड़ता। वसंत पतझड़ हो जाता है, पतझड़ वसंत हो जाता है; फूल खिलते हैं, कुम्हला जाते हैं, गिर जाते हैं; पक्षी गीत गाते हैं; सूरज उगता है; चांद-तारों से आकाश भर जाता है; मगर हम बेहोश, हम अपनी आंखें बंद किए, हम अपने सपनों में खोए, हम अपने विचारों में लीन, हम अपने अतीत की स्मृतियों में डूबे या भविष्य की कल्पनाओं में बस चले जा रहे हैं, यंत्रवत। इसलिए सुबह दिखाई नहीं पड़ती। सुबह तो है। भोर तो है। और सदा ही है।
फिर दोहरा दूं, बाहर तो कभी दिन होता है, कभी रात होती है, क्योंकि बाहर द्वंद्व है। हर चीज का द्वंद्व है; अंधेरे का, प्रकाश का; जीवन का, मृत्यु का; सर्दी का, गर्मी का; सौंदर्य का, कुरूपता का; जवानी का, बुढ़ापे

का; बाहर तो हर चीज का द्वंद्व है। इसलिए सांझ होती है, सुबह होती है। मगर भीतर तो निर्द्वंद्व अवस्था है। वहां तो एक ही है। वहां न सुबह है, न सांझ है; न दिन है; न रात है; वहां न गर्मी है; न सर्दी है; वहां न मैं है; न तू है। फिर वहां क्या है? अनिर्वचनीय शब्दों में न आए, कुछ ऐसा है। उसमें जागना ही जागना है। और उसको जानना ही भोर है। और वह सदा तुम्हारे भीतर मौजूद है। रामतीर्थ, भीतर चलो। बाहर बहुत चल लिए, पाया क्या? कब तक और बाहर की आकांक्षाओं में ही डूबे रहोगे? भीतर आओ! अपने स्रोत को खोजो! गंगा को गंगोत्री की तरफ बहने दो! बहुत बह चुके बाहर-बाहर, अब मूल की तरफ चलो, अब जड़ की तरफ चलो। और वहीं तुम्हें मिलेगा संतोष, वहीं तुम्हें मिलेगी शांति, वहीं तुम्हें मिलेगा आनंद। उसे ही हमने परमात्मा कहा है, सच्चिदानंद कहा है, सत्यम शिवम सुंदरम कहा है।

तीसरा प्रश्नः ओशो, मैं जीवन में बहुत भूलें करती हूं। वही-वही भूलें बार-बार करती हूं। मैं जानना चाहती हूं कि मनुष्य अपनी भूलों से कुछ सीखता क्यों नहीं?

ज्योति! मनुष्य जीता है बेहोशी में, इसलिए पुनरुक्ति होती है। मनुष्य जीता है यंत्र की भांति, इसलिए पुनरुक्ति होती है। तुम्हें सिर्फ भ्रांति है कि तुम होश में हो। इसलिए वही-वही भूलें दोहरती हैं। कल भी क्रोध किया था, परसों भी क्रोध किया था औंर हर बार क्रोध करके पछताए भी और हर बार पछता कर निर्णय भी लिया कि अब नहीं, अब नहीं, बहुत हो गया! फिर आज क्रोध किया है। फिर पछतावा हुआ है। क्रोध भी पुराना है, पछतावा भी पुराना है। क्रोध भी पुनरुक्त होता है, पछतावा भी पुनरुक्त होता है। और कल फिर तुम क्रोध करोगी और कल फिर पछताओगी। और ऐसे ही उम्र तमाम होती। ऐसे ही सुबह-शाम होती। एक बेहोशी है, एक मूर्च्छा है।
हम इस भ्रांति में हैं कि हम जागे हुए हैं। यह जागरण सच्चा नहीं है। बुद्धों ने चेतना की चार स्थितियां कही हैं। जिसको हम जाग्रत कहते हैं, उसे वे कहते हैंः तथाकथित जाग्रत। दूसरी अवस्था को उन्होंने स्वप्न कहा है। तीसरी अवस्था को सुषुप्ति और चौथी को सिर्फ चौथी कहा है, "तुरीय।" चौथी अवस्था को वे वास्तविक जागरण कहते हैं। आत्म-साक्षात्कार वास्तविक जागरण है। मैं कौन हूं, इसका उत्तर तुम्हें मिल जाए--गीता से नहीं, कुरान से नहीं, बाइबिल से नहीं, मुझसे नहीं, किसी और से नहीं, स्वयं से--फिर तुम्हारे जीवन में भूलें होंगी ही नहीं, दोहराने का तो सवाल ही नहीं उठता। उस होश से भूलों का कोई पैदा होने का उपाय नहीं है। जैसे प्रकाश हो तो अंधेरा नहीं रहता, ऐसे ही आत्म-जागरण हो तो भूलें नहीं बचतीं। जाननेवालों की दृष्टि में एक ही पाप है--मूर्च्छा। और एक ही पुण्य है--जागृति। नहीं तो भूलें तो होंगी।
रेलवे अधिकारी ने नौकरी के लिए आए उम्मीदवार चंदूलाल का इंटरव्यू लेते हुए पूछा: मान लो सुबह-सुबह तुम रेलवे लाइन के पास घूम रहे हो और तुम देखते हो कि पटरियां उखड़ी पड़ी हैं तथा एक ट्रेन सामने से आ रही है, ऐसी स्थिति में तुम क्या करोगे? जी, मैं लाल झंडी दिखाऊंगा, चंदूलाल ने जवाब दिया। मान लो तुम्हारे पास उस वक्त लाल झंडी नहीं है, तब क्या करोगे? हजारों यात्रियों की जान खतरे में है; बोलो, क्या करोगे? जी, मैं कोई लाल कपड़ा जैसे शर्ट या रूमाल या कोई भी वस्त्र निकाल कर झंडी की तरह हिलाऊंगा। मान लो तुम्हारे पास कोई लाल कपड़ा भी नहीं है, रूमाल भी सफेद रंग का है, तब क्या करोगे? तब मैं दौड़ कर घर जाऊंगा और अपनी पत्नी और बच्चों को बुला लाऊंगा। मैं तुम्हारा मतलब नहीं समझा, रेलवे अधिकारी ने आश्चर्य से पूछाः बच्चों और पत्नी को बुला कर क्या करोगे? जी, बच्चों को बुला कर मैं उन्हें समझाऊंगा कि देखो, मैं कैसी झंझट और मुसीबत में पड़ा हूं, चंदूलाल ने कहा, मेरे प्यारे बच्चो, तुम लोग कभी रेलवे की नौकरी मत करना। और यदि किसी को करना ही पड़े तो भूल कर भी कभी सुबह-सुबह रेल की पटरियों के पास घूमने मत निकलना। फिर अपनी पत्नी से कहूंगा कि देख ले प्यारी, ऐसी दुर्घटना तूने

जीवन में देखी भी नहीं होगी, देख ही ले! मुफ्त मनोरंजन भी हो जाएगा। हल्दी लगी न फिटकरी, रंग चोखा हो जाए।
मैंने सुना है--ठीक ऐसी ही घटना--मुल्ला नसरुद्दीन ने एक जहाज पर नौकरी की। नौकरी के पहले इंटरव्यू हुआ। उसका काम था जहाज का लंगर उतारना। अधिकारी ने पूछा कि आंधी आ गई, क्या करोगे? उसने कहा कि जहाज का लंगर पानी में डाल देंगे। अधिकारी ने पूछा कि आंधी बहुत भयंकर है, फिर क्या करोगे? उसने कहाः दूसरा लंगर! अधिकारी ने कहा कि आंधी कोई साधारण आंधी नहीं है! तो उसने कहाः तीसरा लंगर भी डाल देंगे। अधिकारी ने कहा कि आंधी ऐसी है जैसी कभी देखी नहीं तुमने। भयंकर है। प्राण खतरे में हैं। जहाज अब डूबा तब डूबा। तो उसने कहा कि चौथा लंगर भी डाल देंगे। अधिकारी ने पूछा कि इतने लंगर तुम ला कहां से रहे हो? तो नसरुद्दीन ने कहाः इतनी आंधी और तूफान आप कहां से ला रहे हैं? जहां से आप ला रहे हैं, वहीं से हम भी ला रहे हैं। तुम भी कल्पना कर रहे हो, हम भी कल्पना कर रहे हैं। न हमें कोई आंधी-तूफान दिखाई पड़ रहा है, न कोई लंगर दिखाई पड़ रहे हैं।
लोग कल्पनाओं में जी रहे हैं।
आज तो तुम जीते हो बेहोशी में और कल की कल्पना करते हो कि सब ठीक कर लेंगे। लेकिन ठीक करोगे कल और जीओगे आज। और कल कभी आता नहीं। जब आता तब आज।
और आज तो तुम कहते हो कि अब जो है, ठीक है, गुजार लो! अब आज आ गया क्रोध तो ठीक, लेकिन कल न करेंगे। मगर कल आएगा ही कब? कल कभी आया नहीं? आता ही नहीं। कल असंभव है। जब भी आता है, आज आता है। और आज तो तुम्हें क्रोध ही करने की आदत है! और यही आदत सघन होती चली जाती है।
ज्योति! भूल? पहली तो बात, दूसरे जिसे भूल कहते हैं, जरूरी नहीं है कि
वह भूल हो। तो पहला तो विचार यह करना कि भूल जिसे दूसरे कहते हैं, वह भूल है भी या नहीं? पहले तो इसका निर्णय करो कि जो मैं जीवन जी रहा हूं, वह सच में इतनी भूलों से भरा है जितना लोग कहते हैं? या कि बहुत सी भूलें भूलें नहीं हैं सिर्फ लोग कहते हैं, इसलिए मैं भूलें मानता हूं। सचाई यही है। बहुत-सी बातों में कुछ भूल नहीं है।
एक युवक ने मुझसे आकर कहा कि मैं क्या करूं? मेरे पिता जी कहते हैं कि ब्रह्ममुहूर्त में उठो। और यह भूल मुझसे होती है, कि ब्रह्ममुहूर्त में नहीं उठा जाता। मैं तो सुबह छह बजे के पहले नहीं उठ पाता। और वे कहते हैं, हर हालत में पांच बजे तो उठो ही अगर चार बजे न उठ सको। वे खुद तीन बजे उठते हैं। तो मैं क्या करूं? कैसे इस भूल से छुटकारा हो? मैंने उससे कहाः इसमें कुछ भूल ही नहीं है। पहली तो बात यह कि भूल है, ऐसा मानने में ही भूल कर रहे हो। अगर नींद तुम्हारी स्वभावतः छह बजे टूटती है, तो वही ब्रह्ममुहूर्त है। कोई जरूरत नहीं है कि पांच बजे उठो। और पांच बजे अगर जबरदस्ती उठ आए, तो उसका दुष्परिणाम भोगोगे। दिन भर उदास रहोगे, थके-थके लगोगे, आंखें फीकी रहेंगी, नींद आती-आती मालूम होगी। दिन भर ऐसा ही पाओगे कि कुछ चूका-चूका, कुछ छूटा-छूटा, कुछ उखड़े-उखड़े। बार-बार जम्हाइयां लोगे, किसी काम में मन न लगेगा, सब काम थकाने वाले मालूम होंगे। तुम्हें कोई जरूरत नहीं है।
अब कठिनाई क्या होती है कि जैसे ही लोग वृद्ध हो जाते हैं, उनकी नींद
कम हो जाती है।
बच्चा मां के पेट में चौबीस घंटे सोता है।... वह तो अच्छा हुआ कि महात्मागण उनको समझाते नहीं। महात्मागण गर्भ में प्रवेश अगर कर सकते होते तो झकझोर के कहते कि बच्चू! चौबीस घंटे! ब्रह्ममुहूर्त में तो कम से कम जागा करो।... मां के पेट में बच्चे को चौबीस घंटे ही सोना पड़ता है। सोना ही चाहिए। तो ही वह बड़ा हो सकेगा। नींद में ही विकसित होता है। क्योंकि नींद में विराम होता है। और सारी क्रियाएं ठहरी रहती हैं, विकास में ही सारी ऊर्जा लगती है। फिर बच्चा जब पैदा होता है तो तेईस घंटे सोता है; फिर बाईस घंटे, फिर बीस घंटे, फिर अठारह घंटे। जैसे-जैसे बड़ा होने लगता है वैसे-वैसे उसकी नींद कम होने लगती है। फिर आगे एक अवस्था आती है जब नींद आठ घंटे पर रुक जाती है। जवान व्यक्ति आठ घंटे, सात घंटे स्वभावतः सोएगा। सोना ही चाहिए। फिर एक उम्र आती है जब नींद चार घंटे, पांच घंटे रह जाती है। एक उम्र आती है जब नींद तीन घंटे, दो घंटे रह जाती है। जैसे-जैसे मौत

करीब आने लगती है, नींद कम होने लगती है। बड़ी नींद करीब आ रही है अब, छोटी नींद कम होने लगती है। और मौत करीब आ रही है तो अब जीवन-ऊर्जा निर्माण नहीं करती तुम्हारे भीतर। सब निर्माण बंद हो गया। अब तो जो टूट गया सो टूट गया, फिर से नहीं बनता। इसलिए अब नींद की जरूरत नहीं रही। नींद निर्माण की प्रक्रिया है।
लेकिन खतरा क्या है? शास्त्र लिखे हैं बूढ़ों ने। बूढ़े ही घरों में कब्जा जमाए बैठे हैं। उन्हीं को समझदार समझा जाता है। और बूढ़े बेचारे अपने अनुभव से कहते हैं, कि जब हम तीन घंटा सोते हैं तो तुम्हें आठ घंटे सोने की क्या जरूरत है? अरे, हम बूढ़े होकर तीन घंटे सोते हैं और तीन बजे उठते हैं, तुम जवान होकर छह बजे उठ रहे हो! ऐसा मैंने लोगों को कहते सुना है। उनकी दलील ऊपर से बड़ी ठीक लगती है, कि हम बूढ़े होकर तीन बजे उठ आते हैं और तुम जवान होकर, शर्म तो खाओ! मगर उनकी बात बिल्कुल गलत है। अवैज्ञानिक है। बूढ़े होने के कारण ही वे तीन बजे उठ आते हैं। जरा उनसे यह तो कहो कि तुम भी तो छह बजे तक सोकर दिखलाओ। बूढ़े होकर अगर यह करके दिखला दो, तो हम मानें? तब उनको कठिनाई पता चलेगी।
न बूढ़े छह बजे तक सो सकते हैं, न जवान तीन बजे उठ सकते हैं। अगर बूढ़े छह बजे तक सोएंगे तो दिन भर झल्लाए रहेंगे। क्योंकि जबरदस्ती सोना पड़ा। वह बंधन रहा। अगर जवान तीन बजे उठेंगे, तो दिन भर झल्लाए रहेंगे।
तो जरूरी नहीं है कि जिसको लोग भूलें कहते हैं, वे भूलें हों। पहले तो
यह निर्णय करना ज्योति, कि किन बातों को भूल समझा जा रहा है।
अफ्रीका में कुछ कबीले हैं जो एक ही बार भोजन करते हैं। अगर कोई दो बार भोजन करे, उसको समझते हैं कि वह आदमी गलत काम कर रहा है। हमारे यहां दो बार भोजन को कोई गलती नहीं मानता। दो बार सभी भोजन करते हैं। लेकिन हमारे यहां अगर कोई तीन बार भोजन करे, तो जरूर हम कहेंगे, थोड़ा ज्यादा भोगी है; लंपट है। खाओ, पीओ, मौज करो। बस, खाने ही पीने में लगा रहता है! अमरीका में लोग पांच बार भोजन करते हैं। कोई नहीं कहता लंपट हैं। कोई नहीं कहता भोगी हैं। अपने-अपने ढंग हैं। और कोई नहीं जानता किसका ढंग बिल्कुल ठीक है। अभी विज्ञान कुछ तय नहीं कर पाया। क्योंकि कुछ वैज्ञानिक कहते हैं कि उचित यही है कि थोड़ा-थोड़ा भोजन लो, कई बार लो। ताकि पेट पर ज्यादा बोझ इकट्ठा न पड़े। जब तुम दो बार भोजन करोगे, तो अमरीकी जितना पांच बार में करता है उतना तुम दो बार में करोगे। आखिर शरीर की जरूरत तो पूरी करनी पड़ेगी! इसलिए अगर तुम्हारा पेट बड़ा हो जाए और शरीर बेढंगा हो जाए, तो कुछ आश्चर्य नहीं है।
जो कबीला अफ्रीका में एक ही बार भोजन करता है, बड़ी हैरानी की बात है,
उन सबके पेट बड़े हैं। उनके पेट तो बिल्कुल ही स्वस्थ होने चाहिए, बड़े नहीं होने चाहिए।
दिगंबर जैन मुनि एक ही बार भोजन करते हैं, उनके पेट होने ही नहीं चाहिए। लेकिन उनके पेट तुम बड़े पाओगे। क्योंकि जब एक ही बार भोजन करोगे तो शरीर उतने में ही अपनी पूरी जरूरतें भर लेना चाहता है। ज्यादा भोजन कर लेगा।
पांच बार भोजन करने की गलती नहीं है कुछ। अगर थोड़ा-थोड़ा भोजन किया जाए, थोड़े-थोड़े हिस्सों में बांट कर किया जाए, तो ज्यादा उपयोगी है--ऐसा कुछ वैज्ञानिक कहते हैं। लेकिन कुछ दूसरे वैज्ञानिकों का कहना है कि दो भोजन के बीच कम से कम छह से आठ घंटे का फासला होना चाहिए, ताकि पहला भोजन पूरा पच जाए और पाचन की प्रक्रिया पर ज्यादा जोर न पड़े। अभी इस पर कुछ वे निर्णय नहीं कर पाए हैं।
मेरी अपनी दृष्टि यह है कि दोनों बातें सही हो सकती हैं। कुछ लोगों के लिए पहली बात सही, कुछ लोगों के लिए दूसरी बात सही। लोगों में भी भेद हैं। तुम अपनी तरफ देखो। तुम्हें जो ज्यादा स्वस्थ, ज्यादा शांत, ज्यादा सौमनस्य में रखे, वही ठीक है। दुनिया क्या कहती है, इसकी फिकर छोड़ो। दुनिया ने कुछ तुम्हारा ठेका नहीं लिया है। दुनिया को तुमसे क्या प्रयोजन है? तुम्हें अपने जीवन का निर्णय खुद लेना है। अगर व्यक्ति अपना निर्णय खुद ले, तो मेरी समझ यह है कि सौ में से करीब-करीब नब्बे प्रतिशत चीजें तो

ऐसी होंगी जो भूलें हैं ही नहीं। लेकिन दूसरों ने तुम्हें पकड़ा दीं कि भूलें हैं।
जैसे जैन रात्रि भोजन नहीं करते। सारी दुनिया रात्रि भोजन करती है। अगर रात्रि भोजन करने से लोग नरक जाते हैं, तो सिवाय जैनियों को छोड़ कर और कोई स्वर्ग जा नहीं सकता। और जैनी तब बड़ी मुश्किल में पड़ेंगे स्वर्ग में! क्योंकि जैनी कुछ भी तो नहीं जानते। न जूते सी सकते, न बुहारी लगा सकते, न कपड़ा बुन सकते; न लोहार का काम, न बढ़ई का काम; केवल दुकान पर बैठ कर दुकान चला सकते हैं। सो स्वर्ग में दुकानें ही दुकानें होंगी! मगर बेचोगे क्या, ख़ाक? बेचोगे किसको? खरीदेगा कौन?
इसलिए जैन-समाज को मैं धर्म तो कहता हूं, संस्कृति नहीं कहता। क्योंकि संस्कृति का अर्थ होता हैः जो सब काम करने में समर्थ हो। जूता सीएगा, वह हिंदू चमार है। कपड़ा बुनेगा, वह मुसलमान जुलाहा है। पहनेगा, वह जैन है। जो पाखाना साफ करेगा, वह हिंदू है। जो कपड़े सीएगा, वह मुसलमान है। जो चिकित्सा करेगा, वह ईसाई है। अगर जैन ही अकेले स्वर्ग जाते होंगे तो स्वर्ग में बड़ी मुश्किल खड़ी हो जाएगी। जरा जैनों को कहो कि एक बस्ती बसा कर दिखा दो--सिर्फ जैनों की--तो मैं मान लूंगा कि तुम्हारी कोई संस्कृति है। नहीं तो क्या खाक संस्कृति है! एक बस्ती सिर्फ जैनों की बसा कर दिखा दो! तब तुमको पता चल जाएगा। छठी का दूध याद आ जाएगा। क्योंकि फिर कौन वहां भंगी होगा और कौन चमार होगा और कौन दर्जी होगा और कौन तेली होगा? तब करना बैठ कर जिनेश्वर भगवान का स्मरण! वे भी उस गांव में न आएंगे।
सारी दुनिया रात्रि भोजन करती है। तो अगर कोई रात्रि भोजन कर रहा है,
तो कोई ऐसा महापाप नहीं कर रहा है कि नरक चला जाएगा! और महावीर ने जब कहा था यह...
... मैं कलकत्ते में एक मित्र के घर मेहमान था--सोहनलाल दूगड़। एक बड़े, भारत के प्रतिष्ठित बड़े से बड़े धनी जैनों में से एक थे। बड़े हिम्मतवर आदमी भी थे। तभी मुझे अपना मेहमान बना सके! क्योंकि मुझे अपने घर में निमंत्रण करना खतरे से खाली नहीं है। सारे जैनों के विरोध में भी उन्होंने कहा, कोई फिकर नहीं। मैंने उनसे एअरपोर्ट पर कहा भी कि आप मुझे ठहराते तो हैं, लेकिन आप झंझट में पड़ेंगे। उन्होंने कहा कि आप जानते हैं, मैं जुआरी हूं। सारा हिंदुस्तान जानता है कि मैं सटोरिया हूं। सट्टा मेरा धंधा है। और सब तरह के दांव लगाए, यह भी लगाऊंगा। हालांकि मुझे खबर आई है जैन मुनियों की तरफ से कि उनको घर में मत ठहराओ। पूरा घर एअर कंडिशंड था। उसमें एक मक्खी नहीं, एक मच्छर नहीं। मगर रात्रि भोजन नहीं। रात पानी भी नहीं पीते। महावीर ने जब कहा था कि रात्रि भोजन मत करो, तो बिजली नहीं थी। घरों में दीये भी नहीं थे; मिट्टी का तेल भी नहीं था; और तो और लोग अंधेरे में भोजन करते थे, जैसे अभी भी कई गांवों में करते हैं लोग, अंधेरे में ही भोजन करते हैं। अंधेरे में भोजन करोगे, मक्खी, मच्छर, झींगुर, कुछ भी गिर जाए! वह स्वास्थ्य के लिए भी बुरा है। भोजन विषाक्त भी हो सकता है। और हिंसात्मक भी है, क्योंकि उस कीड़े-मकोड़े की जान गई। तुम्हें भी हानि, उसे भी हानि। तो महावीर ने कहा था, रात्रि भोजन मत करो।
मैं तुमसे कहता हूं कि अगर महावीर अब आएं, तो जरूर कहेंगे कि जब बिजली
घर में है, बराबर भोजन कर सकते हो, कोई अड़चन नहीं है। मैं उनकी तरफ से तुमसे कहता हूंः बराबर भोजन कर सकते हो। और कभी मेरा उनसे मिलना होगा मोक्ष में तो निपट लूंगा, तुम फिकर न करो! बिजली घर में हो तो रात्रि भोजन करने में कोई भूल नहीं हुई जा रही है।
लेकिन सोहनलाल दूगड़! आदतें बड़ी मुश्किल से छूटती हैं--मुझे भोजन कराने बैठते तो पंखा झलते। मैंने उनसे कहाः एअर कंडिशंड मकान है, यहां न मक्खी, न मच्छर, यह पंखा किसलिए झल रहे हो? उन्होंने कहाः आपने भी खूब याद दिलाई! जैन मुनि आते हैं तो उनको पंखा मैं झलता हूं, किसी ने मुझसे यह कहा ही नहीं! न मैंने कभी सोचा कि यह मैं क्या कर रहा हूं? पुरानी राजस्थानी आदत!
उसी वक्त पंखा फेंक दिया। कहा कि यह बात ठीक है। अब आएं जैन मुनि! अब मैं पंखा झलने वाला नहीं हूं! हद हो गई! मगर किसी ने मुझे याद क्यों नहीं

दिलाया? यह तो इतनी सीधी-साफ बात है कि न मच्छर, न मक्खी, कुछ भी नहीं है इस घर में, पंखा किसलिए झल रहे हो? पुरानी आदतें हमें पकड़े रखती हैं। हमारा पीछा करती हैं।
ख्याल रखना, सदियों ने भी जिस बात को भी कहा हो कि गलत है, उस पर भी पुनर्विचार करना। कहीं वह आदत ही न हो गई हो!
विद्वान न्यायाधीश ने टेबल पर जोर से हाथ पटक कर घोषणा की--मुजरिम पर
छह शादियों का आरोप लगाया गया था, लेकिन पर्याप्त सबूत न मिलने के कारण अदालत मुजरिम को बाइज्जत बरी करती है। पक्ष के वकील ने प्रसन्न होकर कहाः जाओ नसरुद्दीन, अब तुम खुशी-खुशी घर जा सकते हो, तुम्हारी बीबी बेताबी से तुम्हारा इंतजार कर रही होगी। मुल्ला बोला, सत्य की सदा विजय होती है। और मैं जान कर आनंदित हुआ कि हमारे कानून, संविधान, पुलिस और अदालत सभी सत्य की सेवा में समर्पित हैं। आप लोगों ने सिद्ध कर दिया कि सत्यमेव जयते। अब कृपा कर एक बात और बता दीजिए कि मैं कौन सी बीवी के घर जाऊं? ताकि बाद में कोई कानूनी झंझट न हो।
हैं तो उनकी छह ही बीवी!
उसको कैसे भुलाओगे? वह आदत, वह पुरानी आदत।
जितनी तुम भूलें कर रहे हो, उतनी भूलें तुम नहीं कर रहे हो। उनमें से
कई तो सिर्फ मान्यताएं हैं। उन मान्यताओं को तो काट दो एकबारगी। तब बहुत थोड़ी सी भूलें बचेंगी और आसान हो जाएगा काम। नब्बे प्रतिशत भूलें कट जाएंगी। दस प्रतिशत भूलें बचेंगी और उनको सुलझाया जा सकता है। नब्बे प्रतिशत की भीड़ में उनको सुलझाना मुश्किल, उनको पता ही लगाना मुश्किल होता है कि कौन सी असली भूल है? ऐसी क्षुद्र बातें तुम्हें पकड़ाई हुई हैं कि जिनका हिसाब लगाना मुश्किल है! उन क्षुद्र बातों को भूल समझ कर तुम कितने प्रताड़ित होते हो, कितने परेशान होते हो! कोई चाय पीता तो सोचता है भूल कर रहा हूं। अब चाय जैसी निर्दोष चीज। माना कि उसमें निकोटिन है, मगर इतना कम है कि अगर तुम बारह कप चाय रोज पीओ, बीस साल तक... अब बीस साल तक बारह कप चाय, इन सबका निकोटिन अगर इकट्ठा कर लिया जाए और उसको इकट्ठा पी जाओ, तो मौत हो सकती है। यह भी कोई बात हुई! और शरीर कोई बीस साल तक चीजें इकट्ठी थोड़े ही करता रहता है! इधर पिआ, उधर गया। तुमने चाय पी, थोड़ी देर में "जीवनजल" हुआ!
इतने परेशान लोग हैं, छोटी-छोटी बातों के लिए!
मेरे पास आ जाते हैं कि क्या करें, चाय नहीं छूटती! छोड़नी ही क्यों? कुछ पाप नहीं कर रहे हो, किसी की हत्या नहीं कर रहे हो, किसी का खून नहीं पी रहे हो... खून पीते वक्त फिकर नहीं करते। अगर फंस जाए कोई तुम्हारे पंजे में, तो जैसे मकड़ी चूस ले मक्खी को, जाल में उसके आ जाए, ऐसे तुम चूस लो। उसमें फिकर नहीं करते, छान कर भी नहीं पीते। बिना ही छाने पी जाते हो खून। तो ढंग हैं खून पीने के--ब्याज; चक्रवृद्धि ब्याज। एक दफा फंस जाए कोई चक्कर में! लेकिन चाय पीने में विचार करते हो कि कहीं भूल तो नहीं हो रही है। कहीं कुछ पाप तो नहीं हो रहा है। लेकिन बौद्ध भिक्षु सारी दुनिया में चाय पीते हैं और कोई चिंता नहीं है उनको। महात्मा गांधी के आश्रम में चाय पीना वर्जित था। जैसे और कोई बड़े काम करने को नहीं बचे दुनिया में अब! बस, चाय नहीं पिओ तो काम हो जाएगा! और जिसने चाय नहीं पी, वे समझते थे, अकड़ कर चलते थे कि कुछ गजब कर लिया!
फिर चोरी भी होती थी। लोग चोरी से भी चाय पीते थे। जहां इस तरह के क्षुद्र नियम बनाओगे, वहां क्षुद्र चीजों की संभावना बढ़ जाएगी। अब लोग चाय तो पीएंगे, छिप कर पीएंगे; कमरा बंद करके, दरवाजा बंद करके चाय तैयार करेंगे। और महात्मा गांधी को जब पता चल जाता है कि किसी ने चाय पी, तो वे तीन दिन का उपवास करेंगे। आत्म-शुद्धि के लिए! चाय उसने पी, आत्म-शुद्धि वे अपनी करेंगे! अगर किसी और के चाय पीने से तुम्हारी आत्मा अशुद्ध हो रही है, तब तो आत्मा के शुद्ध होने का फिर समझो ख्याल ही छोड़ दो! इस दुनिया में क्या-क्या नहीं हो रहा है! लेकिन ठेका ले लिया जैसे। और फिर तब ऐसी बातें होंगी तो तुम्हारा जो गुरु है--जैसे महात्मा गांधी गुरु थे आश्रम के, तो

उनकी नजर महात्मा की कम और जासूस की ज्यादा हो जाएगी। स्वभावतः। हर चीज में दखलंदाजी।
विनोबा भावे रोज उठ कर हर एक कमरे में जाते हैं। ऐसे कोई जरूरत है जाने की हर कमरे में रोज देखने कि सफाई हुई कि नहीं? ऐसा नहीं, हर संडास में भी झांक कर देखते हैं कि सफाई की कि नहीं लोगों ने? तुम्हें अगर अपने आश्रमवासियों का इतना भी भरोसा नहीं है, अगर तुम्हारे आश्रमवासियों को इतनी भी तमीज नहीं है... नाम हैः "ब्रह्मज्ञान विद्या मंदिर" और संडास साफ करने की तमीज नहीं है! और विनोबा रोज चक्कर लगाते हैं और रोज देखते हैं जा- जा कर! स्वभावतः इस तरह के लोग अगर यहां आ जाएंगे तो उनको बहुत हैरानी होगी; क्योंकि मैं इस आश्रम को देखा ही नहीं! बस, सुबह यहां उठ कर आ जाता हूं, सांझ फिर यहां उठ कर आ जाता हूं। कौन किस कमरे में रहता है, इसका भी मुझे पता नहीं। अगर मुझे ढूंढने निकलना पड़े, किसी को तो मैं ढूंढ़ नहीं पाऊंगा--असंभव। इस आश्रम के मकानों में भी एक बार नहीं गया हूं। इस आश्रम के आफिस में एक बार नहीं गया हूं। प्रयोजन क्या? इतना भरोसा लोगों पर नहीं है? और लोग जो आए हैं, उनका कुछ उत्तरदायित्व है। वे अपने जीवन को रूपांतरण करने आए हैं, स्वतंत्रता की तलाश में आए हैं। यह विनोबा का आश्रम न हुआ जेलखाना हुआ। जिसमें चौबीस घंटे नजर रखी जाए। ये विनोबा न हुए, कोई हेड कांस्टेबल हुए।
लेकिन इसकी प्रशंसा की जाती है!
विनोबा के एक भक्त मुझसे आकर कह रहे थे कि विनोबा जी पूरा आश्रम रोज देखते हैं जाकर, आप देखते हैं कि नहीं? मैंने कहा कि कोई जरूरत नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति को अपनी तरफ देखना है, अपना हिसाब रखना है। जिसको जो ठीक लग रहा है, वह उसे करना है। मैं बोध देता हूं। लेकिन मैं तुम्हारे पीछे कोई लकड़ी लेकर घूमूंगा! और ऐसे कहीं बोध आया है!
तो विनोबा जब आते होंगे तब कमरे की सफाई हो जाएगी और चाय वगैरह का सामान होगा तो बिस्तर के नीचे छिपा कर रख दिया जाएगा; फिल्मी पत्रिकाएं होंगी तो गीता में दबा दी जाएंगी; और विनोबा जी गए कि असली चीजें बाहर आ जाएंगी। नहीं, उन्होंने कहा कि वे कभी-कभी आकस्मिक रूप से भी आ जाते हैं। तो मैंने कहाः यह भी ठीक है। पुलिस के ही ढंग हैं ये! कभी-कभी "रेड" करती है न पुलिस! आकस्मिक। मगर यह दृष्टि कोई सदगुरु की दृष्टि नहीं है। इसमें दूसरे पर भरोसा नहीं है, पहली तो बात। इसमें दूसरे पर शक है, संदेह है। और जिन पर तुम्हें शक है, उनसे तुम सोचते हो कि वे तुम पर श्रद्धा करेंगे! असंभव। संदेह संदेह पैदा करता है, श्रद्धा श्रद्धा पैदा करती है।
भूलें, ज्योति, जो भी तुझसे होती हों, पहले तो उन भूलों को काट डालना
जो मूढ़ों ने तुम्हें समझाई हैं कि भूलें हैं। फिर जो थोड़ी सी भूलें बचें, उनमें से प्रत्येक भूल के लिए पछतावा मत करना। कल नहीं करेंगे, ऐसा निर्णय मत लेना। जब भूल हो रही हो, तभी ध्यानपूर्वक उस भूल को करो। मैं यह भी नहीं कहता कि मत करो। क्योंकि मत करने में दमन हो जाएगा। और दमन हुआ तो फिर कभी निकलेगी। होशपूर्वक करो। जैसे क्रोध आ गया; तो क्रोध करो, लेकिन भीतर पूरे जागकर, सजग होकर कि मैं क्रोध कर रहा हूं, यह रहा क्रोध, यह क्रोध का धुआं उठ रहा है, यह मैं क्रोध में इस-इस तरह की बातें कह रहा हूं, ये क्रोध में मैंने चीजें तोड़ डालीं, पूरे होशपूर्वक करो और तुम चकित हो जाओगी-- होशपूर्वक क्रोध कर लिया एक बार, फिर दोबारा क्रोध नहीं होगा। क्योंकि होश इतनी बड़ी बात है, इतनी अदभुत कला है, ऐसी कीमिया है कि क्रोध, लोभ, मोह, सब धीरे-धीरे बिदा हो जाते हैं।
कुछ भूलें लोग अपने हाथ से पैदा करते हैं। जैसे कि उपवास कर लिया। अब
एक भूल तो उपवास करना है... हां, कभी-कभी चिकित्सक कहे कि एक दिन भोजन मत करो, तो ठीक है। चिकित्सक की सलाह पर अगर भोजन एक दिन छोड़ दो, दो दिन छोड़ दो, समझ में आता है, मगर चिकित्सक की सलाह पर--वह स्वास्थ्य के लिए। इसका कोई आध्यात्मिक मूल्य नहीं है। लेकिन पहले तो उपवास कर लिया इस आशा में कि इससे बड़ी आत्मा की प्राप्ति होगी! आत्मा वगैरह की कोई प्राप्ति नहीं होगी, उपवास किया तो दिन भर भोजन की याद आएगी। फिर चित्त में ग्लानि होगी कि मैं भी कैसा क्षुद्र कि भोजन ही भोजन की सोच रहा हूं! मैं कैसा भोजन-भट्ट! तुम

भोजन-भट्ट नहीं हो, उपवास के कारण यह भोजन की याद आ रही है। कामवासना को दबा लोगे, तो दिन-रात कामवासना सताएगी। जो भी दबाओगे, वह तुम्हारी रग-रग में समा जाएगा।
दमन की भूल मत करना।
मैं तुमसे कहता हूंः सम्यक आहार। न तो ज्यादा भोजन करना। न कम भोजन करना। जितना जरूरी है शरीर के लिए उतना भोजन देना। मैं तुमसे कहता हूं कि जीवन में सब जगह संतुलन रखना। संयम का मेरा अर्थ हैः संतुलन। संयम का अर्थ त्याग नहीं। संयम का अर्थ हैः न भोगी, न त्यागी। दोनों के ठीक मध्य में। न अति आहार, न उपवास। जितना आवश्यक है। और तुम्हारी आवश्यकता तुम्हीं तय कर सकते हो। तुम्हारी आवश्यकता कोई दूसरा तय नहीं कर सकता। प्रत्येक व्यक्ति की आवश्यकताएं भिन्न हैं। अब जो आदमी आठ घंटे खेत में मेहनत कर रहा है, वह ज्यादा भोजन करेगा। वह भोजन-भट्ट नहीं है। और जो आदमी युनिवर्सिटी में अध्यापन करता है, वह भी अगर उतना भोजन करे तो भोजन-भट्ट। अध्यापन करने वाले का भोजन कम होगा, मजदूर का भोजन ज्यादा होगा। यह बिल्कुल स्वाभाविक है। इसलिए प्रत्येक व्यक्ति को अपने निर्णय लेने की क्षमता जुटानी चाहिए। अपने मालिक बनो। संन्यास का यही अर्थ है। अपनी मालकियत अपने हाथ में लो। बहुत दिन रह चुके गुलाम औरों के, शास्त्रों के, अब अपने मालिक खुद बनो। भूल भी करनी है तो अपनी मालकियत से करो। और निंदा न करना। क्योंकि जब तुम निंदा करोगे तो जाग न सकोगे। जल्दी से निर्णय मत लेना कि यह भूल है, यह पाप है। पहले ठीक से निरीक्षण करो।
एक सूत्र स्मरण में रहे, अगर तुम होशपूर्वक किसी काम को करो और वह काम होश के कारण बंद हो जाए, तो समझना कि भूल थी। और अगर होश के बाद भी जारी रहे, तो समझना कि भूल नहीं थी।
होश ही निर्णायक है।

आखिरी प्रश्नः ओशो, मैं मोहित हूं आपके गीत से। यह गीत क्या है जो मुझे बार-बार आपके पास खींच लाता है?

सत्यानंद! यह गीत मेरा नहीं है। यह गीत परमात्मा का है। उतना ही मेरा
है जितना तुम्हारा है। उतना ही मेरा है जितना पक्षियों का है, वृक्षों का है, पहाड़ों का है। इस गीत पर मेरा कोई दावा नहीं है। निश्चित ही यह मेरा नहीं है। मैं तो गया मिट, तब यह गीत पैदा हुआ है। मैं तो रहा नहीं, तब यह गीत जन्मा है। यह मेरी मौत से उभरा है। यह मेरे शून्य से जागा है। यह शून्य की वीणा पर बज रहा है। इसे दूसरे शब्दों में कहो तो यही भगवद्गीता है। यह परमात्मा का गीत है। मेरा कंठ उसके काम आ रहा है, मैं बांसुरी हूं, पोली बांस की पोंगरी, कोई ओंठ पर रख ले तो बांसुरी हो जाए, और कोई ओंठ पर न रखे तो बस बांस की पोंगरी। गीत बांसुरी के नहीं होते, गीत तो बांसुरी-वादक के होते हैं। वह वादक अदृश्य है। बांसुरी तुम्हें दिखाई पड़ रही है। इसलिए खिंचे आते हो।
खिंचे आते रहे तो धीरे-धीरे यह गीत तुमसे भी प्रकट होगा।
मेरा प्रत्येक संन्यासी इस गीत को आज नहीं कल गाएगा। इस नृत्य को नाचेगा। यह उत्सव मेरे प्रत्येक संन्यासी के जीवन में समाविष्ट होने को है। यह सुनिश्चित है। इसकी भविष्यवाणी की जा सकती है। यह गीत सारी पृथ्वी पर गूंजेगा। इसे कोई अवरोध रोक नहीं सकेगा। सब अवरोध चुनौतियां बन जाएंगी। और तुम सौभाग्यशाली हो कि तुम्हें सुनाई पड़ गया है। क्योंकि बहुत हैं अभागे जो बहरे हैं। और बहुत हैं अभागे जो अंधे हैं।

यह गीत वो दिलकश सावन है
हो जिससे इबारत दिल की बहार
तखईल के तायर की चहकार
नाजुक से हसीं बोलों की फुहार
यह गीत वो दिलकश सावन है

यह गीत वो रंगीं दामन है
जिसमें हों भरे रूमान के फूल अश्कों के गुहर अरमान के फूल इदराक के गुल इरफान के फूल यह गीत वो रंगीं दामन है

यह गीत वो बजता झांझन है
हो जिसमें निहां इक जमजमाजार
इठलाती जवानी की रफ्तार
बदमस्त अदाओं की झंकार
यह गीत वो बजता झांझन है

कोई गा रहा है। मेरे पास आते रहे, आते रहे, आते रहे, तो धीरे-धीरे मैं दिखाई नहीं पडूंगा, वही दिखाई पड़ने लगेगा जो गा रहा है। वही दिखाई पड़ने लगेगा, जो तुम्हें बुला रहा है। जिससे तुम खिंचे चले आते हो। मेरे कारण नहीं, चुंबक उसका है। मैं तो सिर्फ निमित्त हूं, बहाना हूं। सब उसका है। "मेरा मुझमें कुछ नहीं।"

आज इतना ही।

रामदुवारे जो मरे
पांचवां प्रवचन

चरन गहो जाय साध के

गर्व न कीजे बावरे, हरि गर्वप्रहारी।
गर्वहिं ते रावन गया, पाया दुख भारी।।
जरन खुदी रघुनाथ के मन नाहिं सोहाती।
जाके जिय अभिमान है, ताकी तोरत छाती।।
गर्व न कीजे बावरे, हरि गर्वप्रहारी।
एक दया औ दीनता, ले रहिए भाई।
चरन गहो जाय साध के, रीझैं रघुराई।।
यही बड़ा उपदेस है, परद्रोह न करिए।
कह मलूक हरि सुमिरके भौसागर तरिए।।
गर्व न कीजे बावरे, हरि गर्वप्रहारी।

मन तें इतने भरम गंवावो।
चलत बिदेस बिप्र जनि पूछो, दिन का दोष न लावो।।
संझा होय करो तुम भोजन, बिनु दीपक के बारे।
जौन कहैं असुरन की बेरिया, मूढ़ दई के मारे।।
मन में इतने भरम गवांवो।
आप भले तो सबहि भलो है, बुरा न काहू कहिए।
जाके मन कछु बसै बुराई, तासों भागे रहिए।।
मन में इतने भरम गवांवो।
लोक बेद का पैंडा औरहि, इनकी कौन चलावै।
आतम मारि पषानैं पूजैं, हिरदै दया न आवै।।
मन में इतने भरम गवांवो।
रहो भरोसे एक रामके, सूरे का मत लीजै।
संकट पड़े हरज नहिं मानो, जिय का लोभ न कीजै।।
मन में इतने भरम गवांवो।
किरिया करम अचार भरम है, यही जगत का फंदा।
माया-जाल में बांधि अंडाया, क्या जानै नर अंधा।।
मन में इतने भरम गवांवो।
यह संसार बड़ा भौसागर, ताको देखि सकाना।
सरन गए तोहि अब क्या डर है, कहत मलूक दिवाना।।
मन में इतने भरम गवांवो।

तुम बसे नहीं इनमें आकर,
ये गान बहुत रोए।

बिजली बन घन में रोज हंसा करते हो,
फूलों में बन कर गंध बसा करते हो,
नीलिमा नहीं सारा तन ढक पाती है, तारा-पथ में पग-ज्योति झलक जाती है। हर तरफ चमकता यह जो रूप तुम्हारा, रह-रह उठता जगमगा जगत जो सारा, इनको समेट मन में लाकर,
ये गान बहुत रोए।

जिस पथ पर से रथ कभी निकल जाता है, कहते हैं, उस पर दीपक जल जाता है। मैं देख रहा अपनी ऊंचाई पर से,
तुम किसी रोज तो गुजरे नहीं इधर से।
अंधियाले में स्वर वृथा टेरते फिरते,

कोने-कोने में तुम्हें हेरते फिरते। पर, कहीं नहीं तुमको पाकर,
ये गान बहुत रोए।

कब तक बरसेगी ज्योति बार कर मुझको? निकलेगा रथ किस रोज पार कर मुझको? किस रोज लिए प्रज्वलित बाण आओगे,
खींचते हृदय पर रेख निकल जाओगे?
किस रोज तुम्हारी आग सीस पर लूंगा,
बाणों के आगे प्राण खोल धर दूंगा?
यह सोच विरह में अकुला कर,
ये गान बहुत रोए।

परमात्मा है जीवन की सुगंध, जीवन का सौरभ, जीवन का संगीत, जीवन का समारोह। उसके बिना सब अर्थहीन है। उसके बिना सब विषाद है। उसके बिना मृत्यु के अतिरिक्त जीवन और कुछ भी नहीं। परमात्मा ही जीवन है। शेष सब मृत्यु है। परमात्मा जीवन का ही दूसरा नाम है। और हमने उसे जाना नहीं। और हमने उसे जिआ नहीं। फिर हमारे गीत रोएं न तो और क्या करें? फिर हमारी आंखें आंसुओं से भरी न हों तो और क्या हो? और ये हमारे हृदय खाली हैं, थोथे हैं। इसीलिए तो हम भीतर देखते डरते हैं। बाहर-बाहर भटकते हैं; भरमाते हैं बहुत अपने को, उलझाते हैं बहुत अपने को, व्यस्त रखते हैं बहुत अपने को कि कहीं भीतर न झांकना पड़े। क्योंकि जब भी झांकते हैं भीतर तो सिवाय रिक्तता के हाथ और कुछ नहीं लगता।
कहते हैं बुद्धः झांको भीतर। कहते कबीर, कहते नानक, कहते मलूक, कहते हैं वे सब जिन्होंने जाना है: भीतर झांको। पर हम झांकें तो कैसे झांकें! अंधकार ही अंधकार है, अमावस ही अमावस है, चांद तो वहां कभी निकलता नहीं! चांद ऐसे निकलेगा भी नहीं। चांद के निकलने में कुछ बाधाएं हैं। कुछ बादल घिरे हैं हम पर। चांद निकले भी--निकलता भी है--तो भी हमारी आंखें उससे वंचित रह जाती हैं। हम भीतर जाते भी हैं तो भी उस अंतर्यामी को नहीं देख पाते; बीच में अवरोध है, व्यवधान है। और हमारे ही खड़े किए हुए व्यवधान हैं। कोई और उन पर्वतों को नहीं निर्मित कर गया है। इसलिए हम जिस दिन चाहेंगे, उस दिन गिर जाएंगे। लेकिन तुमने चाहा ही नहीं। तुमने तो व्यवधानों को मित्र बना रखा है। तुम तो उन्हें और सजाते हो, संवारते हो।
पहला और सबसे बड़ा व्यवधान है: अहंकार। तुम्हें पता नहीं कि तुम कौन हो। फिर भी तुम दावा किए जाते हो कि मैं हूं। बिना जाने ऐसा दावा! तुम किसको धोखा दे रहे हो? औरों को देते तो चल भी जाता, ऐसे तुम खुद ही धोखा खा रहे हो। जिसे यह भी पता नहीं कि मैं कौन हूं, वह कैसे कहे कि मैं हूं। मैं कौन हूं जानकर ही पता चलेगा कि मैं हूं। तुमने पूछा ही नहीं सार्थक प्रश्न अभी। जिज्ञासा भी तुम करते हो तो बेईमानी से भरी।
मुझसे आकर लोग पूछते हैंः सृष्टि को किसने बनाया? जैसे उन्हें कुछ लेना-देना पड़ा है! जैसे सृष्टि के बनने-बिगड़ने से उनका कोई संबंध है! मृत्यु के बाद आत्मा बचती या नहीं? अभी जीवित हो और आत्मा की खोज नहीं करते; अभी आत्मा तुममें बसी है, तब तो तलाशते नहीं, टटोलते नहीं, पूछते हो मरने के बाद आत्मा बचती या नहीं! ये प्रश्न धोखे के हैं। इनसे तुम्हें भ्रांति बनी रहती है कि तुम धार्मिक हो। रहते हो अधार्मिक और राम-नाम की चदरिया ओढ़े रहते हो और भीतर चलता है सब वही--सब वही धोखाधड़ी, सब वही पाखंड। भीतर वही विषाद। घाव ही घाव हैं तुम्हारे भीतर। जहां फूल हो सकते थे, वहां सिर्फ घाव हैं। जहां उत्सव हो सकता था, वहां केवल मातम है। और फिर तुम इतने चालबाज हो कि इसी मातम को भी धर्म बना लेते हो। मातमी सूरतों को महात्मा कहने लगते हो। उदास लोगों को, उदासीनों को संन्यासी मान लेते हो। संन्यासी तो वह है जो उसके संगीत से भर गया; संन्यासी तो वह है जिसने सुन ली उसकी बांसुरी की टेर, नाच उठा जो! राधा बनो, मीरा बनो, चैतन्य बनो, मलूक बनो, तो संन्यासी हो! पैरों में बंधें घूंघर, प्राणों में हो उत्सव, गीत

झरें तुम्हारे ओंठों से, अमृत की वर्षा हो तुम्हारे अंतर्तम में, तो संन्यासी हो!
लेकिन तुमने किसको संन्यासी कहा है अब तक?
रोते से लोग; मरे-मरे से लोग; उदास, जीर्ण-शीर्ण, मनुष्य जिन्हें कहना मुश्किल, खंडहर ही कहो ज्यादा से ज्यादा, उनकी तुम पूजा किए हो। तुम कांटों की पूजा करते रहे; फूलों को विस्मरण किया है तुमने। कारण है। कांटों से तुम्हारा तालमेल बैठता है--तुम भी कांटे हो। तुम भी विषाद से भरे हो, विषाद की भाषा समझ में आती है। तुम भी उदास हो, उदासी से तुम्हारा सेतु बन जाता है। तुम भी उत्सव-शून्य हो, तुम्हारा भी जीवन जीवन नहीं है, इसलिए मुरदों से तुम्हारी सांठ-गांठ बैठ जाती है। तुम उनकी पूजा करते हो। पूजा करो फूलों की, पूजा करो चांद-तारों की, पूजा करो इस महोत्सव की जो चारों तरफ चल रहा है! परमात्मा कोई व्यक्ति नहीं है, इस महोत्सव का नाम ही है। यह जो विराट नृत्य चल रहा है, घास की पत्तियों से लेकर विराट महासूर्यों तक जो व्याप्त है, यही परमात्मा है। इसमें तुम्हारे भी व्याप्त होने का रास्ता है। काश, तुम नाच सको! काश, तुम गा सको! लेकिन नाच ऐसा हो कि नाचने वाला मिट जाए, और गीत ऐसा हो कि गायक न बचे। फिर तुम्हारे जीवन में अवतरण होगा। फिर तुम्हारे जीवन में किरण उतरेगी। तुम मिटो तो परमात्मा तुम्हारे भीतर उतरने को अभी, तत्क्षण राजी है। कब से राजी है! कब से बाट जोहता है!

कब तक बरसेगी ज्योति बार कर मुझको,
निकलेगा रथ किस रोज पार कर मुझको?
किस रोज लिए प्रज्वलित बाण आओगे,
खींचते हृदय पर रेख निकल जाओगे?
किस रोज तुम्हारी आग सीस पर लूंगा,
बाणों के आगे प्राण खोल धर दूंगा?
यह सोच विरह में अकुला कर,
ये गान बहुत रोए।

वह धनुषबाण लिए खड़ा ही है। तुम ही छिपे हो; तुम ही सामने नहीं आते। और किसने तुम्हें छिपाया है? तुम्हारी अस्मिता ने, तुम्हारे अहंकार ने। अहंकार तुम्हारी अपनी ईजाद है, आत्मा परमात्मा की भेंट। तुम आत्मा हो, अहंकार नहीं।
अहंकार का अर्थ हैः नाम, धाम, पता-ठिकाना, रंग-रूप। अहंकार का अर्थ हैः देह, मन, हृदय। इन तीनों के पार तुम हो। वहां न देह है, न मन के विचार हैं, न हृदय की भावनाएं हैं। वहां सन्नाटा है। परम शून्य है। उस परम शून्य में पूर्ण तत्क्षण प्रवेश कर जाता है। पूर्ण को पाने की एक ही शर्त पूरी करनी है कि तुम शून्य हो जाओ।
ये मलूक के वचन उस शून्यता की तरफ ले चलने की सीढ़ियां हैं। इन वचनों
को तुम साधक की दृष्टि से देखना। एक विद्यार्थी की भांति नहीं, एक अध्येता की भांति नहीं, एक सत्य के खोजी की भांति। और दोनों में बड़ा भेद है। अगर तुम एक अध्येता की भांति इन वचनों को पढ़ोगे, तो कोरे के कोरे रह जाओगे। यह बाण तुम्हें पार न कर पाएगा। यह रथ तुम्हारे प्राणों से होकर न निकल पाएगा। ये गीत तुम्हारे रोते ही रहेंगे--परमात्मा तुममें न बस पाएगा।

तुम बसे नहीं इनमें आकर,
ये गान बहुत रोए।

बिजली बन घन में रोज हंसा करते हो,
फूलों में बन कर गंध बसा करते हो,
नीलिमा नहीं सारा तन ढंक पाती है,
तारा-पथ में पग-ज्योति झलक जाती है। हर तरफ चमकता यह जो रूप तुम्हारा

रह-रह उठता जगमगा जगत जो सारा
इनको समेट मन में लाकर,
ये गान बहुत रोए।

रोते ही रहोगे। जबकि सारा अस्तित्व हंस रहा है। कली-कली हंस रही है, कण-कण हंस रहा है। तुम भर रो रहे हो। और तुम्हारे रोने का कारण तुमने ही निर्मित कर लिया है। तुम्हीं चाहो तो इसे छोड़ दो--अभी। अहंकार को कोई धीरे- धीरे नहीं छोड़ पाता है। समझ आती है तो तत्क्षण छोड़ देता है। समझ आ गई तो अहंकार को पकड़ रखना असंभव है, क्योंकि वही तुम्हारा नरक है।
इन वचनों को एक खोजी, एक सत्यार्थी की तरह लेना, विद्यार्थी की तरह नहीं। ये वचन तुम्हारे भीतर नये-नये द्वार खोल जा सकते हैं। ये किसी पंडित के वचन नहीं हैं, एक प्रज्ञा-पुरुष के वचन हैं। एक अलमस्त के वचन हैं, जिसने पिआ है उसकी शराब को और जाना है उसके नशे को, जो मस्त हुआ है उसमें डूब कर। ये मस्ती में गाए गए गीत हैं। मत ढूंढना इनमें छंद, मत ढूंढना मात्राएं, मत ढूंढना काव्य; वह सब है, पर वह गौण है। उसमें ही मत उलझ जाना। सार गहना। छिलके मत इकट्ठे करने लग जाना।
संतों पर बड़े शोधकार्य होते हैं। हर विश्वविद्यालय में संतों पर शोधकार्य चलता है। तीन-चार वर्ष की मेहनत के बाद विद्यार्थी पीएचड़ी., डी.लिट. लेकर वापस लौट आता है--और संतत्व की बूंद भी उसे नहीं छूती। वह मात्राओं में, छंद में, शब्दों में, शब्दों के आयोजन में, इन व्यर्थ की बातों में उलझा रहता है। मलूकदास कब पैदा हुए? किस तिथि में? किस वर्ष? इसमें उसकी सारी शक्ति लग जाती है। क्या इससे प्रयोजन है! तुम कब पैदा होओगे? किस तिथि में? तुम कब अतिथि को बुलाओगे? --वह भूल ही जाता है। ये छंद तुम्हारे भीतर कब पैदा होंगे? --वह भूल ही जाता है। उसकी उत्सुकता इन वचनों से जीवन लेने की नहीं होती, इसलिए चूक जाता है।
ये वचन नहीं हैं, जलते हुए अंगारे हैं। ये मात्र वचन नहीं हैं; ये तुम्हारे जीवन को रूपांतरित कर दें, ऐसी कीमिया इनमें छिपी है। ये तुम्हें नया बना दें, नव-जन्म दे दें, ये तुम्हें शाश्वत से जुड़ा दें, ये परमात्मा का द्वार खोल दें। इस अभीप्सा से भर कर ही इन्हें समझो तो कुछ समझ में आ सकता है अन्यथा रुदन ही हाथ रहेगा।

जिस पथ पर से रथ कभी निकल जाता है,
कहते हैं, उस पर दीपक जल जाता है।

सच कहते हैं। ठीक ही कहते हैं। परमात्मा की एक किरण भी निकल जाए, उसका
रथ तुम्हारे भीतर से निकल जाए, तो दीये ही दीये जल जाते हैं। दीपावली हो जाती है। उसकी पिचकारी की एक बूंद तुम पर पड़ जाए कि रंग ही रंग बिखर जाते हैं, कि फिर फाग ही फाग है।

जिस पथ पर से रथ कभी निकल जाता है,
कहते हैं, उस पर दीपक जल जाता है।
मैं देख रहा अपनी ऊंचाई पर से,
तुम किसी रोज तो गुजरे नहीं इधर से।

वह तुम्हारा ऊंचाई पर होना ही बाधा है!

मैं देख रहा अपनी ऊंचाई पर से,
तुम किसी रोज तो गुजरे नहीं इधर से।

तुम जब तक झुकोगे नहीं तब तक वह गुजरेगा नहीं। तुम्हारे झुकने में ही उसका गुजरना है। वे दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। तुम्हारा झुकना और उसका गुजरना।

अंधियाले में स्वर वृथा टेरते फिरते,
कोने-कोने में तुम्हें हेरते फिरते।
पर, कहीं नहीं तुमको पाकर,
ये गान बहुत रोए।

टेरते फिरो। लोग बैठे हैं मालाएं लिए अपने-अपने अंधियारे में और राम-राम जप रहे हैं। जपते रहो, अंगुलियां थक जाएंगी, ओंठ थक जाएंगे, कंठ थक जाएंगे, कहीं कुछ उसका सुराग भी न मिलेगा। उसके सुराग पाने का रास्ता हैः मिटने की कला।
गर्व न कीजे बावरे, हरि गर्वप्रहारी।
पहला वचन मलूक का: अहंकार न करो। ऐ पागलो! अहंकार न करो। अहंकार को मिटाओ। वह परमात्मा की पहली शर्त है। हरि गर्वप्रहारी। उसका पहला प्रहार तुम्हारे अहंकार पर ही है। तुम झुक जाओ; उसे तोड़ देने दो तुम्हारे अहंकार को, तुम्हारे गर्व को, तुम्हारे घमंड को; उसे मिटा देने दो तुम्हारी ऊंचाइयों को। कोई बैठा है धन के शिखर पर, कोई बैठा है पद के शिखर पर, कोई बैठा है ज्ञान के शिखर पर, कोई बैठ गया है त्याग के शिखर पर--और तुम जब तक शिखर पर हो, शिखरों से वंचित रहोगे। झुको और सारे शिखर तुम्हारे हैं। शिखरों का शिखर तुम्हारा है। मालिकों का मालिक तुम्हारा है।
गर्व न कीजे बावरे, हरि गर्वप्रहारी।
यह पहली शर्त है: अहंकार नहीं। यह अहंकार ही तुम्हें विक्षिप्त बनाए हुए है। जब तक अहंकार है तब तक मनुष्य विक्षिप्त ही रहता है, खंड-खंड रहता है, टूटा-फूटा रहता है। झूठ को कितना ही जोड़ो, जुड़ नहीं पाता। कागज की नावें कहीं सागर तिर पाती हैं! और ताश के पत्तों से बनाए गए महलों में क्या निवास हो सकेगा? आएगा जरा सा हवा का झोंका और गिर जाएंगे महल। और ऐसे ही हमारे सब महल गिर जाते हैं। सब महल गिर गए हैं। ऐसे ही हमारी नावें डूबी हैं। सिकंदरों की भी; छोटों की भी, बड़ों की भी; गरीब की भी, अमीर की भी। नावें ही कागज की हैं, नावों का कोई कसूर नहीं। आश्चर्य है कि हम फिर भी उन्हीं नावों को तैराए जाते हैं, जिनको हम रोज डूबते देखते हैं। फिर भी हम उसी नाम, यश, कीर्ति, अहंकार की पूजा में संलग्न रहते हैं, जिसको हम रोज टूटते देखते हैं, रोज धूल-धूसरित होते देखते हैं। अजीब बेहोशी है! अजीब तमाशा है! न मालूम कैसा सम्मोहन है!
गर्व न कीजे बावरे, हरि गर्वप्रहारी।
गर्वहिं ते रावन गया, पाया दुख भारी।।
सारा इतिहास मनुष्य-जाति का दो ही तरह के लोगों का इतिहास है--या तो राम का या रावण का। और रावण का ही ज्यादा है। निन्यानबे प्रतिशत रावण का, एक प्रतिशत राम का। राम तो ऐसे ही समझो कि कहीं-कहीं पाद-टिप्पणियों में आ जाते हैं, इतिहास तो रावण का ही है। वह तो रावण के कारण कभी-कभी मजबूरी में राम का भी उल्लेख करना पड़ता है। तुम कहते हो तो रामायण राम की कथा को, कहना नहीं चाहिए। सारी कथा रावण की है। सारा खेल उसका है। राम तो जैसे अप्रासंगिक मालूम होते हैं। राम तो जैसे हैं या नहीं, बराबर। असली में तो रावण है।
और वही तो भेद है। रावण यानी बहुत। एक अहंकार से काम नहीं चलता उसका।
एक सिर से काम नहीं चलता उसका। दस अहंकार हैं, दस सिर हैं। और एक काटो अहंकार, एक सिर काटो कि फिर ऊग आता है। राम तो न के बराबर हैं, रावण भारी है, बहुत जगह घेरे है। राम तो शून्य हैं। इतिहास की दो धाराएं हैं, एक राम की, एक रावण की। एक अहंकार की और एक निर-अहंकार की। एक उनकी, जो समझते हैं हम कुछ हैं, और दिखा कर रहेंगे कि हम कुछ हैं। और एक उनकी, जो समझते हैं कि हम कुछ नहीं, परमात्मा ही सब कुछ है। "मेरा मुझमें कुछ नहीं;" सब उसका है। जरन खुदी रघुनाथ के मन नाहिं सोहाती।
जलन, ईर्ष्या, खुदी, अहंकार परमात्मा को जरा भी नहीं सोहाता। ऐसे झूठों का अंबार लेकर तुम उसके पास न पहुंच सकोगे। ऐसी बीमारियां लेकर तुम उसके पास न फटक सकोगे। स्वस्थ होना होगा। ये रोग छोड़ने होंगे। और रोग ही हैं, व्याधियां ही हैं, मगर कैसे पकड़े हो तुम जोर से! कभी इनसे किसी ने सुख

नहीं पाया, तुमने भी नहीं पाया--तुम्हारे भी जीवन का अनुभव है कुछ। अहंकार ने सिवाय दुख के और क्या दिया? अहंकार ने सिवाय पीड़ा, संताप के और कौन सी भेंटें तुम्हें दी हैं? लड़ाया है, कलह में डुबोया है, चिंताओं से घेरा है और जीवन का बहुमूल्य समय व्यर्थ की उलझनों में, व्यर्थ की विपदाओं में व्यतीत हो रहा है। कब जागोगे? कब तुम्हें होश आएगा?

जागो हे अविनाशी!
जागो किरणपुरुष! कुमुदासन! विधुमंडल के वासी!
जागो हे अविनाशी!

रत्न-जड़ित-पथ-चारी, जागो,
उडु-वन-वीथि-विहारी जागो,
जागो रसिक विराग-लोक के, मधुवन के संन्यासी!
जागो हे अविनाशी!

जागो शिल्पि अजर-अंबर के!
गायक महाकाल के घर के!
दिव के अमृतकंठ कवि, जागो, स्निग्ध-प्रकाश-प्रकाशी!
जागो हे अविनाशी!

विभा-सलिल का मीन करो हे!
निज में मुझको लीन करो हे!
विधु-मंडल में आज डूब जाने का मैं अभिलाषी!
जागो हे अविनाशी!

परमात्मा तुम्हारे भीतर मौजूद है उतना ही जितना बाहर मौजूद है। भीतर उससे पहले पहचान करनी होगी, तब बाहर उससे पहचान हो सकेगी। क्योंकि जो भीतर भी नहीं पहचान सकता, वह बाहर क्या खाक पहचानेगा! जाओ मंदिर, जाओ मस्जिद, जाओ गिरजा, जाओ गुरुद्वारा, खाली हाथ जाओगे, खाली हाथ लौटोगे! पंडित-पुजारियों का जाल धर्म नहीं है। धर्म कोई मंदिर, मस्जिद, गिरजे, गुरुद्वारे में आबद्ध नहीं है। तुम्हें अपने भीतर जो निकटतम है, उस तक की प्रतीति नहीं हो रही, तो तुम कैसे देख सकोगे उसे बाहर? कैसे पहचानोगे उसे वृक्षों में? कैसे पहचानोगे उसे सूरज में, चांद में, तारों में; लोगों में, पशुओं में, पक्षियों में; पत्थरों में? और जाते हो तुम पत्थर की मूर्ति के सामने आरती का थाल सजाते हो! देख सकोगे तुम पत्थर की मूर्ति में? मैं नहीं कहता हूं कि परमात्मा वहां नहीं है। क्योंकि परमात्मा पत्थर में भी है, सब पत्थरों में भी है--उनमें भी जो मूर्तियां नहीं बनी हैं। परमात्मा ही है। सारा अस्तित्व उसी से व्याप्त है। शायद यह कहना भी ठीक नहीं कि अस्तित्व उससे व्याप्त है, यही कहना उचित है कि अस्तित्व और परमात्मा पर्यायवाची हैं, एक ही बात को कहने के दो ढंग हैं।
तुम्हें पत्थर की मूर्ति में परमात्मा दिखाई पड़ सकेगा? तुम्हें अपने भीतर, जहां जीवन की सलिला बह रही है, जहां चैतन्य की ज्योति जल रही है, वहां उसकी पहचान नहीं हो पा रही! सबसे पहले अपने ही भीतर के मंदिर में उसे देखना होता है। फिर सब जगह उसके मंदिर हैं।
मुसलमान फकीर बायजीद ने कहा है, जब मैं पहली दफा काबा गया तो मुझे काबा का पत्थर दिखाई पड़ा और कुछ भी नहीं। जब दूसरी बार काबा गया, तो मुझे पत्थर का मालिक दिखाई पड़ा। और जब तीसरी बार गया, तो न पत्थर दिखाई पड़ा न मालिक दिखाई पड़ा। तब मैं बड़ा चौंका। पहली दफा पत्थर दिखाई पड़ा था; दूसरी दफा पत्थर दिखाई नहीं पड़ा था, पत्थर का मालिक दिखाई पड़ा था; तीसरी बार न पत्थर दिखाई पड़ा न पत्थर का मालिक दिखाई पड़ा। स्वभावतः बायजीद बहुत चौंका। चौंक कर घबड़ाहट में उसने आंखें बंद कर लीं--और तब वह दिखाई पड़ा जो असली में है, मालिकों का मालिक। फिर बायजीद चौथी बार काबा नहीं गया। अब क्या खाक काबा जाना है!

मंदिर जाओ, मस्जिद जाओ, काबा या काशी या कैलाश, सब व्यर्थ है। पहले अपने भीतर चलो!

जागो हे अविनाशी!

जरा नींद तोड़ो।

जागो किरणपुरुष! कुमुदासन! विधुमंडल के वासी!
जागो हे अविनाशी!

रत्न-जड़ित-पथ-चारी, जागो,
उडु-वन-वीथि-विहारी जागो,
जागो रसिक विराग-लोक के, मधुवन के संन्यासी!
जागो हे अविनाशी!

और जागरण का पहला कदम है, क्योंकि अहंकार है मूर्च्छा, इसलिए जागरण का पहला कदम हैः अहंकार छोड़ो। कहो, प्राण भर कर कहो कि मैं नहीं हूं। यही प्रार्थना है, यही ध्यान है। कहो ही मत, जानो कि मैं नहीं हूं। जानो ही मत, अनुभव करो कि मैं नहीं हूं। जरा टटोलो और तुम निश्चित जान सकोगे कि तुम नहीं हो। यह "मैं" भ्रांति है।
मैं का अर्थ हैः हम अलग हैं अस्तित्व से। जैसे किसी लहर को होश आ जाए सागर में तो वह भी समझेगी कि मैं हूं, सागर से अलग, दूसरी लहरों से अलग, ऐसे ही हम भी लहरें हैं उसके चैतन्य के सागर की। बस, इतना ही भेद है कि हमें जरा होश है, लहर को होश नहीं, लहर जरा गहरी नींद में सोई है। हम भी सोए हैं, लेकिन नींद टूटी-टूटी है। प्रभात बेला की नींद है। जब दूध वाला द्वार पर दस्तक देता है तो कुछ-कुछ सुनाई भी पड़ता है, पत्नी चाय बनाती है तो चौके से आती आवाजों की भी थोड़ी भनक पड़ती है और फिर तुम करवट लेकर, कंबल ओढ़ कर और दो क्षण को सो रहते हो। ऐसी तुम्हारी नींद है। कुछ-कुछ सुनाई पड़ता है। अगर बिल्कुल सुनाई न पड़ता होता, तो मलूक बोलते नहीं, मैं बोलता नहीं। बोलना व्यर्थ था। कुछ-कुछ सुनाई पड़ता है, नींद में ही सही, मगर पुकार आ जाती है। कुछ भनक कान में पड़ती है। उसी भनक पर भरोसा है। उसी भनक से आशा है कि शायद जग जाओ।
जागोगे तो पहली बात दिखाई पड़ेगी कि मैं अलग नहीं हूं। हम अस्तित्व से जुड़े हैं। एक हैं। सारा अस्तित्व एक है। यहां कुछ भी अलग-थलग नहीं है। उस ऐक्य का नाम ही परमात्मा है। और उस ऐक्य में ही आनंद है। उस ऐक्य में ही सत्य है। उस ऐक्य में ही अद्वैत है। वह ऐक्य ही ब्रह्मानुभव है, समाधि है, निर्वाण है, मोक्ष है, कैवल्य है।
जरन खुदी रघुनाथ के मन नाहिं सोहाती।
और अहंकार तो ईर्ष्या से भरा ही रहेगा। अहंकार का भोजन है ईर्ष्या। अहंकार तो जलता है, भुनता है, इसी में उसका प्राण ठहरा है। अहंकार सदा यही सोचता रहता है: मैं किससे बड़ा? और किसी से अपने को बड़ा पाता है तो बड़ा प्रफुल्लित होता है। छोटे बच्चे अपने बाप की कुर्सी पर चढ़ जाते हैं, कुर्सी के हत्थे पर खड़े हो जाते हैं और कहते हैंः देखो, पिता जी, मैं तुमसे बड़ा। लेकिन जिनको हम उम्र वाले कहें, वे भी बच्चों से बहुत भिन्न नहीं हैं। दिल्ली की किसी कुर्सी पर बैठ गए और तब वे कहने लगते हैं कि मैं बड़ा। मुझसे बड़ा कोई भी नहीं। ये छोटे बच्चे हैं जो कुर्सी के हत्थों पर चढ़ गए हैं। कुर्सियों के हत्थों पर चढ़ने से न छोटे बच्चे बड़े होते हैं और न दिल्ली की गद्दियों पर बैठ जाने से कोई बड़ा होता है। अगर किसी से अपने को बड़ा पाया तो अहंकार फूल जाता है, कुप्पा हो जाता है। जैसे गुब्बारे में कोई हवा भर दे। और हम गुब्बारे में हवा भरे ही चले जाते हैं, क्योंकि दूसरे गुब्बारों से हमें बड़ा दिखाई पड़ना है। बड़ी प्रतियोगिता है। तो बड़ी ईर्ष्या है। दूसरे भी उसी चेष्टा में लगे हैं।

एक महिला एक डाक्टर के यहां गई। अभी कल ही उसकी शादी हुई। कल रात ही उसने सुहागरात मनाई है। मगर होगी बड़ी दूर की सूझ रखनेवाली। कुछ लोग बड़ी दूर की सोचते हैं! उसने डाक्टर से कहा कि जरा मेरी जांच कर लीजिए, कहीं मैं गर्भवती तो नहीं हूं। डाक्टर को भी मजाक सूझा। उसने उससे कहा कि लेट! और उसके पेट पर ठीक नाभि के नीचे कलम उठा कर बिल्कुल बारीक अक्षरों में दस्तखत कर दिए। इतने बारीक कि जब तक तुम खुर्दबीन से न देखो, दिखाई भी न पड़ सके। उस महिला ने पूछाः यह आप क्या कर रहे हैं? उसने कहा कि मैं दस्तखत कर रहा हूं। उस महिला ने कहाः मेरे पेट पर दस्तखत करने से क्या फायदा? उस डाक्टर ने कहा कि घबड़ा मत, जब ये दस्तखत तुझे पढ़ाई में आने लगें, तब समझना कि गर्भवती है। जरा पेट को फूलने दे! जब अक्षर तुझे पढ़ाई में आने लगे, तब लौट आना। तब समझना कि अब मेरे पास आने का वक्त आया। अभी तू बहुत जल्दी आ गई।
छोटे-छोटे बच्चे, छोटा-छोटा अहंकार। छोटे बच्चों की बातें सुनते हो तुम!
दो बच्चे बातें कर रहे थे। एक कह रहा था कि तैराक हो, गोताखोर हो, तो कोई मेरे पिता जी जैसा। पांच-पांच, सात-सात मिनट पानी के भीतर चले जाते हैं। पता ही नहीं चलता। दूसरा बोला, यह कुछ भी नहीं! गोताखोर हो तो कोई मेरे पिता जी जैसा-- आज सात साल हो गए, जो गोता मारा है सो निकले ही नहीं। इसको कहते हैं गोताखोरी!
छोटे बच्चे अभी अहंकार लिखना शुरू कर रहे हैं--अपने ढंग से, तुतलाते ढंग से। मगर शुरू हो गई मूढ़ता की यात्रा, जो दिल्ली पर समाप्त होगी। जो किसी न किसी तरह जीवन को व्यर्थ करके रहेगी।
अगर तुम अपने से बड़े को देख लो, तो पीड़ा होती है, तो कष्ट होता है, तो चोट लगती है--भयंकर चोट लगती है। बड़ी चोट लगती है। बड़े से बड़े भी जो हैं, उनको भी चोट लगती है, अपने से बड़े को देख लें तो। और कैसे करोगे तुम इंतजाम कि हर चीज में तुम बड़े हो जाओ? इस जिंदगी में बहुआयाम हैं। हो सकता है तुम्हारे पास सबसे ज्यादा धन हो। लेकिन इससे क्या होता है? तुम्हारा नौकर भी तुमसे ज्यादा स्वस्थ हो सकता है। तो ईर्ष्या पकड़ेगी, नौकर से ईर्ष्या पकड़ जाएगी। राह चलता हुआ भिखमंगा तुमसे ज्यादा सुंदर हो सकता है--फिर क्या करोगे? अहंकार सिर धुनेगा। कोई तुमसे ज्यादा बुद्धिमान हो सकता है। नेपोलियन की ऊंचाई पांच फीट पांच इंच थी। जिंदगी भर उसे इसकी पीड़ा रही। सब कुछ उसके पास था। बड़ा सम्राट। मगर यह अड़चन उसे काटती थी। सदा काटती रही। क्योंकि उसके सिपाहियों में ऐसे लोग थे जो उससे ऊंचे थे। उसके शरीर-रक्षक कोई छह फीट ऊंचा था, कोई साढ़े छह फीट ऊंचा था। एक दिन दीवाल पर लगी घड़ी को नेपोलियन ठीक कर रहा था, उसका हाथ नहीं पहुंच रहा था दीवाल की घड़ी तक, उसके शरीर-रक्षक ने कहाः आप रुकें, मैं आपसे ऊंचा हूं, मैं ठीक किए देता हूं। नेपोलियन ने कहाः शब्द वापस लो, अन्यथा जबान कटवा दूंगा। कहो कि मैं आपसे लंबा हूं, ऊंचा नहीं। देखते हो अहंकार कैसी पीड़ा लेता है! कहो कि लंबा हूं, ऊंचा नहीं। ऊंचे तुम कैसे हो जाओगे? सिपाही ने तत्क्षण क्षमा मांगी। घाव छू गया!
लेनिन रूस का डिक्टेटर हो गया था। उसको एक अड़चन थी। रूस पृथ्वी का बड़े
से बड़ा देश है। दुनिया की एक बटा छह जमीन रूस के पास है। इससे बड़ा कोई देश नहीं--यूरोप के एक कोने से लेकर एशिया के दूसरे कोने तक फैला है। दो महाद्वीपों को घेरे हुए है। लेनिन इसका एकमात्र तानाशाह हो गया। लेकिन उसे एक अड़चन थी। और वह अड़चन यह थी कि उसका ऊपर का धड़ तो बड़ा था और पैर छोटे थे। और इससे वह इतना पीड़ित रहता था कि जिसका हिसाब नहीं। वह सभाओं में जनता से पहले पहुंच जाता था। लोग सोचते थे, कितना विनम्र है। कारण और ही था। असली कारण यह था कि वह बाद में पहुंचे तो लोगों को दिखाई पड़ते थे--उसके पैर छोटे और शरीर बड़ा। वह पहले ही पहुंच जाता था सभाओं में। सबसे पहले पहुंचता और सबसे पीछे जाता। लोग कहते, अहाह! नेता हो तो ऐसा! कैसा विनम्र! उसने कुर्सियां बनवा रखी थीं बड़ी। सामने टेबल रख कर ही बैठता था। कुर्सियां ऐसी बनवा रखी थीं जिसके कारण वह ऊंचा दिखाई पड़े। लेकिन बड़ी मुश्किल थी, उसके पैर जमीन नहीं छूते थे। अगर कोई कभी टेबल के नीचे झांक कर

पैर देख लेता तो वह नाराज हो जाता। क्योंकि उसके पैर लटके रहते हवा में। जिस आदमी ने भी कभी उसके पैर नीचे झांक कर देख लिए, उसने उसे कभी क्षमा नहीं किया।
क्या करोगे? धन हो, पद हो, प्रतिष्ठा हो, सब हो, मगर किसी न किसी मामले में तुमसे बेहतर लोग मिल जाएंगे। किसी की नाक सुंदर है, किसी की आंख सुंदर है, किसी का रंग गोरा है, किसी की देह पुष्ट है।
एक गांव में सम्राट निकलने में डरता था। निकलना पड़ता था कभी लेकिन डरता था। डरता था एक आदमी से। एक आदमी शिव जी के मंदिर के सामने मस्त पड़ा रहता था। उसका कुल काम इतना थाः दंड-बैठक लगाना और शिव जी को जो प्रसाद लोग चढ़ा जाएं, उसी को प्राप्त कर लेना। न कोई फिकर, न कोई चिंता। वह इतना मजबूत था जब भी सम्राट निकलता, वह उसके हाथी की पूंछ पकड़ कर खड़ा हो जाता। अब तुम सम्राट की सोच लो गति! हाथी आगे न बढ़ सके। अब सम्राट लगता होगा बिल्कुल बुद्धू की तरह बैठा हाथी पर। हाथी पर न बैठे हैं जैसे गधे पर बैठे हैं! और भीड़ लग जाती और लोग हंसने लगते। और महावत हांक रहा है और सम्राट नाराज हो रहा है और वह आदमी पूंछ पकड़े खड़ा है। आखिर सम्राट से न रहा गया, यह बरदाश्त के बाहर था, कुछ न कुछ करना ही पड़ेगा।
उसने एक फकीर से पूछा कि क्या करूं, क्या न करूं! इसकी वजह से मैं निकलने में डरता हूं। कभी निकलना पड़ता है काम के कारण। तो मुझे भय होता है कि वह आदमी कहीं मिल न जाए। और वह है कि पड़ा ही रहता है वहां। वह चौबीस घंटे वहां मौजूद--बीच बाजार में, बस हाथी की पूंछ पकड़ कर खड़ा हो जाता है! हाथ-पैर जोड़ने पड़ते हैं कि भाई, चलने दे। फकीर ने कहाः आप फिकर न करें। उसे आज महल बुलवाएं, मैं ठीक किए देता हूं।
उसे महल बुलवाया और कहाः सुनो, ऐसे कब तक भीख पर जीओगे? हम तुम्हें एक रुपया रोज देंगे... एक रुपया उन दिनों बहुत बड़ी बात थी। एक रुपये में आदमी तीस दिन खाता... एक छोटा सा काम है। उसने कहाः कौन सा काम? इतना कि शंकर जी का मंदिर है, उस पर रोज शाम को छह बजे दीया जला दिया करे और रोज सुबह छह बजे दीया बुझा दिया करे। बस इतना तुम्हारा काम है। और एक रुपया तुम्हें रोज मिलेगा। उसने भी सोचा, यह अच्छा है। ऐसे तो उसे खाने-पीने का चल ही रहा था, लेकिन एक रुपया और मिले तो और दूध पीएगा! एक रुपया तो रईसों को भी रोज खर्च करने को मिल जाता उन दिनों तो बहुत बड़ी बात थी। उसने कहाः ठीक; और काम कुछ खास नहीं। ये है, हम पड़े ही रहते हैं वहां, जला देंगे दीया शाम को, बुझा देंगे सुबह!
एक महीने बाद सम्राट को फकीर ने कहा कि अब निकलो। गया सम्राट। पुरानी आदतवश वह आदमी ने आकर पकड़ी पूंछ, घसिट गया। फकीर से सम्राट ने पूछा कि हुआ क्या? उस आदमी ने भी पूछा कि हुआ क्या? दूध भी पिया और इस बार तो केशर भी डाली और इस बार तो मजा ही मजा था! फकीर ने कहा कि मामला सीधा-सादा है। एक चिंता तुझे पकड़ा दी। तुझे फिकर लगी रहती थी दिन भर कि छह बजे कि नहीं? हर किसी की घड़ी में देखता था, हर किसी से पूछता था कि कितना समय हुआ? अभी घंटा- घर का छह बजा कि नहीं? क्योंकि सम्राट ने कहा था, ठीक छह बजे। मिनट भर की भी देरी न चलेगी। तो ही रुपया मिलेगा। तो ठीक छह बजे दीया जलाना है। और ठीक छह बजे सुबह बुझाना है। दंड-बैठक लगाते-लगाते बीच में रुक-रुक कर घड़ी देख लेता। जाकर ठीक छह बजे दीया बुझाना है, फिर दंड-बैठक लगाओ। वह फिकर दो समय की खा गई। घुन लग गया। महीने भर में सब अस्त-व्यस्त हो गया।
लेकिन एक साधारण गरीब आदमी एक सम्राट को पीड़ा दे सकता है।
बहादुरशाह जफर भारत का आखिरी मुगल सम्राट हुआ। उसे कविता लिखने का शौक था। और कुछ उसके अच्छे गीत भी हैं। लेकिन वे सच में उसके हैं, यह संदिग्ध है। वह रोज ही गीत लिखता था। बहुत गीत लिखे उसने। उसने एक दिन गालिब से कहा कि मिर्जा, आप कितने दिन में एक गीत लिखते हैं? गालिब ने कहाः दिनों से गीत लिखने का क्या संबंध? कभी महीनों बीत जाते; कभी साल गुजर जाती और गीत नहीं बनता है तो नहीं बनता, और कभी बनता है तो बन जाता है। अपने हाथ की बात नहीं। उसकी देन है। जब फूंक देता है स्वर तो बज जाता है। हम तो लाख कोशिश करें तो भी बात नहीं बनती। इसलिए तो मैंने कोशिश ही करनी छोड़ दी। राह देखता हूं, जब उसकी मौज होगी, आएगा मधुमास, खिलेगा फूल, खिल लेगा।

नहीं होगी उसकी मौज, तो मैं लाख घिसता रहूं कलम, चीज बनती नहीं। औरों को भले धोखा दे दूं कि यह गीत है, मगर मुझे ही नहीं रास आता। मेरे ही प्राणों को नहीं भाता।
बहादुरशाह जफर ने कहा कि मैं तो समझता था तुम महाकवि हो। तुमसे तो मैं अच्छा! अरे, मैं पाखाने में बैठे-बैठे गीत बना लेता हूं! मिर्जा गालिब ने कहाः क्षमा करें, इसीलिए आपके गीतों में पाखाने की बदबू आती है। बहादुरशाह जफर को बहुत चोट लगी। सम्राट! लेकिन मिर्जा गालिब से कुछ कह भी न सका। मगर चोट खा गया, बुरी तरह चोट खा गया। अपने मित्रों से कहा कि आज मैं बहुत दुखी हूं। मेरा बहुत अपमान हो गया। मेरे अहंकार को बहुत चोट पहुंच गई है। मैं तो सोचता था मैं महाकवि हूं और गालिब कह दे कि आपके गीतों में बदबू आती है पाखाने की!
कभी क्षमा न कर सका फिर। मन में वह पीड़ा जिंदगी भर रही उसे। लेकिन गालिब से कुछ कह भी नहीं सकता था। गालिब की बात ही और थी। ऐसे तो उर्दू ने बहुत महाकवि दिए हैं, पर गालिब बेजोड़ है। और सब छोटे-छोटे तारे हैं, गालिब तो ध्रुवतारा है। थिर है। शायद फिर कभी गालिब जैसा व्यक्ति पैदा होगा नहीं उर्दू के साहित्य में। न पीछे कोई था, न आगे कोई होगा।
कभी-कभी ऊंचाइयां ऐसी छुई जाती हैं।
मगर क्या करोगे? सब स्थितियों में तुम ऊंचे नहीं हो सकते। इसलिए अहंकार या तो तुम्हें फुलाएगा--और फूला हुआ अहंकार बहुत ही संवेदनशील हो जाता है। जरा-जरा सी बात से चोट लगने लगती है। जिस अहंकारी आदमी को तुम रोज नमस्कार करते हो, आज नमस्कार न करना सड़क पर, उसको चोट लग गई। वह चौबीस घंटे यही सोचता रहेगा, क्या मामला है? क्यों इस आदमी ने नमस्कार नहीं की?
या फिर अहंकार दूसरे को बड़ा देखता है और क्षुभित होता है। और जलता है, अग्नि में। नरक कहीं और नहीं है। नरक है तुम्हारे अहंकार में। यह हर हालत में जलाता है। और फिर तुम कितना ही फुला लो इसे, हमेशा तुमसे भी ज्यादा फूले हुए लोग मिल जाएंगे। यह दुनिया बड़ी है। इसलिए कभी न कभी तुम अड़चन में पड़ोगे।
कहते हैं कि ऊंट पहाड़ों के पास नहीं जाता। बात ठीक ही लगती है। ऊंट रहते भी रेगिस्तानों में, पहाड़ों की तरफ जाते भी नहीं। रेगिस्तानों में वे ही पहाड़ हैं। पहाड़ों के पास उनको अपनी हैसियत का पता चलेगा। लेकिन कभी न कभी तो आदमी को पहाड़ मिल ही जाएगा। और जहां पहाड़ मिला, वहीं कष्ट है। इसलिए तो तुम जीसस को क्षमा नहीं कर पाए; पहाड़ के पास ऊंट आ गए। तुम ऊंट थे। रेगिस्तान में सब ठीक था। जीसस का पहाड़, जीसस का हिमालय या सुकरात का, या बुद्ध का, या मलूक का, या कबीर का--तुम किसी को भी क्षमा नहीं कर पाए। इनकी मौजूदगी तुम्हें कष्टपूर्ण हो गई। क्योंकि तुम्हारे अहंकार को बड़ी चोट पड़ने लगी, कि मैंने तो परमात्मा अभी तक जाना नहीं और मलूकदास ने जान लिया। मैंने परमात्मा अभी तक देखा नहीं और कबीरदास ने देख लिया! यह जुलाहा! यह दो कौड़ी का आदमी, इसने परमात्मा देख लिया! तुम कैसे मानो? तुम कैसे राजी हो जाओ? तुम बदला लोगे। इसलिए तुमने संतों को सदियों-सदियों में सताया है। उस सताने के पीछे गणित है।
गणित यह है कि उनकी मौजूदगी तुम्हारे अहंकार को बहुत जला-भुना डालती है। जिन संतों से तुम अमृत ले सकते थे, उनसे तुमने अमृत न लिया। उनको देख कर तुमने अपने भीतर जहर पीआ। अदभुत हो तुम! जिनसे तुम्हारी प्यास सदा के लिए बुझ सकती थी, उनके पास से तुम और प्यासे होकर लौटे। जिनके जीवन की एक बूंद तुम्हारी तृषा को सदा के लिए शांत कर देती, उनके पास से तुम आग के अंगारे लेकर लौटे। जहां से फूलों की झोली भर लेनी थी, वहां तुमने अंगार बीने। मगर अहंकार यही करता है। अहंकार तुम्हें सब स्थिति में परमात्मा से दूर रखेगा। संतों से दूर रखेगा, सदगुरुओं से दूर रखेगा। अहंकार हमेशा चाहता है, अपने से छोटे लोगों के साथ जुड़े क्योंकि वहां उसे लगता है कि मैं पहाड़ हूं।
इसलिए तुम पसंद करते हो खुशामदी, तुम्हारी स्तुति करने वाले लोग। जो कहें कि वाह, आप, क्या कहने!

मुल्ला नसरुद्दीन एक नवाब के घर नौकरी किया। अब नवाब की नौकरी और मुल्ला नसरुद्दीन जैसा होशियार आदमी। तो नौकरी तो क्या करता था सिर्फ खुशामद करता था। उतना ही काफी था। और नवाब इतना प्रसन्न था उस पर कि सदा साथ रखता था। क्योंकि हर वक्त वह उसके अहंकार के गुब्बारे को फुलाता रहता। साथ ही भोजन करने बिठाता नवाब उसे, साथ ही कमरे में सुलाता। अहंकारी को चौबीस घंटे चाहिए। क्योंकि अहंकार में हर जगह पंक्चर हो जाते हैं। कोई चाहिए जो जल्दी से मलहम-पट्टी कर दे, पंक्चर जोड़ दे। फिर पंप मार दे। ज्यादा जलन हो जाए तो थोड़ा मक्खन लगा दे, थोड़ा शीतल कर दे, थोड़ा चंदन लेप कर दे। और नसरुद्दीन जैसा कुशल!
भोजन करने के लिए एक दिन दोनों बैठे, नई-नई भिंडियां आईं, नवाब ने कहा
कि बड़ी सुंदर बनी हैं--अपने बावर्ची को कहाः खुश हूं मैं। मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा कि भिंडी है भी चीज बहुत अदभुत! अरे, प्राचीन शास्त्रों में, जो खो चुके हैं, भिंडी को तो सब्जियों का राजा कहा है। यह तो सम्राट है सम्राट। जैसे आप मनुष्यों में, ऐसे भिंडी सब्जियों में। पृथ्वी पर अमृत समझो। अगर जीवन भर व्यक्ति भिंडी खाए, मरे ही नहीं। बावर्ची ने भी सुना। वह रोज भिंडी बनाने लगा। सातवें दिन सम्राट ने थाली फेंक दी। बावर्ची को बुलाया कि दुष्ट, क्या मेरी जान लेना है? भिंडी, भिंडी, भिंडी... एक सीमा होती है! नसरुद्दीन ने थाली अपनी और जोर से फेंक दी और बावर्ची से कहा कि तू नवाब को ही नहीं मारेगा, हमको भी मारेगा। हत्यारे कहीं के! नवाब ने कहा कि नसरुद्दीन, तुम तो कहते थे भिंडी अमृत है; और पुराने शास्त्र जो खो गए हैं, उनमें भिंडियों को सब्जियों का सम्राट कहा है। वह सब क्या हुआ? नसरुद्दीन ने कहाः मालिक, मैं आपका नौकर हूं, भिंडी का नहीं। आप दिन को दिन कहें, दिन; आप दिन को रात कहें, रात। मैं तो आपका सेवक हूं। आपकी हां मेरी हां। आपकी न मेरी न।
अहंकारी सदा अपने आसपास इस तरह के लोगों को इकट्ठा रखेगा। इसलिए तुम्हें राजनेताओं के पास चापलूस, चमचे इकट्ठे होते मिल जाएंगे। और वे ही चमचे--राजनेता बदल जाता है, चमचे वही के वही, वे दूसरे राजनेता के पीछे हो जाते हैं। अरे, वे कोई भिंडी के नौकर थोड़े ही हैं! उन्हें भिंडियों से क्या लेना? भिंडी का नाम मोरारजी देसाई हो कि भिंडी का नाम चरणसिंह हो, उन्हें क्या मतलब? वे तो कुर्सी की सेवा करते हैं। कुर्सी पर कोई भी बैठे, उसकी भी सेवा इस बहाने हो जाती है; बाकी कुर्सी की सेवा करते हैं। वे कुर्सी को मानते हैं, जो बैठे कुर्सी पर!
प्रत्येक व्यक्ति... तुम भी अपनी तरफ नजर रखना, उन लोगों से तुम बड़े प्रसन्न होते हो जो तुम्हारी खुशामद करते हैं। उनसे सावधान रहना! वे दोस्त नहीं हैं, दुश्मन हैं। दोस्त तो वह है जो तुम्हें तुम्हारी स्थिति बतलाए। इसलिए कबीर ने कहा हैः निंदक नियरे राखिए, आंगन कुटी छवाय। अपने घर के पास ही बसा लेना निंदक को। आंगन कुटी छवा देना। उसकी सेवा-सुश्रूषा करना। उसको पास ही रखना। क्योंकि वह तुम्हें याद दिलाता रहेगा तुम्हारी असलियत की। वह तुम्हारे कांटों को फूल नहीं कहेगा। भले तुम्हारे फूलों को कांटा कह दे उसमें कुछ हर्जा नहीं है फूलों को कांटा कहे तो। फूलों को कांटा कहने से फूल कांटे नहीं हो जाते। लेकिन कांटों को जो लोग फूल कहते हैं, उनकी अगर तुम मानोगे-- और अहंकार मानना चाहता है--तो कम से कम तुम्हारे लिए तो भ्रांति पैदा हो जाती है।
जरन खुदी रघुनाथ के मन नाहिं सोहाती।
जाके जिय अभिमान है, ताकि तोरत छाती।।
परमात्मा तो उसकी छाती तोड़ देगा, जिसके भीतर अभिमान है। खुदी है, फिर खुदा नहीं। खुदी जाए, तो खुदा है।
एक दया और दीनता, ले रहिए भाई।
मलूक कहते हैं। दो चीजें सीख लो। एक तोः मैं कुछ नहीं हूं; दीनता। और उसी से दूसरी चीज अपने आप निष्पन्न होती हैः दया। अहंकारी दयावान नहीं होता। अहंकारी कठोर होता है। अपने अहंकार को सिद्ध करने में उसे पाषाण हो जाना पड़ता है। निर-अहंकारी सदय हो जाता है। पिघल जाता है। प्रीतिपूर्ण हो जाता है उसका व्यवहार।

चरन गहो जाय साध के, रीझैं रघुराई।
पकड़ लो उसके चरण। तो ही तुम रिझा सकोगे परमात्मा को। और उसके चरण कौन पकड़ेगा? जो झुकने को राजी है।
यही बड़ा उपदेश है, परद्रोह न करिए।
कह मलूक हरि सुमिरके भौसागर तरिए।।
वह कहते हैं, यह परम उपदेश है। एक बात में सब बात आ गई। एक कुंजी बड़े से बड़े ताले को खोल देती है। यह छोटी कुंजी है, मगर छोटी मत समझना, क्योंकि यह बड़े से बड़े ताले को खोल देती है। मंदिरों का द्वार इससे खुल जाता है। जैसे ही तुम विनम्र बनो, परमात्मा का संदेश तुम्हें सुनाई पड़ने लगे। आंख खुलें तुम्हारी। क्योंकि अहंकार ने ही परदा डाला है। कान खुलें तुम्हारे। क्योंकि अहंकार ने ही तुम्हारे कानों में पत्थर भर दिए हैं। हृदय तुम्हारा आंदोलित होने लगे। क्योंकि अहंकार ही तुम्हें जड़ बनाए हुए है। विनम्रता पिघला दे, तुम बहने लगो, बहाव आए। और जहां बहाव है, वहां जीवन है। और जहां जीवन है, वहां परमात्मा है।

रे प्रवासी, जाग, तेरे
देश का संवाद आया

भेदमय संदेश सुन पुलकित
खगों ने चंचु खोली;
प्रेम से झुक-झुक प्रणति में पादपों की पंक्ति डोली।
दूर प्राची की तटी से
विश्व का तृण-तृण जगाता
फिर उदय की वायु का वन में सुपरिचित नाद आया।
रे प्रवासी, जाग, तेरे
देश का संवाद आया।

व्योम-सर में हो उठा विकसित अरुण आलोक-शतदल;
चिर-दुखी धरणी विभा में
हो रही आनंद-विह्ल
चूमकर प्रति रोम से सिर
पर चढ़ा वरदान प्रभु का,
रश्मि-अंजलि में पिता का स्नेह-आशीर्वाद आया।
रे प्रवासी, जाग, तेरे
देश का संवाद आया।

सिंधु-तट का आर्य भावुक
आज जग मेरे हृदय में
खोजता उद्गम विभा का
दीप्त-मुख विस्मित उदय में; उग रहा जिस क्षितिज-रेखा
से अरुण, उसके परे क्या?
एक भूला देश धूमिल
सा मुझे क्यों याद आया?
रे प्रवासी, जाग, तेरे
देश का संवाद आया।

अहंकार हटे तो तुम्हें अपने असली देश का संदेश सुनाई पड़े। तुम्हारे भीतर वेद जगे। उपनिषद उठे। गीता फूटे। कुरान गुनगुनाए। तुम सब छिपाए बैठे

हो संपदाएं! यह अहंकार सबको दबाए बैठा है। यह अहंकार की चट्टान के नीचे अमृत के झरने दबे हैं।
धर्म की यात्रा में पहला कदम हैः अपने को मिटा देना, पोंछ देना; न हो जाना। फिर शेष सब अपने आप घटित होता चला जाता है। तुम इतना करो, शेष परमात्मा करने को राजी है।
मन तें इतने भरम गंवावो।
और कितना तुम गंवा रहे हो, पता है? काश, तुम्हें पता हो तो तुम्हारी छाती धक से रह जाए, कि कितना तुम गंवा रहे हो! यह तो जब जागोगे और देखोगे तब तुम्हें पता चलेगा कि अरे, जन्मों-जन्मों कितना गंवाया! कितनी संपदा अपनी थी और हम भिखमंगे बने रहे! सारा साम्राज्य अपना था और हम कौड़ी-कौड़ी बटोरते रहे! कोहिनूरों के ढेर लगे थे भीतर और हम समुद्र के तट पर रंगीन पत्थर बीनते रहे! परमात्मा तुम्हारे भीतर मौजूद है, तुम और क्या मांगते हो! तुम और क्या चाहते हो! तुम्हारी कोई चाह, तुम्हारी कोई मांग तृप्त होने वाली नहीं है। पा भी जाओ अपनी चाह का गंतव्य, मिल भी जाए जो तुमने मांगा था, तो भी तृप्ति होने वाली नहीं है। तुम तो तृप्त केवल परमात्मा से ही हो सकते हो, निर्वाण से ही हो सकते हो; आत्मानुभव से ही हो सकते हो। उससे कम में कोई संतोष नहीं है। न कभी हुआ है, न हो सकता है।
मन तें इतने भरम गंवावो।
कितना गंवाते रहे हो! अब भी जागो! अब भी समय है! अभी भी देर नहीं हो गई है। क्योंकि फिर भी तुम गंवाते रह सकते हो जन्मों-जन्मों तक।
चलत बिदेस बिप्र जनि पूछो, दिन का दोष न लावो।
चलत बिदेस बिप्र जनि पूछो, दिन का दोष न लावो।
संझा होय करो तुम भोजन, बिनु दीपक के बारे।
जौन कहैं असुरन की बेरिया, मूढ़ दई के मारे।।
मूर्खों की भांति तुम व्यवहार कर रहे हो। तुम्हारी बुद्धि मारी गई है। परदेश जाते हो, तो पूछते हो ब्राह्मण से कि दिन ठीक है या नहीं? अरे, दिल ठीक है या नहीं, पूछो! दिन की पूछते हो! दिन तो सब उसके हैं। दिन तो सब ठीक हैं। लेकिन तुम ज्योतिषियों से क्या पूछ रहे हो? "लगन महूरत झूठ सब।" मगर तुम मूढ़ हो, इसलिए चालबाज, चालाक तुम्हें लूटने को जगह-जगह बैठे हैं। दो ज्योतिषी एक रास्ते पर रोज सुबह मिलते थे--इससे पहले कि बाजार में जाकर अपनी दुकान लगाते। एक-दूसरे को अपना हाथ दिखाते कि भई, आज धंधा कैसा चलेगा? और शुभ मुहूर्त में एक-दूसरे को चार-चार आने भेंट करते। हर्जा भी कुछ नहीं! चवन्नी उसको भी मिल जाती, चवन्नी उसको भी मिल जाती! वह उसका हाथ देख देता, वह उसका हाथ देख देता! इन ज्योतिषियों से तुम पुछवा रहे हो? ज्योतिषियों ने पक्षी बांध रखे हैं पिंजड़ों में, वे चिट्ठियां उठा-उठा कर तुम्हारा भाग्य खोल रहे हैं। दुनिया में भी खूब मजा है। राम मिलाई जोड़ी। मूरख बहुत हैं, चालबाज भी बहुत हैं।
कहते हैं कि दुनिया में सबसे सुखी परिवार वही है जिसमें पत्नी अंधी
हो और पति बहरा हो। सो पति को जो करना हो उपद्रव सो करता रहे मोहल्ले भर में। जो-जो रास रचाना हो, रचाए। जहां-जहां बांसुरी बजानी हो, बजाए। और पत्नी को जो बकना है सो बकती रहे। पति बहरा, उसे कुछ सुनाई पड़े नहीं और पत्नी है अंधी, उसे कुछ दिखाई पड़े नहीं। इसको कहते हैं: "राम मिलाई जोड़ी।" बड़ी मुश्किल से ऐसा होता है। क्योंकि राम से तुम जोड़ी मिलवाते ही नहीं। तुम तो खुद ही अपनी जोड़ी मिलाते हो या ज्योतिषी से मिलवाते हो। यह क्या ख़ाक मिलाएंगे! इनसे तुम मिलवा रहे हो जोड़ी। और सच यह है कि तुम खुद ही एक जोड़ी के हिस्से हो। तुम मूढ़ हो और ये चतुर-चालाक।
इस दुनिया में इतना शोषण चलता है धर्म के नाम पर, उसका कारण क्या है? तुम जिम्मेवार हो उतने ही जितने शोषण करने वाले जिम्मेवार हैं। तुम करवाते हो शोषण, वे करते हैं। अगर वे न करेंगे तो कोई और करेगा। तुम्हें चाहिए ही चाहिए कोई शोषण करने वाला।
चलत बिदेस बिप्र जनि पूछो, दिन का दोष न लावो।
दिन को दोष देते हो! और अगर पूछना ही हो तो किसी बिप्र को पूछो। बिप्र
का अर्थ हैः बुद्ध। बिप्र का अर्थ हैः ब्राह्मण नहीं। क्योंकि ब्राह्मण

का अर्थ भी ब्राह्मण नहीं। ब्राह्मण का अर्थ हैः ब्रह्म को जिसने जाना। ब्राह्मण के घर में जो पैदा हुआ, वह नहीं। बिप्र वह है जो प्रज्ञा को उपलब्ध हो गया। अगर पूछना ही हो तो किसी बुद्ध से पूछो। दिनों को दोष मत दो। और अगर जीवन में दुर्भाग्य ही दुर्भाग्य घटें तो समझना कहीं भीतर की मूर्छा है। जिसके कारण दुर्भाग्य घट रहे हैं। दुर्घटनाएं घट रही हैं। लेकिन आदमी में एक होशियारी है। वह हर चीज का दायित्व किसी और पर थोप देना चाहता है। भाग्य पर, असमय पर, ठीक घड़ी में घर से नहीं निकले, ठीक पैर बिस्तर के बाहर नहीं रखा, रास्ता बिल्ली काट गई, कि रास्ते पर कोई एक आंख वाले सज्जन मिल गए! अब वैसे एक आंख वाले सज्जन को मिल कर, देख कर तुम्हें खुश होना चाहिए। अद्वैत! दो आंखों की तो झंझट है। एक आंख ही हो जाए, फिर कहना क्या! जीसस का प्रसिद्ध वचन है: जिस दिन तुम्हारी दो आंखें एक आंख बन जाएंगी, उस दिन तुम्हारा सारा अंतर-लोक प्रकाश से भर जाएगा। सो धन्यभागी हो अगर कहीं एक आंख वाला कोई मिल जाए! मगर नहीं। फिर तुम कहते हो दिन भर गड़बड़ होती है। गड़बड़ करते हो तुम, गड़बड़ होती है तुम्हारे भीतर से। लेकिन दोष बाहर देने में अहंकार को सुविधा है। अहंकार दोष नहीं लेना चाहता। सब टाल देता है दूसरों पर। इस तरह अपने को बचा लेता है।
संझा होय करो तुम भोजन, बिनु दीपक के बारे।
सांझ हो जाती है, रात पड़ जाती है, और दीया भी नहीं जलाते और भोजन करते हो। ये छोटी-छोटी बातें तो सीखो। यह सवाल रात में ही भोजन करने का नहीं है, यह सवाल हैः जीवन में दीया जलाओ। चाहे भोजन करो, और चाहे उठो, बैठो, चलो; बोलो; काम करो; दुकान पर बैठो, दीया जला रहे। तुम्हारे प्रत्येक कृत्य में दीया जले। अंधेरे-अंधेरे में मत करो काम। हां, रात तो कई लोग दीया जला कर भोजन कर लेते हैं। और दिन भर? अंधेरे में ही काम में लगे रहते हैं। अंधेरे में यानी मूर्छा में। मूर्छा तोड़ो, वही दीये का जलना है। ऐसा दीपक जलाओ जो चौबीस घंटे जलता है। नींद में भी, जागरण में भी।
जौन कहैं असुरन की बेरिया, मूढ़ दई के मारे।
जो भी कहता है कि यह समय खराब, कि यह बेला असुर की, कि अपशगुन का क्षण है, कि यह मुहूर्त ठीक नहीं, उसकी बुद्धि मारी गई है। वह मूढ़ है। यह सारा समय परमात्मा का है। प्रति पल शुभ है और प्रति पल सुंदर है। तुम सुंदर हो जाओ, तुम जागरूक हो जाओ!
आप भले तो सबहि भलो है, बुरा न काहू कहिए।
इस जगत की एक अदभुत बात है। तुम वही दूसरों में देखते हो, जो तुममें पड़ा है। तुम अपनी ही छाया दूसरों में देख लेते हो। तुम अपने ही प्रतिबिंब को देख-देख कर डरते हो।
एक कुत्ता एक राजमहल में घुस गया, मैंने सुना है। उस महल में दीवालों
पर दर्पण ही दर्पण लगे थे। वह दर्पणों से ही बनाया गया महल था। कुत्ता तो बहुत घबड़ा गया। लाखों कुत्ते! कुत्ते ही कुत्ते चारों तरफ। जिधर देखे उधर कुत्ते। एकदम घिर गया। दरवाजा मालूम था जिससे भीतर आया, बाहर जाना भी हो सकता था, लेकिन इतने कुत्ते घेरे हैं तो वह इतना घबड़ा गया कि उसने होश ही खो दिया कि कहां दरवाजा है, कहां दीवाल है। और फिर भौंकने भी लगा। और जब एक कुत्ता भौंका तो सारे कुत्ते भौंके। फिर झपटा। किस-किस पर झपटे? पगला गया। सुबह उसकी लाश मिली। रात भर भौंकता रहा, लड़ता रहा, दीवालों से टकराता रहा, दर्पणों से टकराता रहा, सिर मारता रहा--और सुबह मरा हुआ पाया गया। उसके साथ ही बाकी सब कुत्ते भी दर्पणों में मर गए थे।
रामतीर्थ इसको बहुत बार दोहराते थे इस घटना को। यह घटना प्यारी है, महत्त्वपूर्ण है। यह हमारे जीवन की घटना है। यह हमारी कहानी है। तुम दूसरे को देख कर जब भौंकते हो, जरा सोच लेना! कहीं तुम्हें अपना ही दर्पण में तो प्रतिबिंब नहीं दिखाई पड़ गया?
मुल्ला नसरुद्दीन को एक दर्पण मिल गया रास्ते के किनारे। दर्पण उसने कभी देखा नहीं था। उठा कर देखा, बड़ा हैरान हुआ। कहा कि बिल्कुल पिता जी जैसे मालूम होते हैं। पिता जी को तो मरे भी समय हो गया। उसने कहाः हद्द हो गई! कभी सोचा नहीं कि बड़े मियां को फोटो उतरवाने का शौक था। पर चलो, अच्छा हुआ मिल गई। सम्हाल कर रख दूं। घर आया--और जो सभी पतियों की स्थिति है कि

पत्नियों से तुम कुछ छिपा तो नहीं सकते; वह छिपाना चाहता था कि बेटों को, पत्नी को, किसी को पता नहीं चले, नहीं तो कोई तोड़-फोड़ दे, खराब कर दे तो छिपा कर ऊपर गया, दूसरी मंजिल पर। पत्नी ने देख लिया। पत्नियां कुछ भी काम कर रही हों, पति को देखती ही रहती हैं। लोग कहते हैं कि कुछ भी तुम करो, कहीं भी तुम हो, परमात्मा देखता है। परमात्मा देखता हो या नहीं देखता हो, पत्नी देखती रहती है! घर आओ, तत्क्षण ऐसा सवाल पूछेगी कि बस तुम्हारे पैर के नीचे की जमीन खिसकी। तुम लाख तैयारी करके आओ कि यह जवाब देना है, यह जवाब देना है, इस तरह कह देंगे, इस तरह बता देंगे, मगर कुछ काम नहीं आता। देख लिया होगा पत्नी ने कोने की आंख से अच्छा, कुछ छिपा रहा है! जैसे ही नसरुद्दीन काम करने बाजार गया, पत्नी ऊपर चढ़ी, खोज लिया उसने दर्पण। देखा; कहा, अच्छा, तो अब इस कलमुंही के पीछे पड़ा है! बुढ़ापे में! आज लौटे घर तो इसको मजा चखाऊं। फोटूएं ला रहा है घर में! फोटूएं छिपा रहा है!
तुम जरा गौर से देखना। दूसरों में तुम्हें वही दिखाई पड़ जाता है जो तुम्हारे भीतर है। अगर तुम उदास हो तो चांद भी आकाश में उस रात उदास मालूम पड़ेगा। और अगर तुम प्रसन्नचित्त हो, तो अमावस भी पूर्णिमा जैसी मालूम होती है। हम अपना प्रक्षेपण करते रहते हैं। इसलिए बुद्धों के लिए सारा जगत बुद्ध हो जाता है। इसलिए जिन्होंने जाना है परमात्मा को, उनके लिए सारा जगत उसी से भर जाता है। परमात्मामय हो जाता है।

आज तक वह नजर नहीं भूली
तुमने देखा था एक बार हमें
अपने अश्कों को पी रहे हैं मगर
लोग कहते हैं बादाख्वार हमें
मय तो है मय, खुलूससे साकी! अगर मिले
हम मैकशों को जहर भी आबेहयात है
हम तीरःबख्तके नूरके पैगंबर भी हैं
ऐ "शाद!" हम पै खत्म यह तारीक रात है।

"आज तक वह नजर नहीं भूली।" एक नजर परमात्मा की तुम्हारे भीतर उतर आए, फिर भूलती नहीं, भूल सकती नहीं। फिर हर नजर में वही नजर है। तुम्हारी नजर में वह नजर है तो हर नजर में वही नजर है।

आज तक वह नजर नहीं भूली
तुमने देखा था एक बार हमें

बस, एक बार परमात्मा तुम्हें देख ले, तुम उसे देख लो, फिर हर जगह वही मिल जाएगा। जहां देखोगे वही दिखाई पड़ेगा।

अपने अश्कों को पी रहे हैं मगर

और तब एक ही पीड़ा रह जाती है, कि कैसे उसमें डूब जाएं, कैसे उसके साथ एक
हो जाएं! सब जगह दिखाई पड़ता है, लेकिन अभी भी थोड़ी दूरी रह गई है। देखने वाले की दूरी दिखाई पड़ने वाले से। दृश्य की दृष्टा से। भक्त की पीड़ा क्या है? भक्त की पीड़ा यही है। संसारी की पीड़ा हैः धन नहीं मिलता, पद नहीं मिलता। भक्त की पीड़ा क्या है? कि परमात्मा दिखाई पड़ता है, दूरी कब मिटेगी? दूरी ऐसी काटती है। इतनी सी दूरी, इंच भर दूरी। मैं और तू की दूरी काटती है। यह दूरी भी मिट जानी चाहिए। भक्त चाहता है पूरा लीन हो जाए, ताकि परमात्मा मुझमें पूरा लीन हो जाए। कोई अवरोध न बचे। कोई भेद न बचे। कोई भाव न बचे।

अपने अश्कों को पी रहे हैं मगर

तो वह आंसू पीता है--हालांकि उसके आंसू खुशी के भी आंसू हैं एक दृष्टि
से कि परमात्मा की झलक मिली। और एक तरफ से विरह के भी आंसू हैं कि झलक क्या मिली, अब डूबने की आकांक्षा भी जगी है।

लोग कहते हैं बादाख्वार हमें

हालांकि लोग कहेंगे कि यह शराबी हो गया। क्योंकि जिसको सब तरफ परमात्मा दिखाई पड़ने लगेगा और जिसके आंसुओं में भी मुस्कुराहट होगी और जिसके आंसू भी नाचते हुए होंगे और जिसके आंसुओं में प्रार्थना होगी, लोग उसे कहेंगे कि यह पियक्कड़ है। यह शराब पीए हुए है। यह होश में नहीं है। इसलिए अक्सर ज्ञानी लोगों को मदमस्त मालूम पड़े। सूफियों में तो उनको "मस्त" कहा ही जाता है। हमने भी शब्द दिया: "परमहंस।"

मै तो है मै...
शराब तो शराब है, ...
खुलूससे साकी! अगर मिले

लेकिन अगर पिलाने वाला ढंग से पिलाए, अगर असली पिलाने वाला मिल जाए...
। सूफी परमात्मा को साकी कहते हैं। और वह जो पिलाता है, वह जो आनंद की धार तुममें बरसाता है, वही शराब है।

मै तो है मै, खुलूससे साकी! अगर मिले

... अगर प्रेम से परमात्मा पिलाए...

हम मैकशों को जहर भी आबेहयात है

तो फिर हम पियक्कड़ों को जहर भी पिला दें तो भी अमृत है। जिसने उसे देख लिया, उसके लिए जहर मिट गया। अमृत ही अमृत है।

हम तीरःबख्तके नूरके पैगंबर भी हैं

और फिर जिसने उसे देख लिया, वह बांटने भी लगता है उसे, वह पैगंबर भी हो जाता है। वह उसके प्रकाश का संदेशवाहक हो जाता है।

हम तीरःबख्तके नूरके पैगंबर भी हैं
ऐ "शाद!" हम पै खत्म यह तारीक रात है

वह जो अंधेरी रात उसके लिए खत्म हो गई, उसे लगता है सारी दुनिया के लिए खत्म हो गई। उसकी अड़चन यही होती है कि लोग क्यूं अब भी अंधेरे में जिए जा रहे हैं? प्रकाश ही प्रकाश है। लोग क्यों टकरा रहे हैं? क्यों लोग गिर रहे हैं? राह साफ है और सीधी है, लोग क्यों गड्ढों में चले जा रहे हैं? उसे समझ में नहीं आता। उसे बड़ी बेचैनी होती है। उसकी आंख खुल गई तो उसे लगता है सबकी आंख खुल गई। बुद्ध ने कहा है, जिस दिन मैं बुद्ध हुआ, मेरे लिए सारा अस्तित्व बुद्ध हो गया।

बता दो आबिदाने-बे-अमलको
खुदा उकता चुका है बंदगी से
खुदा से क्या मोहब्बत कर सकेगा
जिसे नफरत है उसके आदमी से

कह दो पाखंडियों से, पुजारियों से, तथाकथित धार्मिकों से...

बता दो आबिदाने-बे-अमल को
खुदा उकता चुका है बंदगी से

तुम्हारी बंदगी से बहुत उकता चुका है। तुम्हारी बंदगी बंदगी नहीं है। तुम झुकते कहां हो? तुम्हारा अहंकार तो और भी मजबूत हो जाता है। जो आदमी मस्जिद से लौटता है, मंदिर से लौटता है, उसके अहंकार पर और धार लग जाती है, और दो हीरे जोड़ लाया। वह और अकड़ कर देखता है, वह कहता है कि तुम सब पापी हो, पुण्यात्मा मैं हूं। जिसने थोड़ा दान दे दिया, कि कुछ उपवास कर लिए, कि पर्यूषण में व्रत रख लिए, कि थोड़ी नमाज पढ़ ली, कि गीता कंठस्थ हो गई, कि रोज गायत्री का मंत्र पढ़ने लगा, उसकी अकड़ देखते हो? उसकी नाक पर अहंकार बैठा हुआ दिखाई पड़ेगा।

बता दो आबिदाने-बे-अमल को
खुदा उकता चुका है बंदगी से
खुदा से क्या मोहब्बत कर सकेगा
जिसे नफरत है उसके आदमी से

और यह सारे लोग आदमी से नफरत करते हैं। आदमी को तो नरक भेजने का इंतजाम किए हैं, आदमी को तो वे गुनहगार और पापी बता रहे हैं, आदमी की तो जितनी निंदा हो सके तुम्हारे महात्मा करते हैं। और परमात्मा का गुणगान करते हैं! यह कैसी बात है! संगीत की निंदा और संगीतज्ञ का गुणगान! यह कौन सा तर्क है? नृत्य की निंदा और नर्तक की प्रशंसा! यह कौन सा ढंग है? यह कौन सा गणित है? यह सारा अस्तित्व उसका नृत्य है, उसका गीत है।

फूल-सा रंगो-बू नहीं लेकिन
फूल-से बढ़के नर्म तीनत है
इसको नफरत से पायमाल न कर
घास भी गुलिस्तां की जीनत है

फूल तो फूल, जिसको दिखाई पड़ने लगता है, उसे घास भी फूल हो जाती है।

फूल-सा रंगो-बू नहीं लेकिन

माना कि फूल सा न रंग है, न बू है।

फूल से बढ़के नर्म तीनत है

लेकिन एक बात है कि फूल से बढ़ कर, ज्यादा कोमलता है। न होगा रंग, न होगी सुगंध, लेकिन घास की पत्तियों में वह जो लोच है, वह जो नरमी है, वह जो मखमलीपन है, वह फूलों से भी बढ़ कर है।

इसको नफरत से पायमाल न कर

इसे घृणा करके नष्ट मत कर दो।

घास भी गुलिस्तां की तीनत है

बगीचे की घास उतनी ही शोभा है, जितनी शोभा गुलाब है। गुलाब और घास में फर्क नहीं है--देखने वाले को। पापी और पुण्यात्मा में फर्क नहीं है--देखने वाले को। रात और दिन में भेद नहीं है उसे, जिसके भीतर का दीया जल गया है।
आप भले तो सबहि भलो है, बुरा न काहू कहिए।
जाके मन कछु बसै बुराई, तासों भागे रहिए।।

उससे बचो जिसके मन में निंदा है, घृणा है, अहंकार है, ईर्ष्या है, क्रोध है, लोभ है, मोह है, उससे बचो। जब तक कि तुम्हारे भीतर का परमात्मा न जग जाए। जिस दिन जग जाए, फिर किसी से बचने की कोई जरूरत नहीं है। फिर बैठो शराब-घरों में, जुआ-घरों में, तो भी कुछ हर्ज नहीं। तुम्हारे जाने से जुआघर भी मंदिर हो जाएगा। तुम्हारी मौजूदगी से शराब-घर भी मंदिर हो जाएगा। अभी तो तुम मंदिर में भी जाओ तो जुआघर बन जाता है। क्योंकि तुम अपनी हवा अपने साथ ले कर चलते हो।
लोक बेद का पैंडा औरहि, इनकी कौन चलावै।
लेकिन भीड़-भाड़ का रास्ता और ही है, उससे जरा सावधान रहना। भीड़-भाड़ का रास्ता तो भेड़ का रास्ता है, भेड़चाल है। वहां तो एक-दूसरे को पकड़े हुए अंधे चले जा रहे हैं। अंधा अंधा ठेलिया, दोनों कूप पड़ंत। सब कुएं में गिर रहे हैं, मगर अंधे अंधों को पकड़े हुए हैं। एक भेड़ गिर गई कुएं में, तो सारी भेड़ें गिर जाएंगी। जो भी उसके पीछे आ रही हैं, बस पीछे आती चली जाएंगी। लोक बेद का पैंडा औरहि...
इनका पथ अलग है।
... इनकी कौन चलावै।
आतम मारि पषानैं पूजै, हिरदै दया न आवै।
इनकी तो क्या कहो! आत्मा को मार डालते हैं और पत्थर को पूजते हैं!
... हिरदै दया न आवै।
इनके हृदय दया नहीं आती, क्योंकि अहंकार के साथ दया का फूल नहीं खिलता।
रहो भरोसे एक राम के, सूरे का मत लीजै।
अंधों से मत सीख लो!
रहो भरोसे एक राम के...
राम का ही भरोसा ले लो। यह भीड़ अंधी है, एक अर्थ में। इस वचन के दो अर्थ
हो सकते हैं। एक अर्थ कि अंधों से सलाह मत लो। यह भीड़-भाड़ अंधी है, अंधों की। इसका एक दूसरा अर्थ भी हो सकता है, कि मलूकदास जैसे, कबीरदास जैसे, अंधों का मत लो। ये भी अंधे हैं एक अर्थ में। ये दुनिया नहीं देखते, ये परमात्मा देखते हैं। दुनिया के लोग अंधे हैं, उनको दुनिया दिखाई पड़ती है, परमात्मा नहीं दिखाई पड़ता। दुनिया के लोगों के लिए परमात्मा है ही नहीं, दुनिया ही है। और कबीर, मलूक, नानक को? दुनिया नहीं है, परमात्मा ही है। ये भी एक अर्थ में अंधे हैं। अगर मत ही अंधों का लेना हो तो ऐसे अंधों का लो। रहो भरोसे एक राम के...
तो मलूक कहते हैंः अगर मेरी सुनो, मैं भी अंधा हूं, तो मेरी सलाह एक ही हैः राम के भरोसे रहो। और सब भरोसे छोड़ दो।
रहो भरोसे एक राम के, सूरे का मत लीजै।
मुझ अंधे का मत ले लो। अगर अंधों से ही रस है। अगर अंधों की ही सुनने
की आदत है, चलो, मैं अंधा सही! तुम मेरी सुनो!
संकट पड़े हरज नहिं मानो, जिय का लोभ न कीजै।
संकट आ जाए तो हर्ज मत मानना। जीवन भी गंवाना पड़े तो लोभ मत करना। क्योंकि संकट में ही आत्मा का जन्म होता है। संकट चुनौती है।

हादसाते-हयात की आंधी
हस्बे-तौफीक रास आती है
तेज करती है सोजे-अहले-कमाल
नाकिसों के दीये बुझाती है

आंधियां उठती हैं जीवन की। उनसे केवल कमजोर बुझ जाते हैं। जिनमें बल है, वे तो और प्रज्वलित हो जाते हैं।

हादसाते-हयात की आंधी
हस्बे-तौफीक रास आती है

पात्रता के अनुसार तूफान भी रास आ जाते हैं।

तेज करती है सोजे-अहले-कमाल

जिनके भीतर कुछ भी बल है, उसको और तेज कर देती है। तुम्हारे भीतर लपट है, तो उसको और गति दे देती है। देखा तुमने, जंगल में आग लगी हो और आंधी चल जाए, तो लपटें सारे जंगल में फैल जाती हैं। पूरा जंगल आग हो उठता है। लेकिन छोटे-छोटे दीये बुझ जाते हैं। वही हवा छोटे दीयों को बुझा देती है, जंगल की आग को बढ़ा देती है। जंगल की आग बनो!

तेज करती है सोजे-अहले-कमाल
नाकिसों के दीये बुझाती है

वे जो कमजोर हैं, बस उनके दीये बुझ जाते हैं। और इस दुनिया में सबसे कमजोर है अहंकारी, क्योंकि वह भ्रांति में जी रहा है। वह झूठ में जी रहा है। झूठ कमजोर है। सत्य शक्तिशाली है। झूठ को छोड़ो, झूठे भरम को छोड़ो! किरिया करम अचार भरम है, यही जगत का फंदा।
तुम क्रियाकांड में पड़े हो कि कभी करवा ली सत्यनारायण की कथा और सोचा
कि धर्म हो गया; कि कभी हो आए गंगा; कि कुंभ का मेला कर लिया; कि ह.ज की यात्रा कर आए और हाजी हो गए; कि थोड़ी सी माला फेर ली; कि नाम जप लिया, कि जपुजी पढ़ लिया--और बस, तुमने सोचा कि हो गया काम! यह ऐसे ही है जैसे अंधेरी रात में कोई बैठ कर रोशनी, रोशनी, रोशनी जपता रहे। खाक रोशनी होगी। कि बीमार आदमी बैठ कर दवा, दवा, दवा जपता रहे, स्वस्थ हो जाएगा? न भूखे का पेट भरता ऐसे; न प्यासे की प्यास बुझती ऐसे। तो जिंदगी की असली घटनाएं तुम क्रियाकांडों से हल करना चाहते हो?
किरिया करम अचार भरम है, यही जगत का फंदा।
इसी में सारा जगत फंसा हुआ है।
माया जाल में बांधि अंडाया, क्या जानै नर अंधा।
और लोग अंधे हैं।
देखते हो, दो तरह के अंधों की बात की!
माया-जाल में बांधि अंडाया...
अटक गया है मायाजाल में।
... क्या जानै नर अंधा।
यह संसार बड़ा भौसागर, ताको देखि सकाना।
मलूकदास कहते हैंः मैं तो यह देख कर ही सकपका गया था कि इतना बड़ा भवसागर! कैसे पार होगा! कागज की नावें हैं, बड़ा भवसागर है। तूफान हैं और आंधियां हैं।
यह संसार बड़ा भौसागर, ताको देखि सकाना।
सरन गए तोहि अब क्या डर है, कहत मलूक दिवाना।।
लेकिन कहते हैं: मलूक दीवाना कहता है तुमसे कि उसकी शरण क्या गया, सारा भय विदा हो गया। अब कोई डर नहीं है। क्योंकि उसकी शरण जाते ही नाव मिल गई। उसकी शरण जाते ही दूसरा किनारा मिल गया। उसकी शरण पहुंच जाओ तो मझधार भी किनारा बन जाती है। और उसकी शरण न पहुंचे तो किनारे पर भी डूबोगे। डूबना ही फिर तुम्हारा भाग्य है।

कहा जाता है मुझ से जिंदगी इनआमे-कुदरत है
सजा क्या होगी उसकी, जिसका ये इनआमे है साकी
तबस्सुम इक बड़ी दौलत है, मैं भी इसका कायल हूं
मगर ये आंसुओं का एक शीरीं नाम है साकी
लड़कपन जिद में रोता था, जवानी दिल को रोती है
न जब आराम था साकी, न अब आराम है साकी

इस जिंदगी को जरा गौर से तो देखो, कभी आराम नहीं, कभी चैन नहीं, एक क्षण
को चैन नहीं। फिर भी तुम चौंकते नहीं? बेचैन ही बेचैन हो, कांटे-ही-कांटे छिदे हैं, रास्ता कंटकाकीर्ण ही कंटकाकीर्ण है, अब डूबे, तब डूबे, फिर भी तुम चौंकते नहीं? फिर भी तुम स्मरण नहीं करते, उसकी नाव को पुकार नहीं देते, उसके हाथ का सहारा नहीं लेते?
मलूकदास तो दीवाने हैं। दीवाने हुए बिना काम नहीं चलता। दीवाना यानी परवाना। परवाने को देखा है? --नाचते हुए शमा के ऊपर मर जाते हुए? वही भक्त की भी जीवन-चर्या है। प्रभु के प्रकाश पर नाचता हुआ भक्त समाप्त कर देता है अपने को। और उसी समाप्ति से जीवन का संगीत उठता है, गीत उठता है।

ढलकते गीत में मोती,
चमकती आंख में शबनम।

तुम्हारी बांसुरी की तान में
छिप रो रहा कोई।
गुलाबी आंख अपनी
आंसुओं से धो रहा कोई।

तुम्हारे गीत में तारे
झपकते-झिलमिलाते हैं।
कमल, मानो, सरोवर में
निकलते, डूब जाते हैं।

मनाती हो चिता के पास
जैसे चांदनी मातम।
ढलकते गीत में मोती,
चमकती आंख में शबनम।

नहा कर सात रंगों में
कहीं से वेदना आई,
उदासी या किसी गम की
उषा के लोक में छाई।
कसकती वेदना ऐसे कि
जैसे प्राण हिलते हों,
किरण-सी फूटती, मानो,
तिमिर में फूल खिलते हों।

अंधेरी रात में ज्यों बज रही हो ज्योति की सरगम।
ढलकते गीत में मोती,
चमकती आंख में शबनम।

बनो परवाने! बनो दीवाने!

कसकती वेदना ऐसे कि
जैसे प्राण हिलते हों,
किरण-सी फूटती, मानो,
तिमिर में फूल खिलते हों।

अंधेरी रात में ज्यों बज रही हो ज्योति की सरगम
ढलकते गीत में मोती,
चमकती आंख में शबनम।

तुम्हारी आंखों में भी चमक हो सकती है बुद्धों की। तुम अधिकारी हो। जन्म से तुम्हारा यह हक है। गंवाओ तो तुम जिम्मेवार हो। इस हक को पाने की तैयारी करो। तुम्हारे सुर-सुर में गीत हो जाएगा। तुम्हारी श्वास-श्वास संगीत बन जाएगी। परमात्मा से जुड़ो! मगर दीवानगी चाहिए। क्यों? दुकानदारों का यह काम नहीं। वे इतना बड़ा दांव नहीं लगा सकते। यह जुआरियों का काम है।
इसलिए मैं निरंतर कहता हूं कि मेरे संन्यासी को जुआरी होने की क्षमता चाहिए, साहस चाहिए। अहंकार को दांव पर लगाना कोई छोटा-मोटा खेल नहीं है। सबसे बड़ा खेल है, उससे बड़ा फिर कोई खेल भी नहीं है। क्योंकि जिस दिन, जिस क्षण तुम इतना साहस जुटा लोगे कि कह सको कि मैं नहीं हूं, कि जान सको कि मैं नहीं हूं, कि अनुभव कर सको कि मैं नहीं हूं, कि मर जाओ स्वेच्छा से, वही संन्यास है। और उसी मृत्यु में समाधि का फूल खिलता है। तुम्हारी आंख भी ज्योति से भरेगी--बुद्धों की ज्योति। और तुम्हारे चरण भी कमलों पर होंगे-- बुद्धों के कमल। और तुम्हारे प्राण में भी सरगम उठेगा--सरगम जो त्रिभुवन को, सारे लोक को आनंद से और आलोक से आंदोलित कर देता है। इतनी बड़ी संपदा के तुम मालिक हो। मगर कैसे छोटे-छोटे भ्रम में जीवन गंवा रहे हो! "मन तें इतने भरम गंवावो।"
अब जागो! जागने की बेला आ गई। बेला तो कब की आई है, मगर तुम जागो तभी सवेरा है। तुम जब तक सोए हो, रात ही है। तुम्हारे जागने में ही सवेरा है, तुम्हारे सोने में ही रात्रि है। तुम्हारे सोने का नाम संसार है, तुम्हारे जागने का नाम मोक्ष है।

आज इतना ही।

रामदुवारे जो मरे
छठवां प्रवचन

मुरदे मुरदे लड़ि मरे

पहला प्रश्नः ओशो, कहते हैं कि अस्तित्व में कुछ भी निष्प्रयोजन नहीं है। यदि ऐसा है तो मनुष्य के जीवन में अहंकार, ईर्ष्या और घृणा का क्या प्रयोजन है? क्या इनके बिना जीवन नहीं चल सकता?

आनंद मैत्रेय! जीवन में निश्चित ही कुछ भी निष्प्रयोजन नहीं है, सिर्फ जीवन को छोड़ कर। जीवन निष्प्रयोजन है। क्योंकि जीवन के पार कुछ और नहीं है। जीवन स्वयं साध्य है। जीवन किसी और का साधन नहीं। और जीवन है पर्यायवाची परमात्मा का। इसलिए जीवन का तो कोई प्रयोजन नहीं है। लेकिन जीवन में जो कुछ है, उस सबका प्रयोजन है।
निश्चित कठिनाई होती है कुछ बातें स्वीकार करने में। अहंकार का क्या प्रयोजन होगा? और यदि अहंकार ही भटकाता है आदमी को, तो यह कैसी करुणा है परमात्मा की कि अहंकार के साथ आदमी को पैदा किया? क्यूं न काट दी जड़ पहले ही रोग की? औषधि का सवाल ही न उठता। व्याधि ही न होती। क्यों दिया लोभ, क्यों दिया मोह, क्यों दिया काम, ईर्ष्या, क्रोध, मत्सर? क्यों दिया इतना अंधकार? यदि प्रकाश की ही तलाश करवानी थी, तो प्रकाश ही क्यों न दे दिया? यह प्रश्न स्वाभाविक है, लेकिन इस प्रश्न को गहरी आंख से देखोगे तो जल्दी ही समझ में आ जाएगा कि प्रकाश सीधा-सीधा दिया नहीं जा सकता। अंधकार का अनुभव न हो तो प्रकाश का अनुभव हो ही नहीं सकता। जिसने दुख नहीं जाना, वह सुख भी नहीं जान सकेगा। और जिसे कांटे नहीं चुभे, फूलों से उसकी पहचान असंभव है। और यदि मृत्यु न हो, तो जीवन की कल्पना ही नहीं की जा सकती। क्रोध अपने आप में तो दुखदायी है, बंधन है, लेकिन क्रोध में छिपी ऊर्जा अगर ध्यान से मुक्त की जा सके तो वही ऊर्जा करुणा बनती है। क्रोध के बिना करुणा नहीं हो सकती। यह तुम देखते हो?
जैनों के चौबीस तीर्थंकर क्षत्रिय थे। बुद्ध क्षत्रिय हैं, राम और कृष्ण क्षत्रिय हैं। इस देश के सारे अवतार, तीर्थंकर, बुद्धपुरुष क्षत्रियों की दुनिया से आए हैं, जहां तलवार जीवन है। जहां क्रोध का सागर उमड़ता है। जहां युद्ध ही सब कुछ है। और इन सबने प्रेम का, करुणा का, दया का संदेश दिया।
जैनों का तो सारा आधार ही अहिंसा है। चौबीस क्षत्रिय तीर्थंकर और "अहिंसा परमो धर्मः।" कुछ तालमेल नहीं दिखाई पड़ता। ब्राह्मण कहते "अहिंसा परमो धर्मः", समझ में आता। लेकिन ब्राह्मणों ने नहीं कहा। कहा क्षत्रियों ने। गहरे देखोगे तो बात उलझी हुई नहीं है। क्षत्रिय ही कह सकते हैं। क्योंकि क्षत्रियों ने ही हिंसा की वीभत्सता देखी है। क्षत्रियों ने ही हिंसा का दंश सहा है। क्षत्रियों ने ही हिंसा का नरक पहचाना है। इसलिए अहिंसा परमो धर्मः। क्षत्रियों के प्राणों से ही यह उदघोष उठ सकता है। ब्राह्मण ने न युद्ध देखा, न तलवार उठाई, उसे कैसे पता चले अहिंसा के अमृत का? जहर से ही पहचान नहीं हुई तो अमृत से कैसे पहचान हो? रात ही नहीं अनुभव में आई तो सुबह कैसे हो?
जैनों के पास सर्वाधिक धन है। जैन भिखारी खोजना मुश्किल है। जैन भिखारी जैसी कोई चीज होती ही नहीं। और जैनों की आधारशिला में जो पांच तत्त्व हैं, उनमें अहिंसा के साथ-साथ अपरिग्रह--किसी भी वस्तु का परिग्रह न करना, किसी वस्तु के मालिक न होना। जिनके पास परिग्रह है, जिनके पास सब कुछ है, उन्हीं को यह बोध पैदा हो सकता है। सब कुछ को देख कर ही पता चलता है उसकी व्यर्थता; तो अपरिग्रह का भाव उठता है। जिन्होंने भोगा है, वे ही त्याग सकते हैं। "तेन त्यक्तेन भुंजीथाः।" उन्होंने ही त्यागा जिन्होंने भोगा। जिसने भोगा ही नहीं, वह त्यागेगा क्या ख़ाक! उसके पास त्यागने को क्या है?
इस द्वंद्व को ठीक से समझ लो। इस द्वंद्वात्मक विकास के सिद्धांत को ठीक से समझ लो। फिर बहुत सी उलझनें नहीं उठेंगी। तब तुम्हें समझ में आएगा

कि जब तक मछली को सागर से निकाल कर तट की उत्तप्त रेती पर न डाल दिया जाए, तब तक उसे सागर की पहचान नहीं होती। मछुआ खींच लेता है मछली को जाल में बांध कर, डाल देता है तट पर, धूप है घनी, आग है बरसती, उत्तप्त है तट, मछली तड़फती। इस तड़फन में ही उसे पहली दफा याद आती है सागर की। पहली दफा सचेष्ट रूप से, सचेतन रूप से सागर से परिचय होता है। ऐसे सागर में ही पैदा हुई थी, सागर में ही बड़ी हुई थी, सागर में ही रही थी, मगर सागर इतना करीब था कि सागर को देखने का उपाय न था। जरा दूरी चाहिए। थोड़ा परिप्रेक्ष्य चाहिए। थोड़ा फासला चाहिए। अगर दर्पण में तुम्हें अपनी तस्वीर देखनी है, तो थोड़े दूर खड़े होते हो। एकदम दर्पण से नाक लगा कर खड़े हो गए तो तुम्हें कुछ भी दिखाई न पड़ेगा। फासला आवश्यक है बोध के लिए। हां, अब इस मछली को वापस जल में पटक दो। अब यह आह्लादित होगी। आनंदित होगी। मस्त हो जाएगी।
एक आदमी के पास बहुत धन था--इतना कि अब और धन पाने से कुछ सार नहीं था। जितना था, उसका भी उपयोग नहीं हो रहा था। मौत करीब आने लगी थी। न बेटे थे, न बेटियां थीं, कोई पीछे न था। और जीवन धन बटोरने में बीत गया। गया वह तथाकथित महात्माओं के पास, कि मुझे कुछ आनंद का सूत्र दो। महात्मा, पंडित, पुरोहित, सब के द्वार खटखटाए। खाली हाथ गया, खाली हाथ लौटा। फिर किसी ने कहा कि एक सूफी फकीर को हम जानते हैं, शायद वही कुछ कर सके। उसके ढंग जरूर अनूठे हैं; इसलिए चौंकना मत। उसके रास्ते उसके निजी हैं; उसकी समझाने की विधियां भी थोड़ी बेढब होती हैं। मगर अगर और कोई न समझा सके, तो जिनका कहीं कोई इलाज नहीं है, उस तरह के लोगों को हम वहां भेज देते हैं। रहा होगा फकीर मेरे जैसा। जिनका कहीं कोई इलाज नहीं, उनके लिए सुनिश्चित यहां उपाय है। उस धनी ने एक बड़ी झोली भरी हीरे-जवाहरातों से और गया फकीर के पास। फकीर बैठा था एक झाड़ के नीचे। पटक दी उसने झोली उसके सामने और कहा कि इतने हीरे- जवाहरात मेरे पास हैं, मगर सुख का कण भी मेरे पास नहीं। मैं कैसे सुखी होऊं?
फकीर ने आव देखा न ताव, उठाई झोली और भागा! वह आदमी तो एक क्षण समझ ही नहीं पाया कि यह क्या हो रहा है। महात्मागण ऐसा नहीं करते! एक क्षण तो ठिठका रहा, अवाक! फिर उसे होश आया कि इस आदमी ने तो लूट लिया, मारे गए, सारी जिंदगी की कमाई ले भागा। हम सुख की तलाश में आए थे, और दुखी हो गए। भागा, चिल्लाया कि लुट गया, बचाओ! चोर है, बेईमान है, भागा जा रहा है!
पूरे गांव में उस फकीर ने चक्कर लगवाया। फकीर का गांव तो जाना-माना था, गली-कूंचे से पहचान थी, इधर से निकले, उधर से निकल जाए। भीड़ भी पीछे हो ली--भीड़ तो फकीर को जानती थी! कि जरूर होगी कोई विधि! गांव तो फकीर से परिचित था, उसके ढंगों से परिचित था। धीरे-धीरे आश्वस्त हो गया था कि वह जो भी करे, वह चाहे कितना बेबूझ मालूम पड़े, भीतर कुछ रा.ज होता है। लेकिन उस आदमी को तो कुछ पता नहीं था। वह पसीना-पसीना, कभी भागा भी नहीं था जिंदगी में इतना, थका-मांदा, फकीर उसे भगाता हुआ, दौड़ाता हुआ, पसीने से लथपथ करता हुआ वापस अपने झाड़ के पास लौट आया--जहां उसका घोड़ा खड़ा था, लाकर उसने थैली वहीं पटक दी, झाड़ के पीछे छिप कर खड़ा हो गया। वह आदमी लौटा; झोला पड़ा था, घोड़ा खड़ा था; उसने झोला उठा कर छाती से लगा लिया और कहा कि हे परवरदिगार! हे परमात्मा! तेरा शुक्र है! तेरा धन्यवाद! आज मुझ जैसा प्रसन्न इस दुनिया में कोई भी नहीं! फकीर झांका वृक्ष के उस तरफ से और बोला, कहा: कुछ सुख मिला? यही रा.ज है। यही झोली तुम्हारे पास थी, इसी को लिए तुम फिर रहे थे, और सुख का कोई पता नहीं था। यही झोली वापस तुम्हारे हाथ में है, लेकिन बीच में फासला हो गया, थोड़ी देर को झोली तुम्हारे हाथ में न थी, थोड़ी देर को झोली से तुम वंचित हो गए थे, अब तुम कह रहे हो--शर्म नहीं आती? --कि हे प्रभु, धन्यवाद तेरा कि आज मैं आह्लादित हूं, आज पहली दफा आनंद की थोड़ी झलक मिली। अब बैठो घोड़े पर और भाग जाओ, नहीं तो मैं झोली फिर छीन लूंगा। रास्ते पर लगो! रास्ता तुम्हें मैंने बता दिया।
लोग ऐसे हैं। लोग ही नहीं, सारा अस्तित्व ऐसा है। हम जिसे गंवाते हैं, उसका मूल्य पता चलता है। जब तक गंवाते नहीं तब तक मूल्य पता नहीं चलता। जो तुम्हें मिला है, उसकी तुम्हें दो कौड़ी कीमत नहीं है। जो खो गया, उसके लिए तुम रोते हो। जो खो गया, उसका अभाव खलता है। जिंदगी तुम्हें मिली है और

तुमने परमात्मा को धन्यवाद नहीं दिया। हालांकि जब मौत तुम्हारे द्वार पर दस्तक देगी, तब तुम कहोगेः हे प्रभु, बस, घड़ी दो घड़ी और जी लेने दे। चौबीस घंटे और दे दे। अस्सी साल में धन्यवाद न दिया था! शायद अस्सी साल में बहुत बार शिकायत जरूर की थी कि हे प्रभु, यह क्या जीवन दिया? किसलिए दिया? अस्सी साल में शायद अनेक बार सोचा होगा आत्महत्या कर लूं।
एक लकड़हारा लौट रहा है लकड़ियों का बोझ लिए। बूढ़ा हो गया, सत्तर साल का
हो गया, गरीब है, अब भी लकड़ी काटनी पड़ती है, बेचनी पड़ती है। तभी एक जून रोटी मिल पाती है। कई बार कह चुका है आकाश की तरफ हाथ उठा कर हे मौत! हे मृत्यु के देवता! तुम जवानों को उठा लेते हो, बच्चों को उठा लेते हो, मेरे देखते- देखते मेरे पीछे आए लोग जा चुके, आखिर मेरा क्या कसूर है, मुझे भी उठा लो! थक गया हूं, बहुत थक गया हूं!
उस दिन भी बोझ भारी था, दो दिन का भूखा भी था। क्योंकि दो दिन पानी गिरता रहा और लकड़ी न काट सका। रास्ते में फिर वही बात उठी कि हे मौत के देवता! कब उठाओगे? कितनी देर और है? कितना सताओगे? संयोग की बात, मौत करीब से गुजर रही थी, उसने सुन लिया। मौत सामने खड़ी हो गई। वह इतने क्रोध में था जीवन के प्रति कि गट्ठर को जमीन पर पटक कर बिल्कुल उदास बैठा हुआ था वृक्ष के नीचे। मौत सामने खड़ी हो गई, उसने कहाः मैं रहा, मुझे तुम पुकारते हो, मैं हूं मृत्यु का देवता, बोलो क्या चाहते हो? अब बूढ़े को होश आया कि यह हम क्या मांग बैठे! लोग होश में थोड़े ही हैं! उनकी सब मांगें पूरी हो जाएं तो मुश्किल में पड़ जाएं। वह तो मांगें पूरी नहीं होतीं। परमात्मा सुनता ही नहीं। क्योंकि सुन ले तुम्हारी तो तुम मुश्किल में पड़ जाओ। फिर तुम परमात्मा की जान खाओ कि मेरी सुनी क्यों? अरे, हम तो यूं ही कह रहे थे! इतना बुरा मानने की क्या बात थी! इतनी शीघ्रता से निर्णय लेने को थोड़े ही कहा था! अरे, बात की बात थी, कुछ करने का थोड़े ही था!
बूढ़ा एकदम चौंका। सोचा न था कि मौत सामने खड़ी हो जाएगी। होशियार आदमी, सत्तर साल का अनुभव, जल्दी से तरकीब निकाल ली। उसने कहा कि धन्यवाद, बहुत-बहुत धन्यवाद! असल बात यह है कि मेरा गट्ठर गिर गया और यहां कोई उठाने वाला दिखाई पड़ता नहीं। उठाकर मेरा गट्ठर मेरे सिर पर रखवा दो, बस इतना ही। और दुबारा फिर आने की अब कोई जरूरत नहीं है। और अब कभी न पुकारूंगा। इस भूल के लिए क्षमा करो। गट्ठर सिर पर रख कर फिर चल पड़ा। लेकिन अब बड़ा प्रसन्न है, उसके पैरों में बड़ी गति है। होठों पर गुनगुन है। हृदय में गान है, कि बचे! लौट कर बुद्धू घर को आए, जान बची और लाखों पाए! ऐसा खुश सत्तर साल में वह कभी भी न था।
जीवन का यह द्वंद्व समझो। जब मौत तुम्हारे द्वार पर खड़ी होगी, तब तुम्हें जीवन का मूल्य समझ में आएगा। काश, तुम समझदार हो तो अभी समझ में आ सकता है। मगर उतनी समझ के लिए बुद्धत्व चाहिए। उतनी समझ के लिए समाधि की प्रज्ञा चाहिए। फिर मछली को सागर से बाहर निकलने की जरूरत नहीं, सागर में ही सागर का धन्यवाद होगा। फिर झोली छीननी न पड़ेगी किसी को।
लेकिन इतनी समझ न हो तो झकझोरे देने पड़ते हैं, धक्के देने पड़ते हैं, बामुश्किल समझ में आता है।
तुम पूछते हो कि अस्तित्व में कुछ भी निष्प्रयोजन नहीं, कहते हैं। यदि ऐसा है तो मनुष्य के जीवन में अहंकार, ईर्ष्या और घृणा का क्या प्रयोजन है?
अहंकार है परमात्मा से फासला। और कुछ भी नहीं। मैं हूं, इस भ्रांति में तुम पड़े कि परमात्मा दिखाई पड़ना बंद हो जाता है। अहंकार पीड़ा देता है। क्योंकि तुम अस्तित्व से टूट जाते हो। और सारा आनंद अस्तित्व के साथ लयबद्ध होने में है, छंदबद्ध होने में है। अस्तित्व के महासंगीत में जब तुम भी एक कड़ी होते हो, एक स्वर बनते हो; जब अस्तित्व के महासागर में तुम भी एक लय होते हो, एक तरंग होते हो, भिन्न नहीं, विपरीत नहीं; जब तुम अस्तित्व के साथ रास में होते हो, महारास, नाचते हो; जब तुम में और अस्तित्व में कोई इंच भर विरोध नहीं होता, संघर्ष नहीं होता, द्वंद्व नहीं होता; जब तालमेल इतना गहरा होता है कि तुम हो, इसका पता ही नहीं चलता, परमात्मा ही है, बस इसका ही पता चलता है; वही है, उसका ही विस्तार है; मुझ में भी वही फैला है,

औरों में भी वही फैला है, जब इसकी प्रतीति होती है, तो आनंद की वर्षा हो जाती है, अमृत के झरने फूट पड़ते हैं। मगर उसके पहले अहंकार की पीड़ा झेलनी जरूरी है। उसके पहले टूटना जरूरी है। अपने घर आने के पहले अपने घर से भटक जाना जरूरी है। ये बातें विरोधी मालूम पड़ेंगी मगर वस्तुतः विरोधी नहीं हैं।
जीसस ने कहा हैः धन्य हैं वे जो छोटे बच्चों की भांति हैं, क्योंकि प्रभु का राज्य उन्हीं का है। लेकिन छोटे बच्चे? सभी तो छोटे बच्चों की भांति पैदा होते हैं। छोटे बच्चों को तो कोई प्रभु का राज्य मिला हुआ मालूम नहीं होता। छोटे बच्चे तो जल्दी-जल्दी बड़े होना चाहते हैं। शीघ्रता से बड़े होना चाहते हैं। और जीसस कहते हैंः धन्य हैं वे जो छोटे बच्चों की भांति हैं! वचन का ख्याल रखना। छोटे बच्चे नहीं कह रहे हैं जीसस, छोटे बच्चों की भांति। इस भांति में सारा रहस्य छिपा है। छोटे बच्चे नहीं हैं जो, हैं तो बड़े, उम्र तो बहुत हो गई है, बूढ़े हैं, लेकिन छोटे बच्चों की भांति पुनः हो गए हैं। फिर लौट कर वर्तुल पूरा हो गया है। जब पैदा हुए थे जैसे निर्दोष, अब मरती घड़ी में फिर वैसे निर्दोष हो गए हैं। वे प्रभु के राज्य में प्रवेश पा जाएंगे। पा ही गए। यह अस्तित्व उनके लिए प्रभु का राज्य ही बन जाता है।
बचपन को फिर से पाना पड़ता है--एक बार खोकर। बच्चे सभी निर्दोष होते हैं। लेकिन निर्दोषता जाएगी, कपट आएगा, चालबाजी आएगी, चालाकी आएगी, बेईमानी आएगी, पाखंड आएगा, सब उपद्रव खड़े होंगे, पूरे नरक से गुजरना होगा। उससे गुजर कर ही निखार है। जैसे स्वर्ण निखरता है आग से गुजर कर। ऐसे ही हम निखरते हैं अहंकार से निकल कर। हां, सोने को आग में ही मत पड़े रहने देना। नहीं तो निखर कर भी क्या सार होगा। जब सोना निखर जाए, कूड़ा-कचरा जल जाए, तो निकाल लेना सोने को बाहर। अहंकार आग है, प्रज्वलित अग्नि है, धू-धू कर जल रहे हो तुम एक चिता की भांति। न तो पूरे जल पाते हो, कि पूरे जल जाओ, कि शून्य हो जाओ तो परमात्मा मिल जाए, न पूरे बुझ पाते हो, कि पूरे बुझ जाओ तो कम से कम प्राकृतिक हो जाओ। धुंधुआते हो। न पूरे जलते, न पूरे बुझते, बस धुआं-धुआं होते हो।
बीच में अटके हो, त्रिशंकु हो गए हो, वही अड़चन है, वही पीड़ा है।
या तो गिरकर पशु हो जाओ, तो प्राकृतिक हो जाओगे। बहुत लोग वह उपाय करते हैं। हालांकि वह उपाय क्षणभंगुर है। क्योंकि जीवन का एक महानियम हैः जो पा लिया गया, उसे तुम खो नहीं सकते। जो जान लिया गया, उसे अनजाना नहीं किया जा सकता। जो अनुभव में आ गया, उसे पोंछा नहीं जा सकता। हां, उसके पार जा सकते हो, पीछे नहीं लौट सकते। समय की धार में पीछे लौटने का उपाय ही नहीं। हालांकि कोशिश करते हैं लोग, अथक कोशिश करते हैं लोग। शराब पीनेवाला क्या कर रहा है? वह यही कर रहा है कि वह जो थोड़ा सा बोध उसके भीतर पैदा हुआ है, शराब पी कर उस बोध को भी भुला दे। शराब पी कर उतना सा बोध है वह भी डूब जाए, ताकि वह ठीक पशु जैसा हो जाए।
तुमने ख्याल किया? शराबी मस्त-मौला मालूम होता है। ऐसा लगता है जैसे आनंदित है। बस लगता है, भीतर सारे दुख का अंबार है। ऊपर से शराब ने थोड़ी सी देर को मूर्छा दे दी है; सुबह होगी, मूर्छा टूट जाएगी। और अपने को और भी दुख के गड्ढे में गहरा पाएगा। और भी अंधकार की गर्तों में उतर जाएगा। क्योंकि चिंताएं जब वह शराब पी कर बेहोश पड़ा था तब उसके भीतर बढ़ रही थीं, बड़ी हो रही थीं, फैल रही थीं। जैसे कैंसर फैलता रहता है भीतर, तुम्हें पता न भी हो, वैसे ही चिंताएं भी फैलती रहती हैं भीतर।
और चिंताओं और कैंसर का बड़ा जोड़ भी है। चिंताएं शायद मानसिक कैंसर का नाम है और कैंसर शायद शारीरिक चिंता का नाम है। आज नहीं कल इसका उदघाटन होने ही वाला है। क्योंकि जैसे-जैसे चिंताएं बढ़ती हैं समाज में वैसे-वैसे कैंसर बढ़ता है। कैंसर शारीरिक बीमारी कम मालूम होती है, मानसिक बीमारी ज्यादा मालूम होती है। शायद मन में ही उसका सूत्रपात है। अति चिंता, अति संताप, अति उद्विग्नता, अति तनाव, देह को भी जरा-जीर्ण कर जाता है; तोड़ जाता है। ऐसा तोड़ जाता है कि अभी तक उसका कोई इलाज नहीं, उपाय नहीं, औषधि नहीं।

लेकिन तुम रात जब सोए हो तब भी कैंसर बढ़ रहा है, फैल रहा है। ऐसे ही चिंता भी फैल रही है। तुम शराब पी कर पड़े हो, ऊपर से देखने में चाहे तुम मस्त भी मालूम पड़ो, मगर मस्ती झूठी है, सुबह होते-होते उतर जाएगी।
शराब पी कर आदमी पीछे गिरने की कोशिश कर रहा है, समय को झुठलाने की कोशिश कर रहा है। यह कोशिश सफल नहीं हो सकती। मैं शराब का विरोधी नहीं हूं, मैं इस कोशिश का विरोधी हूं। यह कोशिश सफल नहीं हो सकती, यह तुम समय गंवा रहे हो। शराब में क्या रखा है? अंगूर की बेटी है। शराब में ऐसा कुछ बहुत बुरा नहीं है, शराब में ऐसा कुछ पाप नहीं है। और कभी-कभार घूंट भर पी ली चार मित्रों के बीच तो कुछ नरक नहीं चले जाओगे। जब स्वमूत्र पीने वाले नरक नहीं जा रहे, तो जरा अंगूर का रस पी लिया, इसमें कहीं नरक चले जाओगे? लेकिन शराब के पीछे जो आकांक्षा है, मैं उसका जरूर विरोध करता हूं। वह आकांक्षा गलत है। वह पूरी नहीं हो सकती।
इसी तरह और भी उपाय आदमी खोजता है। धन की दौड़ में, पद की दौड़ में अपने
को भुलाने की कोशिश करता है। याद न रहे अपनी, ऐसा अपने को उलझा लेना चाहता है। राजनीति के दांव-पेंचों में पड़ जाता है। ऐसे चक्करों में पड़ जाता है कि अपनी याद न आए। यह भी शराब है। और यह ज्यादा खतरनाक शराब है। क्योंकि शराब तो सुबह उतर जाएगी, मगर यह जिंदगी भर चढ़ी रह सकती है।
एक शराबी निकला है शराबघर से--लड़खड़ाता। और एक बदशक्ल, बहुत मोटी महिला
ने घृणा से उस शराबी की तरफ देख कर कहा कि अरे मूढ़, क्यों शराब पी-पी कर अपना जीवन नष्ट कर रहा है? वह इतनी चिल्ला कर बोली--आवाज रही होगी उसकी बुलंद! मोटी औरत थी बदसूरत भी--कि शराबी को भी एक क्षण को होश आ गया। उसने गौर से देखा, हंसने लगा। उसने कहाः देख कर हंसते क्या हो? रोओगे, पछताओगे! उस शराबी ने कहा कि देवी, मेरा नशा तो सुबह उतर जाएगा, मगर तू सुबह भी ऐसी की ऐसी रहेगी। तू मुझ से बदतर हालत में है। यह जो तुझ पर चढ़ा है, यह उतरने वाला नहीं। यह इतना आसानी से उतरने वाला नहीं। और तू अपनी शकल तो आईने में देख! यद्यपि मेरी आंखें धुंधली-धुंधली हो रही हैं, मुझे कुछ साफ-साफ दिखाई नहीं पड़ रहा, मगर तू अपनी शकल तो आईने में देख! अभी मैं लड़खड़ा रहा हूं, मगर सुबह ठीक सम्हल कर चलने लगूंगा। मगर तेरी दुर्गति तो सदा रहने वाली है। जिसने शराब पी है, वह तो सुबह होश में आ जाएगा, जिसने राजनीति पी है, वह शायद होश में आए ही न। उसकी सुबह शायद हो ही न। जिसने धन का नशा पीया है, पद का नशा पीया है--इसलिए तो हमने धन-मद, पद-मद कहा है इनको; मद--मदिरा, जिन्होंने कहा है, ठीक शब्द खोजे हैं। ये मूर्छा लाते हैं। ये अहंकार को फुला देते हैं।
पीछे गिरने का उपाय नहीं है। सब उपाय असफल हो जाने वाले हैं। लेकिन जितनी देर तुम पीछे गिरने के उपाय करते हो, उतना समय गंवाते हो। उपाय तो आगे बढ़ना है। आग से गुजरना है और आग के पार जाना है।
अहंकार से गुजरना ही होगा। अहंकार अनिवार्य प्रक्रिया है, परमात्मा
से दूर होने की, परमात्मा से छिटक जाने की, परमात्मा से भटक जाने की। उस भटकाव में ही संताप होगा, विरह होगा; याद आएगी, तलाश शुरू होगी, प्रार्थना जगेगी, पूजा का आविर्भाव होगा। ध्यान की अभीप्सा पैदा ही न हो अगर तुम्हें पता न चले कि परमात्मा चूक गया है। यह तो अहंकार देगा कष्ट, छेदेगा तुम्हारे प्राणों को, भरेगा तुम्हें न मालूम कितने रोगों से, इस सारी पीड़ा से ही तुम जागोगे, नींद तुम्हारी टूटेगी। और तब तुम चलोगे परमात्मा के निकट--उसके निकट जिससे तुम आए हो। मूल-स्रोत की तरफ लौटोगे।
अहंकार का यही प्रयोजन है।
अहंकार का प्रयोजन है ताकि तुम्हें याद आ जाए परमात्मा की। मछली को सागर की याद आ जाए। भटके-भूले को अपने घर की याद आ जाए। यह अहंकार का प्रयोजन है।
निश्चय ही, आनंद मैत्रेय, जीवन में कुछ भी निष्प्रयोजन नहीं है। फिर
ये अहंकार के ही हिस्से हैं--ईर्ष्या, घृणा, इनका भी प्रयोजन है। ये अहंकार की छायाएं हैं।
ईर्ष्या क्या है?

किसी दूसरे का अहंकार तुम्हें कष्ट दे रहा है, कोई दूसरा तुम्हें बड़ा मालूम हो रहा है और तुम चाहते हो कि सबसे बड़ा मैं। मुझ से बड़ा कोई भी नहीं। अहंकार की आकांक्षा यही है कि मुझ से बड़ा कोई भी नहीं है। और कोई दूसरा तुम्हें बड़ा मालूम पड़ता है। और यह असंभव है कि तुम सभी बातों में सभी से बड़े हो जाओ। कहीं न कहीं कोई खोट रह जाएगी। कहीं न कहीं कोई कमी रह जाएगी। अस्तित्व ने उसका इंतजाम रखा है। तुम्हें अहंकार भी देगा तो वह एक-आयामी होगा--और बहुत आयामों में तुम दीन रह जाओगे। धन होगा, तो पद नहीं होगा; पद होगा, सौंदर्य नहीं होगा; सौंदर्य होगा, बुद्धिमत्ता नहीं होगी; बुद्धिमत्ता होगी, स्वास्थ्य नहीं होगा; कुछ न कुछ कमी रह जाएगी। क्योंकि अगर तुम्हारा अहंकार तुम्हें पूरा भर दे, कोई कमी न छूटे, तो फिर परमात्मा की खोज न हो पाएगी। उतना इंतजाम है; कुछ कमी रह जाएगी; वही कमी सालेगी, खटकेगी, कांटे की तरह चुभेगी। उसकी चुभन सार्थक है।
ईर्ष्या क्या है?
चुभन है। किसी के पास तुम से ज्यादा धन है। किसी ने तुमसे बड़ा मकान बना लिया, किसी के पास तुम से ज्यादा ज्ञान है, कोई तुम से ज्यादा त्याग कर दिया, बस तुम्हारे भीतर चुभन पैदा हुई। तुम्हारे भीतर पीड़ा उठी।
मुल्ला नसरुद्दीन का एक मित्र उससे मिलने आया। घोड़े से उतर ही रहा था
कि नसरुद्दीन बाहर निकला। उस मित्र ने कहाः क्या तुम कहीं बाहर जा रहे हो? मैं बीस साल बाद मिलने आया हूं! नसरुद्दीन ने कहा कि तुम रुको, विश्राम करो, नहाओ-धोओ, भोजन करो, तब तक मैं आता हूं। मैंने दो-तीन जगह जाने का पहले से ही निश्चय कर लिया है, उनको खबर भी कर दी, वे मेरी राह देखते होंगे। मित्र ने कहाः इतने दिन बाद मिला हूं, मैं तुम्हें क्षण भर को छोड़ना नहीं चाहता, मैं भी साथ चलता हूं। लेकिन मेरे कपड़े गंदे हैं, यात्रा में धूल से भर गए हैं, तुम मुझे दूसरे कपड़े दे दो। नसरुद्दीन को सम्राट ने कपड़े भेंट किए थे एक बार। वे उसने सम्हाल कर रखे थे, किसी मौके पर पहनेगा। पहने कभी नहीं थे। वही कपड़े देने योग्य मालूम पड़े। दे तो दिए, मित्र ने उसकी शानदार पगड़ी पहनी, कोट पहना, चूड़ीदार पायजामा पहना, जूते पहने, जब मित्र पहन कर तैयार हुआ तो नसरुद्दीन को ईर्ष्या जगी कि इतने सुंदर कपड़े, इतनी सुंदर पगड़ी, ऐसे शानदार जूते, मैं रखे ही बैठा रहा, मैंने अब तक पहने ही नहीं! और आज इसको पहनवा दिए। उसे खलने लगी बात। वह उसके सामने नौकर-चाकर मालूम होने लगा। अपने ही मित्र के सामने। अपने ही कपड़े। और अपने ही कपड़ों के कारण नौकर-चाकर मालूम होने लगा।
पहली ही जगह पहुंचे, सब की नजरें मित्र पर पड़ीं। दुनिया में आदमियों
को कौन देखता है, कपड़ों को लोग देखते हैं। पूछा परिवार के लोगों ने: आप कौन हैं? नसरुद्दीन को चोट लगी। चोट लगनी स्वाभाविक थी। आया है नसरुद्दीन, उसकी तो कोई पूछताछ नहींं, आप कौन हैं! बड़े स्वागत-समारोह से मित्र को बिठाला गया। नसरुद्दीन ने कहाः यह हैं मेरे मित्र जमाल। बड़े पुराने मित्र हैं। रहे कपड़े, सो कपड़े मेरे हैं। मित्र को तो बहुत सदमा लगा कि यह कोई कहने की बात थी। कह कर तो नसरुद्दीन को भी ग्लानि हुई। यह कोई कहने की बात थी। मगर जो हो गया सो हो गया। शर्मिंदा था, बाहर निकला, आंखें झुकाए हुए था। मित्र ने कहाः नसरुद्दीन, यह मैंने कभी नहीं सोचा था कि तुम ऐसी मेरी फजीहत करवाओगे। चार लोगों के सामने यह कहने की क्या बात थी? अरे, कपड़े तुम्हारे हैं सो हैं। कोई मैंने ले नहीं लिए। और उन्होंने कुछ पूछा नहीं था कपड़ों के बाबत। तुम यह क्यों बोले कि कपड़े? कपड़े की बात ही क्यों उठाई? नसरुद्दीन ने कहाः अब जो भूल हो गई, हो गई। ऐसे ही नहीं हो गई भूल, भीतर अंतर्धारा चल रही है, ईर्ष्या की, कि मेरे कपड़े और यह हरामजादा मुफ्त अकड़ दिखला रहा है! क्या शान से चल रहा है! जूते चरर-मरर हो रहे हैं! पगड़ी भी क्या तिरछी सिर पर रखी है! और मैं इसके सामने बिल्कुल नौकर-चाकर मालूम हो रहा हूं। अपने हाथ से यह मूढ़ता कर ली! भीतर तो वही चल रही थी बात।
दूसरे घर पहुंचे। वहां भी वही हुआ, लोगों ने एकदम ध्यान दिया मित्र के लिए। फिर चोट लगी उसे। पूछाः आप कौन हैं? कहां से आए हैं? कोई राजकुमार मालूम होते हैं। आग लग गई जब उसने कहा कि कोई राजकुमार मालूम होते हैं!

अरे, कहाः कोई राजकुमार नहीं, मेरे मित्र हैं, जमाल इनका नाम है। बीस साल बाद मिलने आए हैं। रहे कपड़े, सो कपड़े इन्हीं के हैं।
निकल गया मुंह से आधा वचन कि रहे कपड़े, तब उसे ख्याल आया कि फिर वही भूल हुई जा रही है, सो उसने कहाः कपड़े इन्हीं के हैं। कौन कहता है कि मेरे हैं? मगर फिर बात तो हो गई। फिर कपड़े की बात उठ गई। बाहर आकर मित्र ने कहाः अब मैं न जाऊंगा तुम्हारे साथ। नसरुद्दीन ने कहाः एक मौका और दो, तीसरी जगह और जाना है। और एक मौका और इसलिए दो ताकि यह भूल से मैं बच सकूं। यह क्या हो रहा है? मेरी जबान को क्या हो गया? ऐसा तो कभी नहीं होता था। बात उठानी ही नहीं थी मुझे और फिर भी उठ गई। हालांकि मैंने सुधारने की कोशिश की, मगर तीर हाथ से निकल जाए तो लौटता नहीं। सुधारते-सुधारते भी बात बिगड़ गई। मगर तीसरी जगह बिल्कुल ख्याल रखूंगा, सजग रहूंगा!
तीसरी जगह पहुंचे तो और मुश्किल हो गई। घर का मालिक तो था नहीं, मालकिन थी। बड़ी सुंदर स्त्री। उसकी नजरें एकदम टिकी रह गईं मित्र पर। नसरुद्दीन को तो उसने देखा ही नहीं। मित्र को बिठाया, अपने हाथों से उसके जूते खोले, नसरुद्दीन खड़ा है, उसकी कोई बात ही नहीं, उसको बैठने को भी नहीं कहा। बस इतना ही पूछा नसरुद्दीन से कि नसरुद्दीन, आप कौन हैं, किस देश के सम्राट हैं? नसरुद्दीन ने कहाः सम्राट इत्यादि कुछ भी नहीं, मेरा मित्र है जमाल; अरे, लंगोटिया यार है, बचपन के साथी हैं, बीस साल बाद आया है; रहे कपड़े, सो कपड़े की बात नहीं करनी है, बिल्कुल नहीं करनी है। बात ही नहीं करनी है। वह बात ही मत छेड़ना! जो बात दो दफा भूल हो चुकी है, अब भूल नहीं करूंगा। किसी के हों, तुम्हें क्या मतलब? क्यों कपड़ों के पीछे पड़े हो?
यह स्वाभाविक है। ईर्ष्या अहंकार को लगी चोट है। और जिस दिन अहंकार चला जाता है, उसी क्षण ईर्ष्या चली जाती है। ईर्ष्या कितना जलाती है! ऐसा समझो कि अगर अहंकार अग्नि है तो ईर्ष्या ईंधन है। जैसे आग में कोई घी डालता जाए, चाहे कि बुझाऊं और डाले घी, तो लपटें और उठें, आग और भभके, ऐसे ईर्ष्या है। ईर्ष्या ईंधन है। जितनी ईर्ष्या डालोगे उतना अहंकार भभकेगा। जहां तुम्हारा अहंकार जीत जाएगा, जहां तुम्हारे अहंकार को विजय मिलेगी, वहां तो तुम खुश होओगे; और जो तुम्हें विजय दिलवाएंगे, उनसे तुम कहोगे, मेरा बड़ा प्रेम है तुम से। तुम्हारा प्रेम भी क्या है? बस, वह सिर्फ अहंकार की विजय जो दिला दे, जो उसमें साधन हो जाए, उससे तुम प्रेम जतलाते हो। जो तुम्हारे अहंकार को बढ़ा दे, उससे तुम प्रेम जतलाते हो। वह प्रेम झूठा है, क्योंकि वह अहंकार की पूजा में संलग्न है। असली प्रेम तो अहंकार के मिट जाने पर ही पैदा होता है। प्रेम और परमात्मा एक साथ पैदा होते हैं। प्रेम और परमात्मा एक-दूसरे के ही नाम हैं। प्रेम परमात्मा की छाया है। या परमात्मा प्रेम का सघन रूप है। असली प्रेम और परमात्मा में रत्ती भर भेद नहीं है। इसलिए जीसस ने कहा हैः प्रेम परमात्मा है।
लेकिन तुम जिसे प्रेम कहते हो, वह तो केवल तुम्हारे अहंकार को जो-जो सहारा देता है, जब तक सहारा देता है, तब तक प्रेम। इसलिए तुम्हारा प्रेम किसी भी क्षण घृणा बन जाता है, देर नहीं लगती। जिसके लिए जीते थे, जिसके लिए मर सकते थे--इतना प्रेम था--उसको ही तुम मार सकते हो।
मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी मरणशय्या पर पड़ी थी। अंतिम क्षण में उसने आंख खोली और नसरुद्दीन से कहा कि नसरुद्दीन, अब जाते समय झूठ को क्यों साथ ले जाऊं, एक बात तुम से कह दूं और तुम से क्षमा भी मांग लूं, क्योंकि फिर मिलना होगा, नहीं होगा, कुछ कहा नहीं जा सकता। फिर हमारे रास्ते कभी एक-दूसरे के करीब आएंगे भी अनंतकाल में, कौन जाने? इसलिए यह बोझ अपनी छाती पर नहीं ले जाना चाहती हूं, इसे मैंने काफी ढोया है, इसे आज पंद्रह साल से अपनी छाती पर ढो रही हूं, आज इसे हलका कर लेने दो। मुझे क्षमा कर दोगे? नसरुद्दीन ने कहाः बिल्कुल, क्षमा कर दूंगा, क्षमा किया। तू बोल, क्या अड़चन है? उसकी पत्नी ने कहाः अड़चन यह है कि तुम्हारे मित्र से मेरा प्रेम था और मैं तुम्हें धोखा देती रही। नसरुद्दीन ने कहाः बिल्कुल फिकर ही मत कर! तू भी मुझे क्षमा कर! तू जानती है कि तू क्यों मर रही है? मैंने तुझे जहर पिलाया है। तू मेरा बोझ कम कर दे, मैं तेरा बोझ कम कर देता हूं, बात खत्म!

जिसको तुम प्रेम करते हो, उसको जहर पिला सकते हो। अगर तुम्हारे अहंकार के विपरीत हो जाए उसका व्यवहार। तुम उसे गोली मार दे सकते हो। जिसकी जरा-जरा सी बातों की तुम चिंता करते हो, कि उसके पैर में मोच न आ जाए, इसकी फिकर लेते हो, उसको तुम पहाड़ से ढकेल दे सकते हो। तो तुम्हारा प्रेम प्रेम नहीं है। जो प्रेम घृणा बन सकता है, वह प्रेम नहीं है। प्रेम और घृणा कैसे बन सकता है!
तुम्हारी घृणा क्या है? तुम्हारे प्रेम का ही शीर्षासन करता हुआ रूप। जिनके द्वारा तुम्हारे अहंकार में बाधा पड़ती है, उनसे तुम्हें घृणा, जिनसे तुम्हारे अहंकार में सहयोग मिलता है, उनसे तुम्हें प्रेम।
अहंकार के जाते ही न तो तुम्हारी घृणा बचेगी, न तुम्हारा तथाकथित प्रेम बचेगा। दोनों विलीन हो जाएंगे। और तब एक नये, एक बिल्कुल नवीन प्रेम का सूत्रपात होता है। उस प्रेम का जो दिव्य है, उस प्रेम का जो प्रार्थनापूर्ण है, उस प्रेम का जो परमात्मा की ही आभा है।
ईर्ष्या, घृणा, लोभ, मोह, मत्सर, ये सब अहंकार की ही अलग-अलग प्रतिछवियां हैं। अहंकार बहुरूपिया है। लोभ का क्या अर्थ होता है? अहंकार खाली है, भरो इसे। बहुत धन होगा तो बहुत अहंकार होगा। उतनी अकड़ होगी। जितना धन कम हो जाएगा, उतना अहंकार कम हो जाएगा। बड़ा पद होगा तो उतना अहंकार होगा। पद गया कि अहंकार गया। अहंकार ही लोभ में ले जाता है। लोभ का मतलब इतना है कि भरो मुझे। मुझे बड़ा करो।
मुल्ला नसरुद्दीन और उसका बेटा, दोनों एक नाले को छलांग लगा कर पार किए। मुल्ला तो एकदम छलांग लगा गया और उस पार पहुंच गया। जब बेटे ने देखा कि बूढ़ा बाप छलांग लगा गया तो मैं नाले को न पार करूं, अच्छा नहीं मालूम पड़ता। जवान होकर! तो उसने भी हिम्मत की और छलांग लगाई। बीच नाले में गिरा! बड़ा हैरान हुआ! कहा कि पिता जी, इसका रा.ज समझाइए। आप बूढ़े हैं और छलांग लगा गए, नाला पार कर गए, और मैं जवान हूं, और मैंने पूरी ताकत से छलांग लगाई, फिर भी मैं बीच में गिर गया! मुल्ला ने कहाः इसका राज है। उसने अपना खींसा जोर से हिलाया और चांदी के रुपये खनकाए। बेटे ने कहाः मैं कुछ समझा नहीं। मुल्ला ने कहाः अरे, रुपये जेब में हों तो शरीर में गर्मी रहती है। फोकट, खाली जेब कूदेगा, गर्मी कहां?
धन अहंकार का प्राण है। पद अहंकार का प्राण है।
यह जानकर तुम हैरान होओगे कि राजनेता जब तक पद पर होते हैं, तब तक उनकी अकड़, उनके ढंग एक होते हैं। जैसे ही पद से उतरते हैं, सब अकड़ खो जाती है, सब ढंग खो जाते हैं। चुनाव में जब तुम्हारे सामने राजनेता हाथ जोड़ कर खड़ा होता है, तो तुम यह मत समझना कि तुम्हीं को धोखा दे रहा है, यह उसकी हालत ही है अब। हाथ जोड़े खड़ा है, तुम्हारे पैर भी छूने को कहो तो वह भी करने को राजी है। जनता का सेवक हो जाता है एकदम। और पद पर पहुंचते ही जनता का शासक हो जाता है। फिर तुम्हें पहचानेगा भी नहीं। वह जो तुम्हारे सामने हाथ जोड़ कर खड़ा हुआ था, वह तुम्हें बिल्कुल नहीं पहचानेगा। जैसे तुम्हें कभी देखा ही नहीं। भूल गई सब सेवा! सत्ता हाथ में आ गई, अब कौन सेवा की फिकर करता! सेवा तो केवल सीढ़ी थी सत्ता तक आने की।
किसी की भी गर्दन दबानी हो तो पैर दबाने से शुरू करना चाहिए--यह सेवा
का सूत्र है। पहले पैर दबाओ। पैर जब दबाओगे तो कोई भी मना नहीं करता, वह पैर पसार देगा कि मजे से दबाओ। फिर दबाते-दबाते बढ़ते जाना आगे! दबाते- दबाते उसको भी झपकी आने लगेगी, नींद भी आने लगेगी, और तुम भी धीरे-धीरे बढ़ोगे, उसका विश्वास भी तुम पर बढ़ता जाएगा, फिर तुम उसकी जेब भी काट लेना, फिर उसकी गर्दन भी दबा दोगे तुम तो उसको पता नहीं चलेगा। मगर धीरे-धीरे करना; एकदम से मत कर देना। एकदम से पैर से छलांग मत लगा देना गर्दन पर, नहीं तो वह भी चौंक कर बैठ जाएगा।
एक वैज्ञानिक प्रयोग कर रहा था। उसने एक मेढक को उबलते हुए पानी में डाला। मेढक छलांग लगा कर बाहर निकल गया। एकदम! निकल ही जाएगा। उबलता हुआ पानी, मेढक क्यों उसमें रहेगा? ऐसी छलांग लगाई मेढक ने जैसी जिंदगी में कभी भी नहीं लगाई होगी! फिर उसने उसी मेढक को साधारण पानी में रखा। मेढक के ही शरीर के तापमान का पानी। और उसको धीरे-धीरे गरम करना शुरू किया, बहुत

आहिस्ता-आहिस्ता! चौबीस घंटे, धीरे-धीरे उबलने तक लाया और मेढक उबल गया और मर गया, छलांग नहीं लगाई। क्योंकि धीमे-धीमे गरम हुआ। इतने धीमे गरम हुआ कि मेढक उतनी गर्मी से राजी होता चला गया। इतने आहिस्ता-आहिस्ता गरम हुआ। मैं एक पहलवान को जानता हूं, जिसने एक भैंस के बच्चे को पहले दिन से ही उठा कर घूमना शुरू किया। रोज भैंस का बच्चा बड़ा होने लगा, पड़वा बड़ा होने लगा। और पहलवान लेकर उसे रोज घूमता ही रहा। घंटों घूमता। पड़वा बड़ा होता गया और पहलवान भी उसे रोज लेकर घूमता गया। वह दिन भी आ गया जब पड़वा पूरा का पूरा भैंसा हो गया, मगर पहलवान उसे उठा ले और घूम ले--धीमे-धीमे बात होती रही। उतना-उतना पहलवान भी समायोजित होता गया।
किसी के पैर दबा कर एकदम गर्दन मत पकड़ लेना। नहीं तो वह भी चौंक कर बैठ जाएगा। आहिस्ता-आहिस्ता! वही तुम्हारे राजनेता करते हैं। धीरे-धीरे! पहले सेवा करते हैं। और अगर आदमी की सेवा से नहीं तो जो बहुत होशियार हैं, वे गऊ-सेवा से शुरू करते हैं। बड़ी दूर से शुरू करते हैं! कहां गऊ-सेवा और कहां दिल्ली! कहां "पिंजरा-पोल" और कहां "दिल्ली" मगर पिंजरा-पोल से दिल्ली पहुंचेंगे वे। गऊ-रक्षा से शुरू करते हैं।
कोई हरिजन की सेवा से शुरू करता है। कोई अनाथालय खुलवाता है। कोई अस्पताल बनवाता है। कोई विधवा-आश्रम चलवा देता है। धीरे-धीरे चलते-चलते, चलते-चलते आखिर दिल्ली आ जाती है।
अहंकार खाली है, बिल्कुल खाली है। क्योंकि थोथा है, झूठा है। उसका वास्तविक कोई अस्तित्व नहीं है। सिर्फ मान्यता है। और मान्यता को सम्हालने के लिए बैसाखियों की जरूरत पड़ती है। धन चाहिए, पद चाहिए, प्रतिष्ठा चाहिए, नाम चाहिए, यश चाहिए, गौरव चाहिए; फिर इसके लिए जो भी करना पड़े, अहंकार सब कुछ करने को राजी है। अगर लोग कहते हैं कि हम चरित्रवान का ही सम्मान करेंगे, तो अहंकार चरित्रवान बनेगा। अगर लोग कहते हैं कि हम केवल उपवास करने वाले का ही सम्मान करेंगे, तो अहंकार उपवासी बनेगा। अगर लोग कहते हैं हम जब तक दिगंबर न हो जाओगे, नग्न फकीर न हो जाओगे तब तक सम्मान नहीं करेंगे, तो अहंकार दिगंबर हो जाता है, नग्न फकीर हो जाता है। अगर लोग कहते हैं जब तक केश-लुंच न करोगे, बाल न उखाड़ोगे अपने हाथों से तब तक हम सम्मान न देंगे, तो लोग केश-लुंच भी करते हैं।
अहंकार हर हाल में तैयार है, सब कुछ करने को तैयार है, भरो लेकिन उसे। कोई भी शर्त हो, पूरी करने को तैयार है। ये सारी शर्तें हैं: लोभ, मोह, ममता, माया, ये सब शर्तें हैं। ये सारी वासनाओं का जाल एक बुनियादी सूत्र से उठता है वह सूत्र अहंकार है और अहंकार का अर्थ मेरी दृष्टि मेंः ईश्वर से अपने को भिन्न मान लेना, अस्तित्व से अपने को भिन्न मान लेना। अहंकार यह भी कह सकता है कि ईश्वर नहीं है।
फ्रेड्रिक नीत्शे ने कहा है, ईश्वर मर गया है। और कहा कि अगर ईश्वर हो
भी तो मैं मान नहीं सकता। क्योंकि मैं अपने को मानूं कि ईश्वर को मानूं? उसने बड़ी ठीक बात कही है। अपने को मानूं या ईश्वर को मानूं! दो में से किसको चुनूं? ईमानदार है फ्रेड्रिक नीत्शे, तुम से ज्यादा ईमानदार है। वह कहता है, मैं अपने को ही चुनता हूं। मैं हूं, ईश्वर नहीं है। यही तुम सबकी भी दशा है। भले तुम ईश्वर को कहते हो कि है, मगर भीतर तो तुम जानते होः मैं हूं, कहां का ईश्वर, कहां का क्या! हां, मंदिर में कभी दो फूल भी चढ़ा आते हो कि कहीं भूल-चूक से हो ही! तो थोड़ा सा इंतजाम कर रखो, अपना बिगड़ता भी क्या है! दो फूल चढ़ा दिए, क्या हर्ज है? धूप-दीप जला दिया, हर्ज क्या है? कभी माला फेर ली दो घड़ी बैठ कर, हर्ज क्या है? माला फेरते रहे और टेलीविजन देखते रहे। माला फेरते रहे और दुकान भी चलाते रहे। राम-राम जपते रहे और दुकान में आ गए कुत्ते को भी भगाते रहे। हर्ज क्या है? ऐसे किनारे-किनारे कर लिया।
तिब्बती बहुत होशियार हैं। उन्होंने एक चक्का बना रखा है। उस चक्के में जो आरे हैं, आरों पर मंत्र लिख दिए हैं। बैठे रहते हैं, अपना और काम करते रहते हैं--दुकान चलाएंगे, धंधा करेंगे--और जब भी फुरसत मिलेगी, उस चक्के को एक धक्का मार देंगे। वह चक्का घूमने लगेगा धक्का मारने से। हिसाब यह है कि वह जितने चक्र पूरे कर लेगा, जितने चक्कर ले लेगा, उतने

मंत्रों का लाभ मिल जाएगा। एक तिब्बती लामा मेरे पास मेहमान था, उससे मैंने कहा कि पागल, तुझे पता नहीं कि अब यह बार-बार हाथ मारने की क्या जरूरत है? इसमें एक प्लग लगा कर बिजली से जोड़ दे। यह दिन भर घूमता रहेगा, तू रात सोया रहे तब भी घूमता रहेगा।
आखिर पंखे घूम रहे हैं, इसी तरह यह भी घूमता रहेगा। या पंखे की पखुड़ियों पर मंत्र लिख दे, झंझट मिटा! कहां का प्राचीन तुमने भी, बैठे-बैठे बारबार इसको धक्का मारो! ख्याल रखना पड़ता है!
अगर चक्के के आरों पर लिखे गए मंत्रों के घूमने से काम पूरा हो जाता है, तो आदमी सोचता है कर ही लो, हर्ज क्या है! कभी सत्यनारायण की कथा करवा दी; कभी थोड़ा प्रसाद बंटवा दिया; कभी कन्याओं को भोजन करवा दिया; कभी व्रत-उपवास रख लिए, अपना इतने में बिगड़ता क्या है? अगर हुआ ईश्वर तो कहने को बात रह जाएगी कि देखो, कितना तुम्हारे लिए किया था! और नहीं हुआ, तो गंवाया क्या अब? इन सब कामों को करने से समाज में थोड़ी प्रतिष्ठा ही मिली, अहंकार थोड़ा जगमगाया ही, थोड़े चांद-तारे लगे, हर्ज क्या है? थोड़े सलमा-सितारे जुड़ गए! थोड़ी और रौनक आ गई, लोग कहने लगे बड़ा धार्मिक आदमी है। साधु-पुरुष है। और जिसकी प्रतिष्ठा साधु-पुरुष की तरह हो जाए, धार्मिक आदमी की तरह हो जाए, लोग उससे लुटने को आसानी से राजी हो जाते हैं। तो उसे लूटने में भी सुविधा मिलती है। तिलकधारी दुकानदार हो, तो तुम उससे ज्यादा पैसे नहीं ठहराओगे, सोचोगे कि तिलकधारी है, सच्चा ही कहता होगा। बड़ी चुटिया लटक रही हो, तुम सोचोगे कि ठीक ही कहता होगा! इतनी चुटिया लटकाने वाला आदमी और झूठ बोले? रामनाम की चदरिया ओढ़े बैठा हो, तो तुम यह मान ही नहीं सकते कि यह दंडी मारेगा, और कम तौलेगा, कि नकली रुपये हाथ में थमा देगा।
बेईमानी में सुविधा मिल जाती है अगर लोग तुम्हें धार्मिक समझते हों। तुम्हें पाखंड भी लाभपूर्ण मालूम होता है। हालांकि तुममें से भी कोई ईश्वर को मानता नहीं। क्योंकि ईश्वर को मानने की पहली शर्त ही तुम कहां पूरी किए हो? "मैं" को गंवाओ, तो ईश्वर को जानोगे। और जानोगे तो ही मानने में कुछ अर्थ है। बिना जाने मानने में क्या अर्थ हो सकता है? बिना जाने मानना झूठ है, पाखंड है। तुम्हारे विश्वासी आस्तिक सब पाखंडी हैं, सब झूठे हैं। जब तक अनुभव में न आ जाए, तब तक कुछ भी मान्यता का सार नहीं है। तब तुम किसको भुलावा दे रहे हो? भीतर संदेह भरे हैं, संदेहों की कतार लगी है, और सिर्फ तुमने अपना चेहरा रंग लिया है, आस्तिक हो गए हो, वैसे भीतर तुम नास्तिक हो। आस्तिक के भीतर कुरेद कर देखो और तुम नास्तिक को पाओगे। कभी- कभी तो ऐसा होता है कि नास्तिक कहीं ज्यादा ईमानदार होता है बजाय आस्तिक के। कम से कम इतनी ईमानदारी तो है कि साफ कहता है कि मुझे ईश्वर का कोई पता नहीं तो कैसे मानूं? शायद कभी इसे पता भी चल जाए। क्योंकि जो नहीं मानता है, वह खोजने में लगेगा। उसे कभी न कभी जिज्ञासा उठेगी कि इतने लोग मानते हैं--बुद्ध, कृष्ण, महावीर, जीसस, मोहम्मद--क्या ये सारे लोग गलत होंगे? मैं भी खोजूं, तलाशूं। मगर आस्तिक को तो तलाश की भी जरूरत नहीं है। तलाश की जरूरत ही क्यों हो? वह तो मानता ही है। उसने तो मानने में ही तलाश को डुबो दिया, मार डाला, आत्महत्या कर दी उसकी।
अहंकार का एक ही प्रयोजन हैः तुम्हें परमात्मा से दूर कर दे। ताकि तुम पास आ सको।
निष्प्रयोजन जीवन में कुछ भी नहीं है, सिवाय जीवन को छोड़ कर। हां, स्वयं जीवन निष्प्रयोजन है। क्योंकि जीवन के पार कुछ भी नहीं जिसका जीवन साधन बन सके। जीवन आह्लाद है, आनंद है, संगीत है, नृत्य है, उत्सव है।

उसे भी देख, जो भीतर भरा अंगार है साथी!

सियाही देखता है, देखता है तू अंधेरे को,
किरण को घेर कर छाए हुए विकराल घेरे को।
उसे भी देख, जो इस बाहरी तम को बहा सकती,
दबी तेरे लहू में रोशनी की धार है साथी?

पड़ी थी नींव तेरी चांद-सूरज के उजाले पर, तपस्या पर, लहू पर, आग पर, तलवार-भाले पर।
डरे तू नाउमेदी से, कभी यह हो नहीं सकता,
कि तुझ में ज्योति का अक्षय भरा भंडार है साथी?

बवंडर चीखता लौटा फिरा तूफान जाता है,
डराने के लिए तुझको नया भूडोल आता है;
नया मैदान है राही, गरजना है नये बल से;
उठा, इस बार वह जो आखिरी हुंकार है साथी?

विनय की रागिनी में बीन के ये तार बजते हैं,
रुदन बजता, सजग हो क्षोभ-हाहाकार बजते हैं।
बजा, इस बार दीपक-राग कोई आखिरी सुर में;
छिपा इस बीन में ही आग वाला तार है साथी।

जरा झांको अपने भीतर, अपने अहंकार के भीतर। अपने अंधेरे के भीतर जरा झांको और तुम ज्योति का पुंज पाओगे। अपने अज्ञान के भीतर झांको और ज्ञान की अखंड गंगा पाओगे। अपने अहंकार के भीतर उतरो, उसकी गहराइयों में झांको और तुम परमात्मा को छिपा हुआ पाओगे। अहंकार तो बस आवरण है, ऊपर की खोल है।

उसे भी देख, जो भीतर भरा अंगार है साथी!

उसे भी देख, जो इस बाहरी तम को बहा सकती,
दबी तेरे लहू में रोशनी की धार है साथी?

डरे तू नाउमेदी से, कभी यह हो नहीं सकता,
कि तुझ में ज्योति का अक्षय भरा भंडार है साथी?

बजा, इस बार दीपक-राग कोई आखिरी सुर में;
छिपा इस बीन में ही आग वाला तार है साथी।

दूसरा प्रश्नः अल्लाशो, पहली ही बार आया हूं। जहां देखता हूं, चारों
ओर आंखों में बहुत ही अदभुत शांति नजर आ रही है। ऐसा लगता है कि फरिश्तों की नगरी में आ गया हूं।
प्रभु, क्या यहां सब सिद्ध-पुरुष ही रहते हैं?

रमेश! सिद्ध तो तुम भी हो, बुद्ध तो तुम भी हो। सिर्फ होश नहीं। याद दिलाए जाने की बात है, बस। कुछ भी तुम में कमी नहीं है। कुछ पाना नहीं है, सब मिला हुआ है, सब प्रथम से ही मिला हुआ है, अक्षय संपदा तुम्हारी है, प्रभु का राज्य तुम्हारा है, लेकिन तुम्हें स्मरण नहीं, तुम्हें विस्मरण हो गया है। तुमने खोया कुछ भी नहीं है। सोना सोना है, सिर्फ भूल गया है। अपनी तरफ देखता ही नहीं, इसलिए भूल गया है। औरों की तरफ देख रहा है। तो याद कैसे आए? आत्म-स्मरण कैसे हो? तुम्हारी आंखें भटक रही हैं इस सारे संसार में, दूर चांद-तारे तुम्हें दिखाई पड़ते हैं--और तुम खुद अपने को दिखाई नहीं पड़े हो। चांद पर आदमी चल लिया, और-और तारों पर भी चलेगा, अपने भीतर गति नहीं हुई अभी। समुद्रों की गहरी से गहरी गहराइयों में डुबकी मारी है आदमी ने; प्रशांत महासागर पांच मील गहरा है, उस गहराई को भी छू लिया आदमी ने; और गौरीशंकर के शिखर पर भी चढ़ गया है; और अपने भीतर? अपने भीतर जाता ही नहीं। जैसे उसे ख्याल ही नहीं है कि अपने भीतर भी एक आकाश है। एक ऊंचाई, एक गहराई, एक अदभुत लोक, जीवन-ऊर्जा का सुर-ताल में बंधा हुआ एक संगीत, कि अपने भीतर अनाहत का नाद है, कि अपने भीतर ब्रह्म विराजमान है।
मैं यहां लोगों को सिर्फ याद दिला रहा हूं। तुम्हारे तथाकथित धार्मिक व्यक्ति, तुम्हारे पंडित-पुरोहित-महात्मा, साधु-संत, वे लोगों से कहते हैं

: धार्मिक बनो! मैं लोगों को कह रहा हूं कि तुम धार्मिक तो हो ही, सिर्फ स्मरण करो! इसलिए यहां आसानी से घटना घट रही है। क्योंकि पाना तो लंबा मामला है। जन्म-जन्म लगेंगे। और उन्होंने बड़ा फैलाव कर रखा है। पहले तो कहते हैं, पिछले जन्मों में तुमने जो पाप किए हैं, वे काटने होंगे। अब कितने तुम्हारे जन्म हुए! और कितने तुमने पाप न किए होंगे! उनको काटते- काटते ही अनंत जन्म लग जाएंगे। और उनको काटते-काटते ही अनंत पाप और हो जाएंगे। क्योंकि तुम पाप ही थोड़े काटते रहोगे, कुछ और भी तो करोगे। पाप काटने के लिए भी कुछ करना पड़ेगा। समझो कि मंदिर बनाओगे, तो पहले दुकान चलानी होगी। धन कमाओगे तो मंदिर बनेगा। धन कमाओगे तो दान हो सकेगा। लेकिन धन कमाओगे कैसे? किसी को लूटोगे। किसी का शोषण करोगे। पुण्य भी करोगे तो पहले पाप करना होगा। चोरी करोगे, बेईमानी करोगे। अनंतकाल लग जाएगा तब तो। और चालबाजों ने यह सिद्धांत बड़े हिसाब से खोजा है। इस भांति तुम्हें सदा के लिए धोखा दिया जा सकता है।
पहली तो बात, अनंत-अनंत जन्मों के तुम्हारे कर्म ऐसे हैं कि आज तुम्हारा छुटकारा नहीं हो सकता। इसलिए तुम्हारे महात्मागण तुम्हें जो विधियां देते हैं, अगर वे सफल न हों, तो उनका क्या कसूर?
खलील जिब्रान की प्रसिद्ध कहानी है। एक आदमी लोगों को गांव-गांव समझाता फिरता था कि आओ मेरे पीछे, मैं तुम्हें परमात्मा से मिला दूं। लेकिन न कभी कोई आया--क्योंकि किसको पड़ी है परमात्मा से मिलने की? लोग कहते, आएंगे, जरूर आएंगे, एक दिन आएंगे, अभी तो और हजार काम करने हैं। अभी तो फसल काटनी है; अभी तो बगीचे में फल पक रहे हैं, उनकी फिकर लेनी है, अभी बच्चे बड़े हो रहे हैं; अभी-अभी तो दुकान खोली है, अभी मकान अधूरा बना है, आएंगे, जरूर आएंगे, एक उम्र पर तुम्हारे साथ आएंगे। वह आदमी गांव-गांव घूमता। न कभी कोई उसके पीछे आया परमात्मा तक जाने के लिए, न उसे कोई झंझट आई।
एक गांव में उपद्रव हो गया। एक आदमी उठ कर खड़ा हो गया, उसने कहा कि मैं आता हूं। न मुझे मकान बनाना, न मेरी पत्नी, न मेरे बच्चे, न धन-दौलत, मुझे कोई झंझट ही नहीं है। मैं तो आप ही जैसे किसी की तलाश में था। गुरु थोड़ा घबड़ाया। क्योंकि पता तो उसे भी ईश्वर के घर का नहीं था मालूम। यह तो काम चल रहा था, क्योंकि कोई कभी साथ आता ही नहीं था! मगर उसने कहा कि देख लेंगे--वह भी कोई साधारण गुरु नहीं था, गुरुघंटाल था! उसने कहा इसको ऐसे चकमे देंगे, ऐसे चक्करों में डालेंगे! मगर वह भी कुछ गुरु से कम नहीं था। गुरु तो गुड़ था, वह शिष्य जो था शक्कर था। वह जो पीछे पड़ा सो पड़ा ही। गुरु ने कहाः सिर के बल खड़े होओ; गुरु कहता, आधा घंटा, वह एक घंटा खड़ा होता। गुरु कहता राम-राम जपो घंटे भर, गुरु कहता एक घंटा, वह चौबीस घंटे जपता। उसने गुरु को पकड़ ही लिया। गुरु उसे ले जाता पहाड़ों में, यहां-वहां घुमाता, चक्कर दिलवाता। एक साल बीत गया।
गुरु थक गया।
उसके पीछे अब गुरु की बदनामी भी होने लगी। क्योंकि गांव-गांव खबर पहुंचने लगी कि अभी तक उस आदमी को पहुंचा नहीं पाया, बड़ी बातें करता था! और वह आदमी लोगों से कहने लगा कि भई, कुछ हो नहीं रहा! और जो भी कहता है, वही मैं करता हूं। गुरु भी उदास होने लगा; वह जो पुराना दंभ था, पहुंचा देने का, वह भी शिथिल होने लगा। लोग पूछने लगे, पहले एक को तो पहुंचाओ! अब गांव में उपदेश करने जाता तो लोग पूछते कि शिष्य का क्या हुआ? शिष्य वहीं बैठा रहता, वह कहता, कुछ नहीं हुआ। उसकी बोलती बंद हो गई गुरु की। उसने छह साल तक चक्कर दिलवाए पहाड़ों में, रेगिस्तानों में, मगर जब शिष्य को चक्कर दिलवाए तो खुद भी चक्कर खाने पड़े। और शिष्य तो हिम्मत से लगा था। उसको तो एक आगे आकांक्षा थी, अभीप्सा थी, आशा थी कि ईश्वर मिलेगा। गुरु को तो वह भी आशा नहीं थी। और धीरे-धीरे उसकी यह भी आशा टूटी जा रही थी कि शिष्य पीछा छोड़ने वाला है। यह आखिरी दम तक पीछा करेगा। यह मार कर ही रहेगा! थक गया, सूख गया गुरु, एक दिन वह शिष्य के चरणों में गिर पड़ा और कहा कि मुझे क्षमा कर, भैया! पहले मुझे उसके घर का पता था, जब से तू क्या मिला है, तेरे सत्संग में मेरा

तक पता खो गया है, मुझे तक उसके घर का अब कोई पता नहीं! अब तू मेरा पीछा छोड़! मुझे माफ कर; भूल हो गई!
तुम्हारे पंडित-पुरोहित तुम्हें विधियां देते रहते हैं। और विधियां चलती रहती हैं। कैसी ही मूढ़तापूर्ण विधि दी जा सकती है तुम्हें। क्योंकि अनंत जन्मों का कर्म पहले काटना है! वह कोई इसी जन्म में तो कट नहीं जाएगा। इसलिए बड़ी सुरक्षा है। अनंत जन्म लगेंगे। अब अगले जन्म की अगले जन्म में देखी जाएगी, कोई लौट कर तो कहता नहीं।
मैं नगद धर्म में विश्वास करता हूं। मैं तुमसे कहता हूं कि तुम्हें कोई कर्म नहीं काटने हैं। तुमने अतीत जन्मों में जो भी किया है, वह वैसे ही है जैसे कोई सपनों में करे। अब सपनों में किए कर्मों के लिए कोई काटना थोड़े ही पड़ता है। तुम मूर्च्छित थे, इसलिए तुमसे भूलें हुईं। मूर्च्छा में भूलें स्वाभाविक हैं। रात तुमने सपना देखा कि तुम चोर हो और तुम हत्यारे हो, फिर सुबह जाग कर क्या तुम्हें रात की चोरी और हत्यारे होने के लिए कुछ प्रायश्चित्त करना होता है? कोई यज्ञ-हवन करवाना होता है? कि कुछ पाप को काटने का विधि-विधान करना होता है? सुबह जागे, जाना कि सपना था, बात खत्म हो गई। मैं तुम्हें जगाता हूं, जागते ही तुम्हारे सारे पिछले जन्म सपने सिद्ध हो जाते हैं। क्योंकि मूर्च्छा में तुम जीए, तुमने जो भी किया, किया नहीं, हुआ; नींद में हुआ। उसका कोई मूल्य नहीं है।
और मैं तुम से यह भी नहीं कहता कि अगले जन्मों में, जन्मों-जन्मों के बाद तुम्हें उपलब्धि होगी। मैं कहता हूंः अभी और यहीं। तुम्हारी तैयारी अगर चाहिए तो बस एक, वह जागने की। ध्यान उसकी प्रक्रिया है।
इसलिए रमेश, तुम्हें यहां प्रसन्नता दिखाई पड़ेगी, आह्लाद दिखाई पड़ेगा, वसंत दिखाई पड़ेगा। फूल खिलते मालूम होंगे। ये तुम जैसे ही लोग हैं। ठीक तुम जैसे। तुम्हारे जैसे ही संसार में रहते हैं, दुकान करते हैं, नौकरी करते हैं, बच्चे हैं, पत्नियां हैं, सब कुछ है। क्योंकि मैं किसी चीज से किसी को छुड़ाना नहीं चाहता। किसी को कहीं से व्यर्थ तोड़ना नहीं चाहता। मैं खिलाफ हूं उस संन्यास के जो भगोड़ापन सिखाता है। क्योंकि उस भगोड़े संन्यास ने दुनिया को बहुत कष्ट दिए हैं। वह किसी ने हिसाब नहीं रखा कि जब करोड़ों-करोड़ों लोग संन्यासी हुए, तो उनकी पत्नियों का क्या हुआ, उनके बच्चों का क्या हुआ? बच्चों ने भीख मांगी, चोर बने, हत्यारे बने; पत्नियां वेश्याएं हो गईं, कि उन्हें भीख मांगने पर मजबूर होना पड़ा, कि दूसरों के बर्तन मलने पड़े! क्या हुआ उनकी पत्नियों का, क्या हुआ उनके बच्चों का, उनका हिसाब किसी ने भी नहीं रखा। अगर उनका हिसाब रखा जाए तो तुम बहुत हैरान होओगे। तुम्हारे तथाकथित संन्यासियों ने जितने लोगों को कष्ट दिया है, उतना किसी और ने नहीं दिया। एक-एक संन्यासी न मालूम कितने लोगों को कष्ट दे गया! मां है बूढ़ी, पिता है बूढ़ा, बच्चे हैं छोटे, पत्नी है, और रिश्तेदार हैं--और भाग गया! एक संन्यासी कम से कम दस-पच्चीस लोगों को दुख दे जाएगा-- जितने लोग उससे संबंधित हैं।
और तुम्हारा संन्यासी बोझ हो जाता है समाज के ऊपर। मुफ्तखोर हो जाता
है। उसकी सृजनात्मकता खो जाती है। वह तुम्हें चूसने लगता है। संसार को गालियां देता है। और सांसारिक लोगों के ऊपर ही निर्भर है। उनका ही दिया भोजन, उनके ही दिए कपड़े पहनता है। वे कमाते हैं, वह खाता है। और संसारियों को गालियां देता है और कहता है, तुम अज्ञानी हो, तुम पापी हो। और वह पुण्यात्मा है! चूसता तुम्हें है! शोषक है।
मैं उस संन्यास के पक्ष में नहीं हूं। मेरे संन्यास की नव-धारणा है। नया प्रत्यय है मेरा संन्यास। जहां हो, जैसे हो, वैसे ही रहो। वहीं जागरण आ सकता है, कहीं और जाने की जरूरत नहीं। क्योंकि जागरण तुम्हारा स्वभाव है। जरा अपने को हिलाना-डुलाना है। जरा अपने को संकल्पवान करना है। जरा अपना समर्पण करना है। अपने अहंकार को विसर्जित करना है। और वसंत आया। वसंत आने में देर नहीं।

धीरे-धीरे उतर क्षितिज से
आ वसंत-रजनी!

... पुकार देनी है वसंत को, बस। वसंत द्वार पर ही खड़ा है, द्वार खोलने हैं।...

धीरे-धीरे उतर क्षितिज से
आ वसंत-रजनी!
तारकमय नव वेणी बंधन
शीशफूल कर शशि का नूतन
रश्मि वलय सित घन-अवगुंठन; मुक्ताहल अभिराम बिछा दे चितवन से अपनी!
पुलकती आ वसंत-रजनी!

मर्मर की सुमधुर नूपुर ध्वनि अलि गुंजित पद्मों की किंकिणि भर पदगति में अलस तरंगिणि; तरल रजत की धार बहा दे
मृदु स्मित से सजनी!
विहंसती आ वसंत-रजनी!

पुलकित स्वप्नों की रोमावलि कर में हो स्मृतियों की अंजलि मलयानिल का चल दुकूल अलि! घिर छाया-सी श्याम, विश्व को आ अभिसार बनी!
सकुचती आ वसंत-रजनी!

सिहर-सिहर उठता सरिता-उर
खुल-खुल पड़ते सुमन सुधा-भर
मचल-मचल आते पल फिर-फिर;
सुन प्रिय की पदचाप हो गई
पुलकित यह अवनी!
सिहरती आ वसंत-रजनी!

बस इतनी सी बात यहां घटी है। हमने वसंत को पुकारा है और वसंत आने लगा है।

सुन प्रिय की पदचाप हो गई
पुलकित यह अवनी!
सिहरती आ वसंत-रजनी

तुम वही हो, जो तुम्हें होना है। तुम्हें होना नहीं है कुछ और। तुम्हें सिर्फ अपने को जान लेना है जैसे तुम हो वैसे ही। और आ जाएगा मधुमास! खिल उठेंगे फूल!

सखि, वसंत आया।
भरा हर्ष वन के मन,
नवोत्कर्ष छाया।

रमेश, यह जो तुम देखते हो प्रसन्नता, यह जो पुलक, यह जो आनंदमग्न-भाव,
यह जो तुम लोगों की आंखों में शांति देखते हो, प्रेम देखते हो, यह तुम्हारा भी स्वभाव है, तुम्हारी भी क्षमता है। बस, तुमने अपनी जेब ही नहीं टटोली।
तुम झोली फैलाए औरों से मांग रहे हो वह, जो तुम्हारे भीतर पड़ा है।

सखि, वसंत आया।
भरा हर्ष वन के मन,
नवोत्कर्ष छाया।

किसलय-वसना नव-वय-लतिका,
मिली मधुर प्रिय उर-तरु-पतिका, मधुप-वृंद बंदी--
पिक-स्वर नभ सरसाया।

लता-मुकुल हार गंध-भार भर वही पवन बंद मंद मंदतर,
जागी नयनों में वन--
यौवन की माया

आवृत सरसी-उर-सरसिज उठे,
केशर के केश कली के छुटे,
स्वर्ण-शल्य-अंचल
पृथ्वी का लहराया

सखि, वसंत आया।
भरा हर्ष वन के मन,
नवोत्कर्ष छाया।

संन्यास मेरे लिए त्याग नहीं है, भोग की परम कला है। संन्यास मेरे लिए परमात्मा को भोगने की विद्या है। परमात्मा के साथ नाचने, गाने, गुनगुनाने का आयोजन है। मैं यहां लोगों को जीवन का विषाद नहीं सिखा रहा हूं, जीवन का आह्लाद! पुरानी तथाकथित संन्यास की धारणा जीवन-विरोधी थी। उसका मौलिक स्वर निषेध का था। मेरा मौलिक स्वर विधेय का है। जीओ, जी भर कर जीओ! एक-एक पल परिपूर्णता से जीओ! फिर कहीं और स्वर्ग नहीं है। फिर यहीं स्वर्ग उतर आता है। जो परिपूर्णता से जीता है, उसकी श्वास-श्वास में स्वर्ग समा जाता है।
रमेश, कुछ सीखो! यहां नाचते, मदमस्त लोगों से कुछ तरंग लो। ये पियक्कड़ों की जमात है, कुछ पीओ। यह रिंदों का जमघट है, यह मधुशाला है, यहां से ऐसे ही मत लौट जाना। यहां सुराही भरी है। बस, तुम झुको। और यहां कोई प्यालियों से नहीं पीया जाता, सुराहियों से ही पीया जाता है। क्या प्याली लेनी बीच में!
अच्छा हुआ आ गए! अच्छा हुआ कि तुम्हें दिखाई पड़ रहा है! क्योंकि भारतीय मन इतना रुग्ण हो गया है, इतना अंधा हो गया है, सदियों-सदियों के निषेध ने भारतीय मन को इतनी व्यर्थ की धारणाओं से भर दिया है कि देखना जो यहां घट रहा है, उसे पहचानना एकदम असंभव मालूम होता है। तुम सौभाग्यशाली हो, कि तुम लोगों की आंखों में देख सके और तुम्हें वहां शांति दिखाई पड़ी! तुम सौभाग्यशाली हो कि तुम्हें थोड़ा सा स्वर्ग उतरता हुआ यहां अनुभव में आया! नहीं तो तथाकथित परंपरागत, रूढ़िग्रस्त मन जब यहां आता है, तो उसे बड़ी बेचैनी होती है, क्योंकि वह अपेक्षाएं लेकर आता है।
वह अपेक्षाएं लेकर आता है कि लोग बैठे होंगे उदास, झाड़ों के नीचे, धूनी रमाए, भभूत लपेटे, भूखे-प्यासे, रूखे-सूखे, मरुस्थल जैसे। क्योंकि वही उसकी महात्मा की धारणा है। और जब वह यहां आकर लोगों को नाचते देखता है, और जब वह यहां आकर देखता है कि बांसुरी बज रही है, और कहीं कोई धूनी नहीं दिखाई पड़ती; संगीत, और कहीं कोई शरीर पर भभूत रमाए हुए नहीं दिखाई पड़ता; लोग सुंदर तन, सुंदर मन, संगीत में डूबने को आतुर, नृत्य में जाने को तत्पर, तो वह चौंक जाता है। उसे लगता हैः यह कैसा संन्यास! यह कैसा आश्रम! यह कैसी

तपश्चर्या! उसकी धारणाओं के विपरीत पड़ता है। वह अंधा हो जाता है, एकदम अंधा हो जाता है, उसे फिर कुछ दिखाई नहीं पड़ता।
या उसे ऐसी चीजें दिखाई पड़ने लगती हैं जो उसके प्रक्षेपण हैं। अगर वह देख लेता है एक जोड़े को हाथ में हाथ डाले चलते हुए, बस, उसके प्राणों पर संकट आ जाता है। उसने जीवन भर वासना को दबाया है, वह उभर कर खड़ी हो जाती है। उसका प्रक्षेपण हो जाता है। वह उस युवक की जगह अपने को देखता है। और सोचता है कि अगर मैं इस युवक की जगह होता तो क्यों इस स्त्री का हाथ पकड़ता? उसने और किसी कारण से कभी स्त्री का हाथ पकड़ा ही नहीं। उसने स्त्री को कभी और किसी तरह देखा ही नहीं, कामवासना की धारणा से ही देखा है, उतनी ही उसकी पहचान है। वह दूसरे पर भी वही थोप देता है। तुम वही देख सकते हो, जो तुम्हारे भीतर भरा पड़ा है। तुम अपना कूड़ा-करकट दूसरों पर आरोपित कर देते हो।
तुम सौभाग्यशाली हो कि तुम देख सके हो! तुम रुढ़ि से मुक्त हो। परंपरा
का बोझ तुम पर कम है। ये अच्छे लक्षण हैं। ऐसे ही व्यक्तियों के लिए मेरा संन्यास है। मेरा तुम्हें निमंत्रण है! आओ, सम्मिलित होओ इस राग में, इस रंग में!

तीसरा प्रश्नः ओशो, मैं अपने को बड़ा ज्ञानी समझता था, पर आपने मेरे ज्ञान के टुकड़े-टुकड़े कर के रख दिए। अब आगे क्या मर्जी है?

धर्मेश! जो उसको मंजूर! मेरी क्या मर्जी? यहां मेरी मर्जी नहीं चलती।
और यहां तुम्हारी मर्जी भी नहीं चलेगी। यहां तो हम सबने अपनी मर्जी उसकी मर्जी में डुबो दी। वह जो करवाता है, होता है। और उस पर छोड़ने का एक मजा है। अगर तुम इस संन्यासियों के परिवार का थोड़ा अवलोकन करोगे, तो बहुत चौंकोगे। न हम किसी से भीख मांगने जाते, न हम किसी से दान मांगते, हम किसी के सामने हाथ नहीं फैलाते। उसके सामने फैला दिए हाथ, अब किसके सामने हाथ फैलाने! और अड़चन आती ही नहीं। सब होता चला जाता है। आज एक हजार संन्यासी आश्रम के हिस्से हैं। और मेरे संन्यासी कोई दीनता और दरिद्रता से रहने में भरोसा नहीं रखते। जो मनुष्य के लिए बिल्कुल जरूरी है, मिलना ही चाहिए। मस्ती से रहते हैं, आनंद से रहते हैं, उत्सव से रहते हैं।
उस पर छोड़ते ही कुछ अनूठा घटित होना शुरू होता है।... अभी पांच-सात दिन पहले लक्ष्मी को दस लाख रुपयों की जरूरत थी। वह मुझसे कहने लगी कि दस लाख रुपये एकदम से कहां से आएंगे? मैंने कहाः जैसे और आते हैं, वैसे ये भी आएंगे! और आ गए! लक्ष्मी भी चौंकी! कि एक व्यक्ति परसों ही आया स्विटजरलैंड से! और उसने कहा कि मैंने दस लाख रुपये जमा कर दिए हैं आश्रम के नाम से, स्विटजरलैंड में! पूरे दस लाख रुपये। लक्ष्मी ने पूछाः किसलिए? किसने तुमसे कहा? उसने कहाः किसी ने मुझसे कहा नहीं, लेकिन अचानक मुझे लाभ हो गया। जिसकी कोई अपेक्षा भी नहीं थी, जिसके लिए मैंने कोई प्रयास भी नहीं किया था, तो मैंने सोचा कि जिसके लिए मैंने कोई प्रयास नहीं किया, जिसके लिए मेरी कोई अपेक्षा भी नहीं थी, जो आकस्मिक रूप से आ गया है, वह अपना नहीं है। इसे कहीं भी भगवान के काम में लगा देना चाहिए।
जीवन इस ढंग से भी जीआ जा सकता है। सब उस पर छोड़ कर भी जीआ जा सकता है।
और यह तो मलूकदास कीशृंखला चल रही है, तुम्हें तो उनका वचन याद ही होगा-- सभी को याद है, उसी एक वचन के कारण मलूकदास को लोग जानते हैं, और तो उनके वचन लोगों को मालूम भी नहीं हैं--
अजगर करे न चाकरी, पंछी करे न काम।
दास मलूका कह गए, सबके दाता राम।।
इसे मलूकदास ने ऐसे ही नहीं कह दिया होगा। मलूकदास का भी काम ऐसे ही चला!
अब तुम मुझसे पूछते हो, आप की क्या मर्जी? उसकी जो मर्जी। उसकी मर्जी पूछते हो, धर्मेश, तो पहला तो काम संन्यास! क्योंकि जब ज्ञान खंडित हो गया, और तुम्हें भ्रांतियां थीं कि मैं जानता हूं, वे टूट गईं, सरलता अब स्वाभाविक हो जाएगी। और सरलता ही संन्यास है। जब ज्ञान की भ्रांति टूट गई,

तो ध्यान सुगम हो जाएगा। और ध्यान ही संन्यास है। संन्यास तो बस आयोजन है कि ध्यान घट सके, सरलता घट सके, निर्दोष हो सके चित्त बच्चों की भांति। और तुम्हारा ज्ञान तुम्हारा नहीं था, इसलिए टूट गया। तुम्हारा होता तो क्यों टूटता? उधार था, बासा था; वेद का था, कुरान का था, बाइबिल का था, तुम्हारा नहीं था। बुद्ध का था, महावीर का था, कबीर का था, तुम्हारा नहीं था। काश, तुम्हारा होता तो कैसे टूट जाता!
अपना टूटता ही नहीं। अपने को टूटने का कोई उपाय नहीं। आग जला नहीं सकती उसे, शस्त्र छेद नहीं सकते उसे, मृत्यु मिटा नहीं सकती उसे।

लोग कहते हैं कि मैं हूं शायरे-जादूबयां
सदरे-माअनी, दावरे-अल्फाज, अमीरे-शायरां
और खुद मेरा भी कल तक, खैर से, था ये ख्याल
शायरी के फन में हूं मिनजुमला-ए-अहले-कमाल
लेकिन अब आई है जब इक-गोना मुझमें पुख्तगी
जहन के आईने पर कांपा है अक्से-आगही आसमां जागा है सर में और सीने में जमीं
अब मुझे महसूस होता है कि मैं कुछ भी नहीं
जिहल की मंजिल में था मुझको गरूरे-आगही
इतनी लामहदूद दुनिया और मेरी शायरी
जुल्फे-हस्ती और इतने बेनिहायत पेचो-खम
उड़ गया रंगे-तअल्ली खुल गया अपना भरम
लोग कह देते हैं कि आपका बड़ा ज्ञान है, आप बड़े पंडित...
लोग कहते हैं कि मैं हूं शायरे-जादूबयां
सदरे-माअनी, दावरे-अल्फाज, अमीरे-शायरां
और खुद मेरा भी कल तक, खैर से, था ये ख्याल
शायरी के फन में हूं मिनजुमला ए-अहले-कमाल

और जब लोग कहते हैं, तो हम भी मान लेते हैं। तुम भी मान लेते हो कि जब इतनी भीड़ कहती है कि आप बड़े ज्ञानी, कि बड़े कवि, कि बड़े संत, कि बड़े त्यागी, कि बड़े महात्मा। इतने लोग कहते हैं, जब इतने सर्टिफिकेट, इतने प्रमाण-पत्र मिलते हैं तो तुम भी मान लेते हो। और मानने का कोई उपाय भी तो नहीं है। इसी तरह तो तुम मानते हो कि तुम कौन हो। दूसरों का आधार लेकर तुम मानते हो तुम कौन हो। वे तुम्हारा आधार लेकर मानते हैं कि वे कौन हैं। बड़ा मजा चल रहा है। अंधे दूसरे अंधों को समझा रहे हैं। जिन्हें खुद पता नहीं, वे तुम्हें भ्रांतियां दे देते हैं।

लेकिन अब आई है जब इक-गोना मुझमें पुख्तगी
जहन के आईने पर कांपा है अक्से-आगही

और जब थोड़ी सी पुख्तगी आती है, थोड़ी सी प्रौढ़ता आती है।
जरूर धर्मेश, थोड़ा होश आया है, थोड़े प्रौढ़ हुए हो, थोड़े जागे हो, थोड़ी करवट बदली है।

लेकिन अब आई है जब इक-गोना मुझमें पुख्तगी

एक थोड़ी सी प्रौढ़ता आई है।

जहन के आईने पर कांपा है अक्से-आगही

तो वह जो बुद्धिमानी का ख्याल था, वह थोड़ा कंपकंपा गया है। उसका प्रतिबिंब झिलमिला गया है। जैसे चांद आकाश में है और झील में दिखाई पड़े, और तुम समझ लो कि झील में ही सच्चा चांद है। जब तक झील न हिले, पता नहीं चलता। एक कंकड़ी फेंक दो, झील हिल जाए और पता चल जाता है कि चांद खंड-खंड हो

गया। वह असली चांद नहीं था, तुम्हारा ज्ञान जो खंड-खंड हो गया, मैंने कंकड़ी ही फेंकी है। मगर वह झील में बना चांद था। वह तुम्हारी भ्रांति टूट गई है।

आसमां जागा है सर में और सीने में जमीं

यह शुभ अवसर है, इसे गंवा मत देना।

आसमां जागा है सर में और सीने में जमीं
अब मुझे महसूस होता है कि मैं कुछ भी नहीं

धन्यभागी हैं वे जिन्हें यह महसूस होने लगे कि मैं कुछ भी नहीं हूं। क्योंकि फिर सारा आसमान उनका है, सारी जमीन उनकी है।

जिहल की मंजिल में था मुझको गरूरे-आगही

जब तक मूढ़ता थी, मूढ़ता की यात्रा थी, ...

जिहल की मंजिल में था मुझको गरूरे-आगही

तब तक ज्ञान का घमंड था। मूढ़ों को ही सिर्फ ज्ञान का घमंड होता है। मूढ़ों को ही भ्रांति होती है पांडित्य की।

जिहल की मंजिल में था मुझको गरूरे-आगही
इतनी लामहदूद दुनिया और मेरी शायरी

और मैं सोचता था मैं महाकवि हूं। और अब जब मैंने देखी इतनी लामहदूद दुनिया, इतना अनंत विस्तार सौंदर्य का, क्या मेरी शायरी? ! क्या मेरी कविताएं? ! इतना सौंदर्य! एक-एक पत्ता महाकाव्य है परमात्मा का। एक-एक फूल, एक-एक झरना भगवद्गीता है। एक-एक तारा कुरान। जगह-जगह उसके चिह्न हैं। हर जगह उसके चिह्न हैं। कण-कण पर उसके हस्ताक्षर हैं। वही है एकमात्र महाकवि।
लेकिन जब तक यह अनंत सौंदर्य दिखाई न पड़े, तब तक तुम अपनी टिमटिमाती
सी मोमबत्ती को जला कर बैठे हो और सोच रहे हो: यही प्रकाश है। सूरजों को देखो!

इतनी लामहदूद दुनिया और मेरी शायरी
जुल्फे-हस्ती और इतने बेनिहायत पेचो-खम

इतने असंख्य रहस्य! कि गिनो तो गिने न जा सकें, मापो तो मापे न जा सकें, इतना अमाप अस्तित्व!

जुल्फे-हस्ती और इतने बेनिहायत पेचो-खम
उड़ गया रंगे-तअल्ली...

शेखी का रंग उड़ गया...

उड़ गया रंगे-तअल्ली खुल गया अपना भरम

मगर यह शुभ है। यह भ्रांति टूट जाए, यह भरम टूट जाए, तो तुम्हारे जीवन में सच्चे ज्ञान की शुरुआत हो सकती है। यह जानना कि मैं अज्ञानी हूं, ज्ञान का पहला कदम है। यह जानना कि मैं कुछ भी नहीं जानता हूं, जानने की तरफ मुड़ना है। यह जानना कि मैं कुछ भी नहीं हूं, सब कुछ होने का उपाय है।

आखिरी प्रश्नः ओशो, क्राइस्ट ने कहाः गांव के मुर्दे मुर्देको दफना देंगे। कबीर ने कहाः साधो, ई मुरदन के गांव। और मलूक कहते हैंः मुरदे मुरदे लड़ि मरे। लोकजीवन मृत है, इसका क्या कारण है? क्या जीवन-निषेध का दर्शन इसका कारण है? या अहंकार और अज्ञान कारण है? क्या इस मृतवत जीवन से उबरने के लिए बुद्धत्व ही एकमात्र उपाय है? हमें समझाने की अनुकंपा करें।

आनंद मैत्रेय! मूर्छा एकमात्र कारण है और बुद्धत्व एकमात्र उपाय है। बुद्धत्व यानी जागरण, होश से भर जाना। मूर्छा यानी ऐसे जीना जैसे कोई शराब पी कर रास्ते पर चल रहा हो लड़खड़ाता-लड़खड़ाता। जिसे अपना पता नहीं है, वह मूर्च्छित है। और जिसे अपना पता है, वह बुद्ध है।
एक दार्शनिक ने सुबह-सुबह अपनी पत्नी से सुना कि जानते हो जी, हमारे मुन्ने ने चलना शुरू कर दिया!
दार्शनिक ने सोचते हुए पूछाः कब से?
अजी, कोई एक हफ्ता हो गया!
ओह! तब तो वह काफी दूर निकल गया होगा! दार्शनिक महोदय चिंतित स्वर में बोले।
होश कहां? अपने दर्शन में खोए हैं। चारों तरफ देखने की फुर्सत कहां? चंदूलाल हनीमून मनाने किसी हिल स्टेशन पर गए। कार की पिछली सीट पर बैठे वे अपनी नई-नवेली दुल्हन गुलाबो से प्यार-मोहब्बत कर रहे थे, किंतु उन्हें डर लग रहा था कि साला ड्राइवर कहीं देख न रहा हो!
ड्राइवर रास्ता भटक गया था, किंतु प्रेम में मदहोश चंदूलाल को इसकी खबर न थी कि उसकी कार एक ही जगह का चक्कर काट रही है। जब उसी चौराहे पर से कार फिर गुजरी तो ड्राइवर ने पूछाः क्यों साहिब, यह सातवीं बार है न? गुलाबो को दूर खिसकाते हुए गुस्से में चंदूलाल बोलेः सातवीं बार हो
या सौवीं बार, तुझे इससे क्या मतलब? तू अपना काम कर, मैं अपना काम कर रहा हूं।
लोग अपने भीतर बंद हैं, लोगों की आंखें बंद हैं, कान बंद हैं! संवेदनशीलता बंद है।
मूर्च्छा। एक गहरी मूर्च्छा है। हम चल लेते हैं, उठ लेते हैं, काम भी
कर लेते हैं, किसी तरह जिंदगी बीत ही जाती है। मगर किसी तरह! हमें कुछ पता नहीं चलता कि हम कहां थे, क्यों थे, किसलिए थे? क्यों जन्मे, क्यों जीए, क्यों मरे; कौन था जो आया और कौन था जो गया, कुछ पता नहीं चलता! इसको तुम होश कहोगे? हां, नाम हम बता सकते हैं। वह नाम हमारा नहीं है, दिया हुआ है। और अपना पता भी बता सकते हैं। वह भी हमारा नहीं है, वह भी दिया हुआ है। तुम्हें अपना पता ही नहीं है। जागो! झकझोरो अपने को! अपने प्रत्येक कृत्य को जागरण से जोड़ दो!
अचानक ढब्बू जी को खबर लगी कि चंदूलाल अस्पताल में भरती हैं। उसके शरीर में घाव ही घाव हो गए हैं और करीब बीस फै्रक्चर हुए हैं; हालत गंभीर है। समाचार मिलते ही ढब्बू जी भागे-भागे अस्पताल पहुंचे। देखा कि पूरे शरीर में पट्टियां ही पट्टियां बंधी हैं, आक्सीजन लगी है, ग्लूकोज की बोतल लटकी है, और पास ही में बैठी गुलाबो सिर के बाल नोंच कर .जार-.जार रो रही है, छाती पीट रही है। ढब्बू जी ने कहा: भाभी, यह क्या हो गया; कोई दुर्घटना हो गई क्या?
मुझसे क्या पूछते हो, गुलाबो ने दहाड़ मारते हुए रोते हुए कहाः अपने भैया से ही पूछो न!
क्या हुआ, भाई चंदूलाल, ढब्बू जी ने उदास स्वर में पूछाः क्या कर बैठे यह? आखिर ऐसी कौन सी गलती हो गई कि जिससे पूरे शरीर पर प्लास्टर ही प्लास्टर चढ़ गया?
बेचारे चंदूलाल ने बामुश्किल मुंह खोल कर जवाब दिया, क्या बताऊं, दोस्त, मैंने तो बस इतना ही कहा था कि दाल में जरा नमक कम है।
यह सुनते ही गुलाबो की आंखें गुस्से से लाल हो गईं। शर्म नहीं आती झूठ बोलते, वह पूरी ताकत लगा कर चीखी, तुमने यह नहीं कहा था कि नमक जरा कम है, तुमने यह कहा था कि नमक है ही नहीं।

मगर भाभी इतने नाराज होने की तो कोई बात नहीं थी, ढब्बू जी ने समझाया, आपको दाल में और नमक डाल देना था।
गुलाबो बोलीः यदि घर में नमक होता तो मैंने पहले ही न डाल दिया होता!
एक हफ्ते से घर में नमक है ही नहीं। कहो अपने भैया से, घर में सामान लाकर क्यों नहीं रखते?
क्या बात करती हो जी! चंदूलाल बोलेः मैंने पिछले शनिवार को ही तो दस किलो नमक लाकर तुम्हें दिया था।
गुलाबो का गुस्सा तो अब आसमान पर चढ़ गया। वह बोलीः अरे कलमुंहे, मुझे बताया क्यों नहीं कि वह नमक है। मैं तो उसे शक्कर समझ कर रोज चाय में डाल कर तुझे पिलाती रही!
ऐसी जिंदगी चल रही है!
तुम पूछते होः "क्राइस्ट ने कहाः गांव के मुर्दे मुर्दे को दफना देंगे। कबीर ने कहाः साधो, ई मुरदन के गांव। और मलूक कहते हैंः मुरदे मुरदे लड़ि मरे। लोकजीवन मृत है, इसका क्या कारण है?"
एकमात्र कारण है कि लोग बेहोश हैं, मूर्च्छित हैं। और एकमात्र औषधि, रामबाण औषधि, और वह बुद्धत्व है। इसके सिवाय न कभी कोई उपाय था, न है, न हो सकता है।
जागो! और जाग तुम सकते हो, वह तुम्हारी संभावना है। वह तुम्हारा जन्मसिद्ध अधिकार है!

आज इतना ही।

रामदुवारे जो मरे
सातवां प्रवचन

अब मैं अनुभव पदहिं समाना

अब मैं अनुभव पदहिं समाना।।
सब देवन को भरम भुलाना, अविगति हाथ बिकाना।
अब मैं अनुभव पदहिं समाना।।
पहला पद है देई-देवा, दूजा नेम-अचारा।।
तीजे पद में सब जग बंधा, चौथा अपरंपारा।।
अब मैं अनुभव पद समाना।।
सुन्न महल में महल हमारा, निरगुन सेज बिछाई।
चेला गुरु दोउ सैन करत हैं, बड़ी असाइस पाई।।
अब मैं अनुभव पद समाना।।
एक कहै चल तीरथ जइए, एक ठाकुरद्वार बतावै।
परमजोति के देखे संतो, अब कछु नजर न आवै।।
अब मैं अनुभव पद समाना।।
आवागमन का संसय छूटा, काटी जम की फांसी।
कह मलूक मैं यही जानिके, मित्र कियो अविनासी।।
अब मैं अनुभव पद समाना।।

दीनबंधु दीनानाथ मेरी तन हेरिए।।
भाई नाहिं बंधु नाहिं, कुटुम परिवार नाहिं,
दीनबंधु दीनानाथ मेरी तन हेरिए।।
ऐसा कोई मित्र नाहिं, जाके ढिग जाइए।।
सोने की सलैया नाहिं, रुपे को रुपैया नाहिं,
दीनबंधु दीनानाथ मेरी तन हेरिए।।
कौड़ी पैसा गांठ नाहिं, जासे कछु लीजिए।।
खेती नाहिं बारी नाहिं, बनिज व्यौपार नाहिं,
दीनबंधु दीनानाथ मेरी तन हेरिए।।
ऐसा कोऊ साहु नाहिं, जासों कछु मांगिए।।
कहत मलूकदास, छोड़ दे पराई आस,
दीनबंधु दीनानाथ मेरी तन हेरिए।।
रामधनी पायके अब काकी सरन जाइए।
रामधनी पायके अब काकी सरन जाइए।।
दीनबंधु दीनानाथ मेरी तन हेरिए।।

यह जीवन क्या है? निर्झर है; मस्ती ही इसका पानी है।
सुख-दुख के दोनों तीरों से,
चल रहा राह मनमानी है।

कब फूटा गिरि के अंतर से?
किस अंचल से उतरा नीचे?
किन घाटों से बह कर आया
समतल में अपने को खींचे?

निर्झर में गति है, यौवन है; वह आगे बढ़ता जाता है।
धुन एक सिर्फ है चलने की-- अपनी मस्ती में गाता है?

बाधा के रोड़ों से लड़ता;
वन के पेड़ों से टकराता।

बढ़ता चट्टानों पर चढ़ता,
चलता यौवन से मदमाता।

लहरें उठती हैं, गिरती हैं, नाविक तट पर पछताता है।
तब यौवन बढ़ता है आगे,
निर्झर बढ़ता ही जाता है।

निर्झर में गति ही जीवन है; रुक जाएगी यह गति जिस दिन?
उस दिन मर जाएगा मानव,
जग-दुर्दिन की घड़ियां गिन-गिन।

निर्झर कहता है--"बढ़े चलो!
तुम पीछे मत देखो मुड़ कर।" यौवन कहता है--"बढ़े चलो!
सोचो मत होगा क्या चल कर।"

चलना है केवल चलना है;
जीवन चलता ही रहता है।
मर जाना है रुक जाना ही,
निर्झर वह झर कर कहता है।

गौतम बुद्ध से किसी ने पूछा एक सुबह, एक भिक्षु ने, एक खोजी ने, एक सत्यार्थी नेः मैं क्या करूं? और बुद्ध ने जो उत्तर दिया, बहुत आकस्मिक था, अनपेक्षित था। बुद्ध ने कहाः "चरैवेति, चरैवेति!" चलते रहो, चलते रहो! रुको मत, पीछे लौट कर देखो मत। आगे की चिंता न लो। प्रतिपल बढ़े चलो। क्योंकि गति जीवन है। गत्यात्मकता जीवन है। और जैसे दौड़ती हुई पर्वतों से नदी की धार एक न एक दिन चलते-चलते सागर पहुंच जाती है, ऐसे ही तुम भी चलते रहे तो परमात्मा तक निश्चित पहुंच जाओगे। न तो नदी के पास नक्शा होता, न मार्गदर्शक होते, न पंडित-पुरोहित होते, न पूजा-पाठ, न यज्ञ-हवन, फिर भी पहुंच जाती है सागर। कितना ही भटके, कितने ही चक्कर खाए पर्वतों में, लेकिन पहुंच जाती है सागर। कौन पहुंचा देता है उसे सागर? उसकी अदम्य गति! चरैवेति, चरैवेति। फिकर नहीं लेती, सोच-विचार नहीं करती: कितना भटकाव हो गया, कितना समय बीत गया, कितना और समय लगेगा, ऐसा अधैर्य नहीं पालती। मदमाती, मस्त, प्रतिपल आनंदमग्न। इससे बोझिल भी नहीं होती कि सागर अभी तक क्यों नहीं मिला? इसका संताप भी उसकी छाती पर भारी नहीं हो पाता। मिलेगा ही, ऐसी कोई गहन श्रद्धा, ऐसी कोई आस्था, मिलना अनिवार्य है। जैसे बीज टूटता है एक परम श्रद्धा में कि फूल बनेगा ही, ऐसे ही नदी बहती है एक परम श्रद्धा में कि सागर मिलेगा ही।
इस श्रद्धा का नाम ही आस्तिकता है, ईश्वर को मानने का नाम नहीं, मंदिर, मस्जिद, गुरुद्वारे में पूजा-पाठ का नाम नहीं। यह परम श्रद्धा कि यदि मैं चलता ही रहूं, तो एक न एक दिन गंतव्य आ ही जाएगा। गति है तो गंतव्य अनिवार्य है। लोग लक्ष्य बना कर चलते हैं, इससे भटक जाते हैं।
लक्ष्य कौन बनाएगा? तुम बनाओगे। अपने अज्ञान में बनाओगे, मूर्छा में बनाओगे, सुषुप्ति में बनाओगे, स्वप्न में बनाओगे। लक्ष्य क्या होगा? तुम्हारे स्वप्न का ही विस्तार होगा। तुम्हारे लक्ष्य में तुम्हीं प्रतिबिंबित होओगे। तुम्हारा लक्ष्य अस्तित्व से मेल नहीं खाएगा, तुम से मेल खाएगा। और तुम अगर जानते होते, तो लक्ष्य की जरूरत क्या थी? तुम्हें कुछ पता नहीं है; तुम अपने इस अज्ञान में लक्ष्य निर्धारित करोगे, यह पाना है, वह पाना है, तो भटकोगे।
अलक्ष्य बढ़ते चलो! बहते चलो! गति में रहो! इतना भर ध्यान रहे, अटकना मत कहीं। भटको कितने ही, भटकना कितना ही, अटकना मत! कोई तट, कोई कूल-किनारा

आसक्ति न बने। कितना ही सुंदर हो तट, गीत गुनगुनाते गुजर जाना। ठहर मत जाना, रुक मत जाना, किसी पड़ाव को मंजिल मत समझ लेना! धन्यवाद देना तट को, उसके सुंदर वृक्षों को; पक्षियों के गीत को, सुंदर मौसम को, लेकिन धन्यवाद देकर आगे बढ़ जाना। कहीं आसक्ति न बने, लगाव न बने, कोई चीज जंजीर न बने, कोई मोह बंधन न बने और तुम बढ़ते ही रहो--अज्ञात की ओर, अलक्ष्य की ओर, अपरिचित की ओर--तो सुनिश्चित एक दिन सागर पहुंच जाओगे।
नदियों को नक्शे दे दो कि फिर पक्का समझना कि सागर नहीं पहुंच पाएंगी। नक्शे ही उलझा लेंगे। नक्शों की उलझन ही काफी हो जाएगी। और नक्शों ने ही आदमी को उलझाया है। हिंदू नक्शे, मुसलमान नक्शे, ईसाई नक्शे, जैन, बौद्ध, सिक्ख, कितने नक्शे हैं! दुनिया में तीन सौ धर्म हैं। तो तीन सौ नक्शे हैं। और तीन सौ धर्मों के कम से कम तीन हजार संप्रदाय हैं। तो नक्शों में भी नक्शे हैं। इन तीन हजार नक्शों में आदमी खो गया है। जाए तो जाए कहां? जब तक निर्णय न हो जाए कौन सा नक्शा ठीक है, कौन सा मार्गदर्शक ठीक है, किसके पीछे चलूं, किसका हाथ गहूं, तब तक आदमी सोचता है जहां हूं, वहीं ठीक। कम से कम परिचित भूमि पर हूं।
डबरा बन गया है आदमी। और जैसे ही आदमी डबरा बनता है, उसके भीतर कुछ सड़ना शुरू हो जाता है। उसकी आत्मा मरने लगती है। जैसे ही आदमी डबरा बनता है, कब्र बन जाती है। फिर मजार है, फिर जीवन में दुर्गंध है, कीचड़ है। कमल नहीं खिलते फिर। फिर सुवास नहीं उठती। फिर गीत नहीं, संगीत नहीं। फिर नाचे कौन? भागती सरिता नाचती है, सरोवर नहीं नाचते। हालांकि सरोवर सुरक्षित होते हैं, चारों तरफ से घिरे कूल-किनारे से। नदी असुरक्षित होती है। रोज-रोज नई असुरक्षा में प्रवेश करती है। रोज नई चट्टानों को तोड़ती है। नये मार्ग खोजती है। नये मार्ग बनाती है--बनाती है मार्ग और उन पर चलती है। सरोवर सुरक्षा में ही मर जाता है। और नदी असुरक्षा में ही एक दिन सागर तक पहुंच जाती है।

जिन मंजिलों में राहबरों का गुजर नहीं
ले आई है वहां भी मेरी गुमरही मुझे।

कुछ ऐसी भी मंजिलें हैं, जहां मार्गदर्शकों का काम नहीं।

जिन मंजिलों में राहबरों का गुजर नहीं
ले आई है वहां भी मेरी गुमरही मुझे।

वहां भटकने की आदत, भटकते ही चले जाने की आदत पहुंचा देती है। वहां वे पहुंच जाते हैं, जो फिकर ही नहीं लेते शास्त्रों की, सिद्धांतों की। जो आचरण-संहिताओं में अपने को बांधते नहीं, वे पहुंच जाते हैं। और जो अपने को आचरण-संहिताओं में बांध लेते हैं, चरित्र की क्षुद्र धारणाओं में बांध लेते हैं, नीति-नियम-मर्यादा में आबद्ध हो जाते हैं, वे वहां नहीं पहुंच पाते।
देखते हो तुम, हमने राम को अवतार कहा लेकिन फिर भी पूर्ण अवतार नहीं कहा। कौन सी कमी है राम में कि उनको हम पूर्ण अवतार न कह सके? मर्यादा। वे मर्यादा-पुरुषोत्तम हैं। वही कमी है। तुमने शायद ऐसे न सोचा होगा कि मर्यादा के कारण, अति मर्यादा के कारण ही वे सीमित हो गए हैं! आंशिक ही रह गए हैं। कृष्ण को हमने पूर्ण अवतार कहा है। गुमरही, कृष्ण का कोई बंधन नहीं, कोई मर्यादा नहीं; अमर्याद हैं। न कोई नक्शा है, न कोई बंधा हुआ आचरण है, न कोई रीति-नियम है--मुक्त धारा। नृत्य है, बांसुरी है। और प्रतिपल बांसुरी बज रही है और रास रचा जा रहा है।
कृष्ण को हमने पूर्ण अवतार कह कर अदभुत काम किया है; पृथ्वी पर कोई जाति नहीं कर सकी। दुनिया ने बहुत सम्मान दिया है अपने सदपुरुषों को, लेकिन सभी को सम्मान दिया है उनकी मर्यादा के कारण। हम अकेली कौम हैं इस पृथ्वी पर, जिसने कृष्ण को सर्वाधिक सम्मान दिया है, पूर्ण अवतार कहा है,

अमर्यादा के कारण। अमर्यादा का दूसरा नाम है मुक्ति। अमर्यादा का दूसरा नाम है: न कोई कूल, न कोई किनारा; सागर हो जाना।
राम हैं गंगा। पवित्र हैं बहुत, पर सागर नहीं। कृष्ण सागर ही हैं।
समग्रता और सागर की तलाश ही परमात्मा की तलाश है।
ये सूत्र बड़े प्यारे हैं। इन सूत्रों को समझने की कोशिश करना--
अब मैं अनुभव पदहिं समाना।।
मलूक कहते हैंः अब मैं अनुभव में समा गया हूं। परमात्मा शब्द का उपयोग नहीं किया। यह नहीं कहा कि मैं परमात्मा में समा गया हूं। कहा कि अनुभव में समा गया हूं। क्योंकि परमात्मा शब्द का उपयोग करो तो द्वंद्व खड़ा होता है, द्वैत खड़ा होता है, दूरी बनती है। मैं और तू पैदा हो जाते हैं। और परमात्मा कोई व्यक्ति नहीं है। और अगर परमात्मा व्यक्ति है तो तुम उसमें कैसे समा सकोगे? और समा भी गए तो समाना क्षणिक होगा, क्षणभंगुर होगा, फिर छूट जाना पड़ेगा।
यही तो हमारा अनुभव है प्रेम का।
जिनसे तुम्हारा प्रेम है, किन्हीं-किन्हीं क्षणों में तुम एक-दूसरे में लीन हो जाते हो। बस, किन्हीं-किन्हीं क्षणों में! फिर दूरी, बहुत दूरी हो जाती है। शायद पहले से भी ज्यादा दूरी हो जाती है। क्षण भर को पास आते हो, निकट होते हो, एक-दूसरे में डूब जाते हो, लीन हो जाते हो, फिर छिटक जाते हो; छिटक-छिटक जाते हो; यही तो प्रेमी की पीड़ा है। कि चाहता है डूब ही जाए, फिर लौटे नहीं, मगर लौटना पड़ता है।
जैसे तुम पानी में डुबकी लगाओ, लाख तुम चाहो कि न लौटो, लेकिन जल्दी ही छटपटाहट होगी, जल्दी ही श्वासें घुटने लगेंगी, प्राणों पर संकट आ जाएगा। तुम न भी चाहो तो भी पानी के बाहर निकल आओगे। कितनी देर पानी में रहोगे? उतनी देर भी तो प्रेमी एक-दूसरे में नहीं रह पाते। छटपटहाट शुरू हो जाती है। पहले पाने की छटपटाहट, डूब जाने की छटपटाहट, फिर निकल भागने की, फिर दूर हो जाने की, फिर मुक्त हो जाने की, फिर स्वयं हो जाने की आकांक्षा जगती है।
परमात्मा कोई व्यक्ति होता तो उसमें भी छटपटाहट पैदा होती। उससे भी
हम भागते, उससे भी बचते। परमात्मा व्यक्ति नहीं है। परमात्मा उस परम अनुभव का नाम है, जहां "मैं" मिट जाता है। "तू-मैं" नहीं, सिर्फ "मैं" मिट जाता है, सिर्फ "मैं" तिरोहित हो जाता है, वाष्पीभूत हो जाता है, कोई "मैं" नहीं पाया जाता। और चूंकि "मैं" नहीं पाया जाता, इसलिए "तू" कैसे पाया जा सकता है? न जहां "मैं" है, न जहां "तू" है, वहां क्या है? उसको अनुभव कहते हैं मलूक। बस, एक अनुभव है, अस्तित्व का, अपनी निजता का, अपनी समग्रता का। चूंकि अपना ही अनुभव है, इससे फिर उससे छूटने का कोई उपाय नहीं--चाहो तो भी उपाय नहीं, संभावना नहीं। डूबे सो डूबे।
रामकृष्ण कहते जैसे नमक की पुतली को कोई सागर में उतार दे कि जा, सागर
की थाह ले आ! नमक की पुतली जैसे ही सागर में गई कि पिघलने लगेगी। डूबने लगेगी, बिखरने लगेगी। थाह तो क्या ले पाएगी, जल्दी ही सागर में गल जाएगी। लौट कर नहीं आएगी। ऐसा ही अनुभव है। अनुभव को पद कहा। कहते हैं:
अब मैं अनुभव पदहिं समाना।।
अब मैं उस परम अनुभव में लीन हो गया हूं, जिसको कुछ लोगों ने परमात्मा कहा है। क्योंकि वह आत्मा का परम रूप है। और जिसे कुछ लोगों ने निर्वाण कहा है, क्योंकि वहां अहंकार बिल्कुल ही मिट जाता है। जैसे दीये का निर्वाण हो जाता है, दीया बुझ जाता है, ऐसे अहंकार बुझ जाता है। इसलिए किसी ने उसे निर्वाण कहा है। और किसी ने उसे मोक्ष कहा है। क्योंकि वहां सब बंधन गिर जाते हैं; मैं के, तू के; शरीर के, मन के, हृदय के, विचार के, भाव के; सब बंधन गिर जाते हैं। निर्बंध चैतन्य रह जाता है। सब सीमाएं गिर जाती हैं, असीम का अनुभव होता है। किसी ने उसे कैवल्य कहा है, क्योंकि वहां केवल चेतना मात्र बचती है, केवल अनुभव मात्र बचता है। और कुछ भी नहीं बचता। कौन अनुभव कर रहा है, वह भी नहीं बचता। किसका अनुभव हो रहा है, वह भी नहीं बचता। बस, दोनों के बीच की मिठास रह जाती है। अनुभव मात्र रह जाता है; न तो अनुभोक्ता और न अनुभूत।

इसे थोड़ा समझना।
हमारे जीवन में तो हमेशा त्रिपुटी होती है। जब भी ज्ञान होता है, तो वहां तीन होते हैं। ज्ञानी, ज्ञान और ज्ञेय। प्रेम होता है तो तीन होते हैं। प्रेमी, प्रेयसी और प्रेम। दर्शन होता है तो तीन होते हैं। द्रष्टा, दृश्य और दर्शन। हमारा तो सारा जीवन इस त्रिपुटी में बंधा हुआ है।
लेकिन एक ऐसी घड़ी है परम अनुभव की, जहां ज्ञाता नहीं होता, ज्ञेय नहीं होता, सिर्फ ज्ञान की सतत धारा रह जाती है, वर्षा होती है। जहां द्रष्टा नहीं होता, दृश्य नहीं होता, मात्र दर्शन रह जाता है--शुद्ध। जहां किनारे नहीं रह जाते, सरिता किनारों से मुक्त हो जाती है। वही तो सागर हो जाती है। जब किनारे न रहे तो सरिता सागर हो जाती है।
एक ऐसा प्रेम है जहां प्रेमी नहीं होता, प्रेयसी नहीं होती, बस प्रेम
का एक अदभुत अनुभव होता है। जो सबको डुबा लेता है, प्रेमी को भी, प्रेयसी को भी, दोनों को अपने में लीन कर लेता है।
इसके लिए अनुभव से और प्यारा शब्द क्या हो सकता है?
अब मैं अनुभव पदहिं समाना।।

भाव गीतों का समझती हूं न, पर मैं साथ गाती
मैं तुम्हारे साथ गाती,
ज्योति के पायल पहन नक्षत्र-सी मैं जगमगाती
मैं तुम्हारे साथ गाती।

अर्थ समझूं मैं न--कड़ियों की विकलता जानती हूं मैं स्वरों के साथ उठती आग को पहचानती हूं। पूर्णता की प्यास ले ज्यों सरि चले सागर-मिलन को है तुम्हारे राग में तृष्णा वही--मैं मानती हूं लांघ सीमा रिक्तता की मैं चली पूर्णत्व पाने मैं अपरिचित थी--पवन की लय मुझे आई बुलाने
और मेरे फुल्ल मन में भी पिकी का दाह जागा
छोड़ घूंघट और अकुलाहट उठी मैं स्वर मिलाने
मैं सजीली प्यार-भीनी छांह-सी हूं साथ जाती
मैं तुम्हारे साथ गाती।

मुग्ध ओंठों बीच सिमटी बंसरी-सी मैं नहाती दौड़ती फिरती तुम्हारे साथ जीवन की गली में
हूं घुली जाती लहर-सी मैं तुम्हारी काकली में प्राण की यह रिक्त तन्मयता--न रस का अंत जैसे
जग उठा हो मूर्ति का ज्यों देवता प्रस्तर-तली में वायु चंचल प्राण का किस मुक्ति का मर्मर लिए है आज मेरा कंठ किस मधु का महासागर पिए है।
ज्योति यह आनंद की मन की द्विधाएं भस्म करती
गीत का लयभार मेरे कंकणों को रत किए है,
हो शिथिल अवरोह में--आरोह में नभ चूम आती
मैं तुम्हारे साथ गाती।

ज्योति-चंचल आरती-जैसी ध्वनित हो थरथराती
देर तक सुनती रही मैं वाग्विहीना स्वर तुम्हारा था न गाने के लिए मुझसे तनिक आग्रह तुम्हारा
लग रहा था पर मुझे मैं एक क्षण भी रुक न सकती प्रेरणा से गति-समंत्रित था विवश यह गात सारा छोड़ मंदिर मैं निकल आई, रही पूजा अधूरी
थी बड़ी उन्मत्त उत्कंठा नहीं थी सह्य दूरी
मौन पूजन था वहां--मुखरित यहां था व्यग्र अणु-अणु थी वहां निःशब्द स्वीकृति अब निनादित प्रणति पूरी

मैं पुलक-पूरित खगी-सी सुख-पगी बलिहार जाती मैं तुम्हारे साथ गाती।

मैं तुम्हारे गीत की कोमल कड़ी बन झूम जाती भूल जाती प्राण गोपन के गुणों की लाज भाती
भूल जाता दिन घड़ी भर को अवज्ञाएं तुम्हारी
था अधिक कब पास मेरे जो छिपा पाती तुम्हारी
खुल पड़ी वह मूक थी जो, खिल उठी जो वंचिता थी
लुट चली उदगार बन कर जन्म से जो संचिता थी
थी पड़ी अवरुद्ध निष्ठा की अगति में जो समर्पित हो गई परिपूर्ण प्लावित ग्रीष्म-सरि जो रंजिता थी खुल गए मीलित नयन ज्यों स्नेह-व्याकुल दीप बाती मैं तुम्हारे साथ गाती।

मैं वसंती वायु से उठती लता-सी कसमसाती
रूप पाती रश्मि मुझसे--सृष्टि नव प्राणद विपुलता है यही संगीत अंबर के घनों में पूर्ति भरता
भीग कर उस तान से शारद निशा अवदात होती
है वसंती तारकों का राग यह पथ-ताप हरता
बांध लेता है प्रकृति को संचरण पुलकावली का
गंध के परिप्रोत से बनता सुमन लघु तन कली का
इस अनामी गीत का मैं अर्थ समझी हूं न अब तक किंतु रंग देता यही मुख प्रति पवन की अंजली का मैं गुंथी जाती इसी की मुग्ध मीड़ों में समाती बिंब से प्रतिबिंब-सी मिलने चली मैं राग-माती
मैं तुम्हारे साथ गाती।
भाव गीतों का समझती हूं न, पर मैं साथ गाती
मैं तुम्हारे साथ गाती,
ज्योति के पायल पहन नक्षत्र-सी मैं जगमगाती
मैं तुम्हारे साथ गाती।

एक ऐसी घड़ी है समाधि की, समाधान की, समाहित हो जाने की; एक ऐसा पावन क्षण है तल्लीनता का, तन्मयता का, भावविमुग्धता का, जब तुम नहीं बचते। एक गीत जरूर उठता है। तुम्हारा गीत नहीं, उसका गीत! और उसका भी कैसे कहें? बस इतना ही कहो कि एक गीत उठता है। एक गीत जो अस्तित्व का है। एक सुगंध जो न मेरी, न तुम्हारी, जो समग्र की है, अखंड की है। उस अखंड की सुगंध को ही हमने प्यारे-प्यारे नाम दिए हैं।
मलूक का नाम हैः अनुभव।
अब मैं अनुभव पदहिं समाना।।
सब देवन को भरम भुलाना, ...
भूल गए सब देवी-देवता, ...
अविगति हाथ बिकाना।
और अब उसके हाथ बिक गया हूं जिसकी गति का कुछ भी पता नहीं; जिसके संबंध में कोई भविष्यवाणी नहीं हो सकती; कहां ले जाएगा यह सागर, कहां इस यात्रा का अंत होगा, असंभव है कहना कुछ भी। परमात्मा अज्ञात ही नहीं है, अज्ञेय भी है। जान-जान कर भी कहां जान पाते हैं हम उसे! गीत तो गा लेते हैं मगर अर्थ पकड़ में नहीं आता। धुन तो गुनगुना लेते हैं, मस्त तो हो लेते हैं, लेकिन व्याख्या नहीं होती, परिभाषा नहीं होती। व्याख्या और परिभाषा वे करते हैं जिन्होंने जाना नहीं।
बड़ी अदभुत बात है! परमात्मा की व्याख्या करने में वे पंडित बड़े कुशल हैं, जिन्होंने जाना नहीं। जाना नहीं, इसलिए व्याख्या करना आसान है।
जिन्होंने जाना है, उनके लिए शब्द बहुत छोटे पड़ जाते हैं, अनुभव बहुत बड़ा।

अनुभव फिर शब्दों में समाता नहीं। इसलिए बेबूझ पहेली है। यहां अज्ञानी व्याख्या करते हैं और ज्ञानी अव्याख्य रह जाते हैं।
बुद्ध से जब भी किसी ने पूछा ईश्वर है या नहीं, वे बात टाल जाते। जिंदगी भर बात टालते रहे। कुछ ने समझा कि शायद उन्हें पता नहीं, इसलिए बात टालते हैं, नास्तिक हैं। हिंदू अब तक यही मानते जाते हैं कि बुद्ध नास्तिक हैं। इसलिए जब भी कोई पूछता है ईश्वर है, तो साफ जवाब क्यों नहीं देते? है तो कहो है, नहीं है तो कहो नहीं है। इससे तो कम से कम चार्वाक बेहतर। नहीं है, ऐसा तो कहता है। लेकिन बुद्ध चुप रह जाते हैं। लेकिन यह हिंदू व्याख्या गलत है। यह हिंदू व्याख्या पक्षपातपूर्ण है। इस तरह की व्याख्या के कारण ही बुद्ध को यहां से हिंदुओं ने उखाड़ फेंका। अपने ही सब से सुंदरतम फूल को हिंदू बर्दाश्त न कर सके। और यह कोई हिंदुओं ने ही किया, ऐसा नहीं, यह दुनिया भर का अनुभव है।
यहूदियों में जो श्रेष्ठतम फूल खिला, जीसस, उसे यहूदियों ने ही सूली
दे दी। और यूनानियों में जो सबसे सुंदर कमल खिला, सुकरात, उसको यूनानियों ने ही जहर पिला दिया। और हिंदुओं ने जो ऊंचे से ऊंचा शिखर छुआ, जो गौरीशंकर हिंदुओं की चेतना का था, गौतम बुद्ध, उसको ही उखाड़ फेंका। हिंदुस्तान में कोई नामलेवा न रह गया। और अब जो नये बौद्ध हैं, वे क्या कोई ख़ाक बौद्ध हैं? वे सब राजनीतिक चालबाजियां हैं।
डाक्टर अंबेदकर जिंदगी भर कई दफा विचार करते रहे, कभी सोचते ईसाई हो जाएं, कभी सोचते मुसलमान हो जाएं--एक बात पक्की थी कि हिंदू नहीं रहना। फिर आखिर में उन्होंने तय किया कि बौद्ध हो जाएं। मगर डाक्टर अंबेदकर को क्या ध्यान का पता, क्या समाधि का पता? कानून-विद थे, तार्किक थे, पंडित थे; ब्राह्मणों को हरा सकें, ऐसे ब्राह्मण थे कहो महाब्राह्मण थे, लेकिन बुद्धत्व से क्या लेना-देना? बुद्ध से क्या लेना-देना? यह राजनीतिक चालबाजी थी।
हजारों साल तक भारत में बुद्ध का नामलेवा नहीं रहा। और अब जो नामलेवा पैदा हुए हैं, उनको बुद्ध से कोई प्रयोजन नहीं है। वे बिल्कुल नितांत झूठे बौद्ध हैं। नव-बौद्ध बिल्कुल झूठे बौद्ध हैं। अगर अंबेदकर ईसाई होते तो ये सारे के सारे लोग ईसाई हो जाते। अगर अंबेदकर मुसलमान होते तो ये मुसलमान हो जाते। इनको कुछ लेना-देना नहीं। राजनीतिक दांव-पेंच में कौन सी बात लाभ की होगी, वही हिसाब है।
क्या हुआ? हमने बुद्ध को क्यों इस तरह विस्मृत किया? हमारी व्याख्या
खा गई। बुद्ध के मौन को हम न समझे। बुद्ध की चुप्पी आस्तिक की चुप्पी है। परम आस्तिक की चुप्पी है। बुद्ध नहीं बोले, क्योंकि बुद्ध ने जाना कि नहीं तो कहा ही नहीं जा सकता, क्योंकि ईश्वर है। और हां कैसे कहूं, क्योंकि हां सीमा बना देता है। हां छोटा शब्द है। उसे तो केवल मौन में ही कहा जा सकता है।
और कैसा दुर्भाग्य कि हिंदू भी न समझ सके! जो इस पृथ्वी पर सबसे पुरानी जाति है। और जिनके पास उपनिषदों जैसी संपदा है। उपनिषद कहते हैं: जो कहे मैं जानता हूं, जान लेना नहीं जानता। और जो कहे नहीं जानता, उसके पास बैठना, उठना, सीखना उससे, क्योंकि वह जानता है।
जिनके पास उपनिषदों जैसी अदभुत संपदा थी, वे भी बुद्ध को न पहचान सके। उपनिषदों को भी नहीं पहचाने, बुद्ध को भी क्यों पहचानेंगे!
हम अपने-अपने अंधकार को इतना जोर से पकड़े हैं कि रोशनी आए तो हम आंख बंद कर लेते हैं। हमारा अंधकार से मोह बहुत है।
बुद्ध का चुप रह जाना जीवन भर सिर्फ इस बात का प्रतीक है कि बुद्ध कह रहे हैं कि मत पूछो, यह सवाल मत पूछो। यह अतिप्रश्न है। परमात्मा के संबंध में चुप्पी ही उत्तर है। चुप रहो! चुप हो जाओ! जैसे मैं चुप हुआ ऐसे तुम भी चुप हो जाओ। बुद्ध कहते हैं, जैसे मैं उत्तर नहीं दे रहा हूं, तुम भी उत्तर मत दो। मौन में तलाशो। और मौन में ही उसे पाओगे।
जिसे मौन में पाया जाता है, उसे केवल मौन में ही कहा जा सकता है। बुद्ध
ने और सब उत्तर दिए, सिर्फ परमात्मा के संबंध में उत्तर नहीं दिया। वही एक परम अनुभव है, जो बिल्कुल शब्दातीत है।

... अविगति हाथ बिकाना।
मलूक कहते हैंः किस दुनिया में प्रवेश कर गया! न आर-पार है, न ओर-छोर है। न कोई सीमा है, न कोई शब्द प्रकट कर सके। ऐसा डूबा हूं, ऐसा तल्लीन हो गया हूं, ऐसा मदमस्त! शराब का नशा तो चढ़ता है, उतर जाता है, परमात्मा का नशा चढ़ा सो चढ़ा। फिर उतरता नहीं। और जिसने उसके नशे को पी लिया है, जिसने उसकी शराब को पी लिया है, वही पवित्रतम है इस पृथ्वी पर। उसके डगमगाने में ही मार्ग बनते हैं। उसके भटकने से ही रास्ते निर्मित हो जाते हैं।

वो रिंदे-पाकबाज हैं, छू ले अगर हमें
दोजख की आगको भी गुलिस्तां बनाएं हम

ऐसे भी रिंंद हुए हैं, ऐसे भी पियक्कड़ हुए हैं कि वही अकेले पाकबाज हैं, अकेले वही पवित्र हैं। अगर वे नरक की अग्नि को भी छू दें तो वसंत हो जाए। फूल ही फूल खिल जाएं। अंगारे उनके हाथ के स्पर्श से फूल हो जाएं।
इस परम अवस्था में, इस मस्ती में कौन याद रखेगा गणेशजी को! कौन याद रखेगा ब्रह्मा-विष्णु-महेश! और भारत में तो तैंतीस करोड़ देवी-देवता हैं। कौन पड़ेगा इस पंचायत में? इस झगड़े-झांसे में? जिसने उस परम को अनुभव कर लिया, उसके लिए सब विलीन हो गए, सभी देवी-देवता विलीन हो गए। ये सारा देवी- देवताओं का फैलाव हमारी विक्षिप्तता का फैलाव है। इतने धर्म चाहिए पृथ्वी पर! अगर विज्ञान एक है, तो धर्म भी एक ही हो सकता है। अगर सत्य एक है, तो धर्म भी एक ही हो सकता है। कैसे हिंदू, कैसे मुसलमान, कैसे जैन, कैसे बौद्ध? हां, भाषाएं अलग हो सकती हैं, कहने के माध्यम अलग हो सकते हैं, अभिव्यंजनाएं अलग हो सकती हैं, अभिव्यक्तियां अलग हो सकती हैं। स्वभावतः बुद्ध बोलेंगे तो पाली में बोलेंगे, महावीर बोलेंगे तो प्राकृत में, और मोहम्मद बोलेंगे तो अरबी में, और जीसस बोलेंगे तो अरेमैक में और लाओत्सु बोलेगा तो चीनी में; स्वाभाविक! और सबके प्रतीक अलग होंगे, सबके काव्य अलग होंगे, सबकी अंगुलियां अलग होंगी लेकिन चांद तो एक ही है जिस तरफ अंगुलियां उठी हैं। तुम चांद को देखो, अंगुलियों को मत चबाओ! और लोग हैं कि अंगुलियां चबा रहे हैं। अंगुलियों की पूजा चल रही है। ये तैंतीस करोड़ अंगुलियां हैं, उनकी ही पूजा कर रहे हो। ये बच्चों के खिलौने हैं, और बच्चों के लिए उपयोगी हैं।
जैसे जब भारत आजाद नहीं हुआ था तो स्कूल की किताबों में होता थाः "ग" गणेश जी का। अब ग को समझाने के लिए गणेश जी से ज्यादा अच्छा प्रतीक और क्या होगा! बच्चे को बिल्कुल गणेश जी याद रह जाते हैं। बच्चा एकदम खिलखिलाने लगता है उनको देख कर। उसका चित्त एकदम प्रसन्न हो जाता है। यह सूंड हाथी की, ये तोंद, यह हाथ में मोतीचूर के लड्डू और चूहे की सवारी! क्या गजब इरादा था, पक्का पता रहा होगा कि कभी न कभी पेट्रोल की कमी हो जाएगी! पहले से इंतजाम कर लिया। चाहे चल न सकें, एक इंच न चले होंगे जब से बैठे हैं चूहे पर; और चूहा भी या तो रबर का रहा होगा, या कभी का मर चुका होगा! चूहे की मुक्ति तो हो ही गई होगी!
बच्चा प्रसन्न हो जाता है। लेकिन वह भी बात न रही! आजादी के बाद अब "ग" गणेश जी का नहीं होता, "ग" गधे का। क्योंकि गधा "सेक्यूलर" है। गणेश जी में जरा धर्म की बदबू आती है। और भारतीय संविधान तो धर्म-निरपेक्ष है।
बच्चे को समझाना हो तो "ग" किसी न किसी का तो बनाना ही पड़ेगा; गणेश जी
का बनाओ कि गधे का बनाओ! लेकिन "ग" को समझाने के लिए कोई प्रतीक चाहिए। ऐसे ही धर्म के जगत में हम सब बच्चे हैं। वहां प्रतीक चाहिए, ये तैंतीस करोड़ देवी-देवता बस प्रतीक हैं। बहाने हैं। उस परम को शायद तुम अभी न समझ पाओ, उतनी ऊंची आंख भी न उठा पाओ, उतना साहस न जुटा पाओ, उतनी अभी तुम्हारी प्रौढ़ता न हो, उतनी अभी तुम्हारी परिपक्वता न हो, तो चलो, कोई छोटा-मोटा इशारा सही, नहीं सूरज मिले तो किरण ही सही, और न हो सूरज की किरण तो दीये की किरण भी ठीक, क्योंकि दीये की किरण भी है तो सूरज की ही किरण। और दीये की छोटी सी लौ में जो जलता है, है वह भी उसी प्रकाश का अंश। मगर जो सूरज को देख ले, फिर दीये को जलाए फिरे!

दिन को तुम दीया बुझा देते हो न! सुबह होते ही बुझा देते हो। ऐसे ही जो परमात्मा को अनुभव कर लेता है, वह सब देवी-देवता बुझा देता है; दीये हैं ये, रात के लिए ठीक हैं। और जिनका भरोसा पूरा है कि सुबह होने ही वाली है, वे शायद दीयों को जलाएं भी नहीं, वे सुबह की प्रतीक्षा करें। उसके लिए साहस चाहिए। मैं अपने संन्यासी को चाहता हूं इतना ही साहस हो उसमें कि क्या छोटी-मोटी बातों से उलझना। क्योंकि उलझना तो आसान है फिर सुलझना मुश्किल हो जाता है। पकड़ना तो आसान है, छोड़ना मुश्किल हो जाता है।
तुम चीजों को ही नहीं पकड़ते, चीजें तुम्हें भी पकड़ लेती हैं।
मैं अपने एक मित्र के साथ घूमने जाता था। उनको आदत थी कि कोई भी मंदिर दिखाई पड़े, जल्दी से सिर झुकाएं। मैंने एक दिन उनको कहा कि भई, तुम्हारे साथ मैं भी थक जाता हूं, यह बार-बार सिर झुकाना! और मंदिरों की इस देश में कुछ कमी है! दो-तीन घर निकले कि फिर मंदिर, दो-चार घर निकले कि फिर मंदिर। न मंदिर तो झाड़ के ही नीचे बैठे हैं शंकर जी, गणेश जी, देवी, देवता, न मालूम क्या-क्या!
तो मुझे भी उनके साथ खड़ा होना पड़े। मैंने कहाः तुम्हारे साथ मैं भी पाप का भागीदार होऊंगा पीछे, कि तुम क्यों खड़े थे? और यह क्या तुमने आदत बना रखी है! एकाध मंदिर में चले गए और जो तुम्हें करना हो, जितनी बार करना हो, उतनी बार झुक लिए, मगर यह दिन भर! उन्होंने कहाः लगता तो मुझको भी अच्छा नहीं है, लेकिन बचपन से आदत हो गई है, पिता जी पकड़ा गए। पिता जी तो चले गए मगर आदत रह गई। अब आप कहते हैं तो ठीक है, अब आप कहते हैं तो ठीक ही कहते होंगे। और बात तो मुझे भी लगती है कि मुझे भी बड़ी अड़चन होती है दिन भर! और पिता जी ऐसा डरा गए हैं कि कोई भी देवी-देवता हो, सब की पूजा करना।
वे मुझे अपने घर भी ले गए, उनका घर देखा तो एक छोटा सा मंदिर बना रखा है, उसमें न मालूम कितने देवी-देवता! जो भी मिले, जो भी मूर्तियां मिल गयीं! और यहां मूर्तियों की कोई दिक्कत है! कोई भी गोल पत्थर मिला, उसी को उठा लाए। वही शंकर जी हो गए। चंदन-मंदन चढ़ा दिया, दो फूल रख दिए, फौरन पूजा शुरू हो गई। तो वह कहते हैंः इसमें भी घंटियां बजाते-बजाते--जल्दी भी कितनी करो, मगर फिर भी एक घंटा सुबह लग जाता है। सब पर कम से कम पानी तो छिड़को, फूल तो चढ़ाओ! और फिर यह भी डर रहता है कि एकाध कोई छूट जाएं, नाराज हो जाएं, कुछ से कुछ! तो वैसे ही तो जिंदगी में मुश्किलें हैं, किसी को नाराज भी नहीं कर सकते! तो मैंने उनसे कहा, इनमें से कुछ छांट क्यों नहीं देते! उसने कहा कि छांटें कैसे? किसको हटाएं? जिसको हटाएं वही नाराज हो जाएगा। पर अब आप कहते हैं तो ठीक कहते हैं, मैं अब कोशिश करूंगा, कि कल से ऐसा हर मंदिर के सामने झुकने की कोई जरूरत नहीं है। आप ठीक कहते हैं, एक दफे सुबह पूजा कर ली, ठीक है।
दूसरे दिन मेरे साथ निकले, पहला ही मंदिर पड़ा, मैंने कहा: सावधान! मंदिर आ रहा है! वे बिल्कुल सावधान होकर मेरे साथ चले। दस-पंद्रह कदम मंदिर के आगे निकल गए। फिर मुझसे बोलेः माफ करें, बड़ी बेचैनी हो रही है! और बड़ा डर भी लग रहा है! और आज सुबह बिल्ली भी रास्ता काट गई! मुझे जा कर नमस्कार कर लेने दें। कुछ से कुछ हो जाए, तो फिर आप ही जिम्मेवार होंगे! उनकी बेचैनी देख कर मुझे दया आई।
पकड़ना तो आसान है, छोड़ना फिर बहुत मुश्किल है। और हम कितने देवी- देवताओं को पकड़े हुए हैं! इसलिए जो हिम्मतवर है, वह तो पकड़ता ही नहीं। वह तो कहता है अब पकड़ेंगे तो फिर एक को ही। एक काफी होना चाहिए। क्या बूंद-बूंद! पूरा सागर ही क्यों नहीं अपना कर लें? तो वह तो रात के अंधेरे में शायद दीया भी नहीं जलाए। वह तो प्रतीक्षा करेगा परमात्मा की।

सौ-सौ अंधियारी रातों से, तेरी मुस्कान कहीं सुंदर
मुख से मुख-छवि पर लज्जा का, झीना परिधान कहीं सुंदर
तेरी मुस्कान कहीं सुंदर

दुनिया देखी पर कुछ न मिला, तुझको देखा सब कुछ पाया
संसार-ज्ञान की महिमा से, प्रिय की पहिचान कहीं सुंदर

तेरी मुस्कान कहीं सुंदर

जब गरजें मेघ, पपीहा पिक, बोलें-डोलें गुलजारों में लेकिन कांटों की झाड़ी में, बुलबुल का गान कहीं सुंदर तेरी मुस्कान कहीं सुंदर

संसार अपार महासागर मानव लघु-लघु जलयान बने
सागर की ऊंची लहरों से चंचल जलयान कहीं सुंदर
तेरी मुस्कान कहीं सुंदर

देवालय का देवता मौन, पर मन का देव मधुर बोले
इन मंदिर-मस्जिद-गिरजा से, मन का भगवान कहीं सुंदर
तेरी मुस्कान कहीं सुंदर

शीतल जल में मंजुलता है, प्यासे की प्यास अनूठी है
रेतों में बहते पानी से, हरिणी हैरान कहीं सुंदर
तेरी मुस्कान कहीं सुंदर

सुंदर हैं फूल, बिहग, तितली, सुंदर हैं मेघ, प्रकृति सुंदर पर जो आंखों में बसा उसी सुंदर का ध्यान कहीं सुंदर
तेरी मुस्कान कहीं सुंदर

उस एक को बसा लो। बस उस एक को पा लेना सब पा लेना है।

दुनिया देखी पर कुछ न मिला, तुझको देखा सब कुछ पाया संसार-ज्ञान की महिमा से, प्रिय की पहिचान कहीं सुंदर तेरी मुस्कान कहीं सुंदर

देवालय का देवता मौन, पर मन का देव मधुर बोले
इन मंदिर-मस्जिद-गिरजा से, मन का भगवान कहीं सुंदर
तेरी मुस्कान कहीं सुंदर

सुंदर हैं फूल, बिहग, तितली, सुंदर हैं मेघ, प्रकृति सुंदर
पर जो आंखों में बसा उसी सुंदर का ध्यान कहीं सुंदर
तेरी मुस्कान कहीं सुंदर

क्यों छोटे-छोटे से बंधना जबकि विराट तुम्हारा होने को राजी है। जब
कि सब तुम्हें मिल सकता है, तब तुम किन छोटे-छोटे खिलौनों में उलझे हो? और खिलौनों में काफी लोग उलझे हैं! खिलौनों में ही इतने उलझ गए हैं जिसका हिसाब नहीं।
कहीं रामलीला हो रही है तो नाटक में ही लोग उलझे हैं। ज्ञानी कहते हैं सारा संसार नाटक है। और अज्ञानी नाटकों को भी सत्य समझ लेते हैं। गांव का कोई लफंगा राम बन गया है! उसके ही पैर पड़ रहे हैं, वहीं फूल चढ़ा रहे हैं। मालूम है उन्हें कि यह कौन है, भलीभांति मालूम है, मगर अभी राम का वेश पहने है, मुकुट इत्यादि बांधे है, बारात निकल रही है, तो आरती उतारी जा रही है, फूल चढ़ाए जा रहे हैं, चरण छूए जा रहे हैं। तुम नाटक को भी सत्य समझ लेते हो। तुम पत्थर की मूर्तियों को सत्य समझ लेते हो! तुम आदमी के गढ़े हुए सिद्धांतों को सत्य समझ लेते हो? तुम आदमी के रचे हुए शास्त्रों को सत्य समझ लेते हो? अगर इतने जल्दी तुम राजी हो गए, तो परमात्मा से वंचित रहोगे। अगर उसे पाना है तो हिम्मत करनी होगी--
सब देवन को भरम भुलाना, अविगति हाथ बिकाना।
पहला पद है देई-देवा, ...
यह पहला पाठ, देई-देवा। न मालूम कितने देवी और देवता...

पहला पद है देई-देवा, दूजा नेम-अचारा।
फिर दूसरा पद है कि नियम पालो, आचरण साधो, व्रत रखो, उपवास करो, एकादशी
आ गई, कि पर्यूषण आ गए, कि रमजान का महीना आ गया!
पहला पद है देई-देवा, ...
पहला यह कि यह पूजो, गणेश जी बैठे हैं! शंकर जी बैठे हैं, इनकी पूजा करो! पत्थर पर फूल चढ़ाओ, सिर झुकाओ। अपने ही हाथ से बनाए हुए खिलौने, इनको पूजो! कैसा अंधापन है! मगर पहला पाठ ठीक। मलूकदास कहते हैं, पहले पाठ की तरह ठीक है। दूजा पाठ है कि थोड़ा पहले से महत्वपूर्ण, कि थोड़ा नियम-व्रत; थोड़ी जीवन में मर्यादा, संयम; थोड़ा जीवन को बांध कर चलना; थोड़ा जीवन को एक व्यवस्था, संयोजन देना। मगर यह रहेगा ऊपरी। क्योंकि इसका आविर्भाव तुम्हारे भीतर से नहीं हो सकता। यह वैसा ही रहेगा जैसे छोटे बच्चों को हम कह देते हैं कि ऐसा करना तो वे वैसा करते हैं।
एक छोटा बच्चा बारबार अपना अंगूठा चूसता था। उसकी मां ने कहा कि देख-- उसको डरवाने के लिए कहा, बच्चे सिर्फ डर को ही मानते हैं। और जिन लोगों का धर्म भी डर पर खड़ा है, समझ लेना बच्चे ही हैं। बच्चे डर को मानते हैं। डर को जो मानते हैं, वे बच्चे हैं। उसकी मां ने डराने के लिए कहा--बहुत दफे धमकाया, मारा, मगर वह सुने ही नहीं--उसको डरवाने के लिए कहा कि देख, अगर ज्यादा अंगूठा चूसेगा तो तेरी हालत कैसी होगी मालूम है? अंगूठा चूसेगा तो पेट तेरा एकदम बहुत बड़ा हो जाएगा! तो वह घबड़ाया कि पेट कहीं बहुत बड़ा न हो जाए। फिर दूसरे दिन मोहल्ले की एक महिला आई, उसको बच्चा होने वाला है, पेट उसका बहुत बड़ा है। वह बच्चा एकदम खिलखिला कर हंसने लगा, उसने कहा कि मुझे पक्का पता है कि तुमने क्या गड़बड़ की है। उसकी मां थोड़ी डरी। लेकिन अब बात, बड़ा मुश्किल है उसको रोकना। उसने कहा कि अंगूठा चूसो, और चूसो! मैंने तो कान पकड़े, अब कभी नहीं चूसूंगा। अब तो प्रत्यक्ष प्रमाण भी मिल गया। बच्चा अगर मान भी लेगा तो भी उसकी मान्यता में कोई बोध तो नहीं हो सकता। भय होगा, या लोभ होगा। बच्चे को हम पुरस्कार देते हैं, या भय देते हैं। इसीलिए नरक और स्वर्ग हैं; वे बच्चों के लिए हैं। उनका कोई अस्तित्व नहीं है। न कहीं कोई नरक है, न कहीं कोई स्वर्ग है। लेकिन बच्चों के लिए क्या करो, वे नरक से ही मान सकते हैं। खूब डरवाओ उनको कि नरक में ऐसे-ऐसे सताए जाओगे!
एक राजनेता मरा। कंजूस था, महाकंजूस था। अपनी पत्नी से बोला कि देखो, नाहक मेरे कपड़ों को मेरे साथ मत जलाना। अरे, जब जल ही रहे हैं तो कपड़े क्यों खराब करने? यह मेरी वसीयत है। मुझे तो नंगधड़ंग ही चढ़ा देना! पत्नी ने कहा कि लोग क्या कहेंगे! अरे, उन्होंने कहा कि जब मैं मर ही गया तो अब क्या लोग कहेंगे, मुझे क्या लेना-देना! जिंदगी भर लोग क्या-क्या कहते रहे, मैंने फिकर नहीं की, अब मर रहा हूं, अब क्या फिकर! वह वसीयत में लिखवा गया कि मेरे कपड़े नाहक मत जलाना। बेकार का खर्चा करना!
मर रहा है आदमी! और फिर उसने कहा अपनी पत्नी से कि अब मुझे तो पक्का पता ही है कि मुझे कहां जाना है, वहां इतनी गर्मी होगी कि कपड़ों की वहां जरूरत पड़ने वाली नहीं! और कम से कम ये गांधी जो पकड़ा गए हैं, खादी, यह तो वहां बहुत मुश्किल पड़ेगी, इसको पहनना ही मुश्किल होगा, मलमल हो तो चल भी जाए। मुझे पक्का पता है कि मैं कहां जा रहा हूं। क्योंकि जिंदगी भर जो मैंने किया है, मैं जानता हूं। जब दिल्ली आ गया तो नरक निश्चित है! सो वहां आग की लपटों में जलना है। वहां कहां ठंडक कि खादी के कपड़े पहने बैठे हुए हैं। तू फिकर ही मत करना! पत्नी को संकोच तो बहुत लगा, लेकिन थी तो वह भी आखिर कंजूस की ही पत्नी और जिंदगी भर का साथ और सत्संग का असर तो पड़ता ही है। नहीं तो सत्संग का सदगुरुओं ने इतना प्रभाव क्यों माना? उसने भी हिम्मत कर दी और नंगा ही चढ़ा दिया नेता जी को। हालांकि लोगों ने कहा कि बड़ा गजब है! त्याग-तपश्चर्या। लोग भी अदभुत हैं! क्या-क्या निकाल लेते हैं कि त्याग-तपश्चर्या! कि देखो, क्या त्यागी आदमी था! कैसा महात्मा था!
नेता जी तो मर गए। तीसरे रोज रात पत्नी सोयी थी कि किसी ने दरवाजा खटखटाया, बड़े हड़बड़ा कर उसने दरवाजा खोला--कौन इतनी रात आया? देखा कि भूत खड़ा है, पति का भूत। पति ने कहा, निकाल, मेरे ऊनी कपड़े निकाल! पत्नी ने कहा,

हुआ क्या? उसने कहाः हुआ क्या, सब नेतागण वहां पहुंच गए हैं, उन सबने मिल कर नरक को एअरकंडिशन कर लिया। तो मैं ठंड में ठिठुरा जा रहा हूं। खादी से काम नहीं चलेगा, तू ऊनी कपड़े निकाल!
तुम्हारा नरक भी कल्पना है। तुम जैसी चाहो, कल्पना करो। तुम्हारा स्वर्ग भी कल्पना है। तुम जैसी चाहो वैसी कल्पना करो। बच्चों को डराने के लिए है? लेकिन डर से कहीं कोई जीवन वस्तुतः रूपांतरित होता है?
एक छोटा बच्चा आइस्क्रीम खा रहा है। आइस्क्रीम का दीवाना है। आइस्क्रीम मिल जाए तो फिर न उसे रोटी चाहिए, न कुछ और चाहिए, बस, आइस्क्रीम बहुत है। दिन-रात आइस्क्रीम! डाक्टरों ने भी उसके पिता को कह दिया है कि इसके दांत खराब हो जाएंगे, सड़ जाएंगे, इसका पेट भी खराब हो जाएगा, इतनी आइस्क्रीम उचित नहीं है। पिता भी परेशान है कि अब करना क्या है? तो डरवाने के लिए पिता ने कहा कि देख, अगर ज्यादा आइस्क्रीम खाएगा तो अंधा हो जाएगा। उस लड़के ने गौर से पिताजी की तरफ देखा और कहा कि अच्छा तो ज्यादा नहीं खाऊंगा, कम से कम उतनी तो खाने दें कि जितने में आपको चश्मा लगाना पड़ा, कम से कम उतनी तो खाने दें! बहुत से बहुत चश्मा लगेगा। तब पिताजी को ख्याल आया कि वह चश्मा लगाए हुए हैं। यह उन्होंने सोचा ही नहीं था कि बच्चा यह तरकीब निकालेगा। कि कम से कम चश्मा लगाने तक तो खाने ही दें! फिर आगे का आगे देखा जाएगा!
लोग तरकीबें निकाल लेंगे। भय में से तो तरकीबें निकाल ही ली जाएंगी।
और तुमने स्वर्ग के प्रलोभन दिए हैंः ऐसा सुख मिलेगा, वैसा सुख मिलेगा। ये बच्चों को समझाने की बातें हैं, उनको दंड दो और पुरस्कार दो। दंड और पुरस्कार की भाषा बचकानी है, ये प्रौढ़ व्यक्तियों के लिए नहीं हैं। इसलिए उसको दूसरा पद कहते हैं। ये जो नियम हैं, आचार हैं, दूजा।
तीजे पद में सब जग बंधा, ...
और तीजा पद क्या है? पाखंड, जिसमें सारा जग बंधा हुआ है। लोग करते कुछ हैं, हैं कुछ और। दिखाते कुछ और हैं, हैं कुछ और। जब वे देवी-देवता की भी पूजा कर रहे हैं तब भी देवी-देवता की पूजा कर रहे हैं, यह पक्का मत समझना। उनके भीतरी प्रयोजन बड़े और हो सकते हैं।
अब जैसे लक्ष्मी जी की पूजा करते हैं लोग, दीवाली पर। उनको कोई धर्म
से लेना-देना है! जुआरी भी करते हैं। सटोरिए भी करते हैं। उनको कोई धर्म से प्रयोजन है? मगर एक बात उनको बहुत पुराने समय में ही समझ में आ गयी होगी कि अगर विष्णु जी को मनाना है, तो लक्ष्मी जी के पीछे पड़ो! अगर पति को मनाना है तो पत्नी को मना लो, उतना काफी है। इसलिए लोग नेतागणों के पास नहीं पहुंचते, उनकी पत्नियों के पास पहुंच जाते हैं, फूल, फल, मेवा-मिष्ठान लेकर। पत्नी की सेवा कर दो, बस पर्याप्त है, फिर सब ठीक हो जाएगा।
धन की आकांक्षा है! और तुम कहते हो इस देश को धार्मिक देश! दुनिया के किसी देश में धन की पूजा नहीं होती। यहां लोग नगद सिक्कों को रख कर दीवाली पर पूजा करते हैं--और यह धार्मिक लोगों का देश है! धन की पूजा से ज्यादा गर्हित और कोई बात हो सकती है! धन का उपयोग करो; पूजा कर रहे हो! धन उपकरण है, साधन है, साध्य नहीं है। लेकिन कैसे पागल लोग हैं कि धन की भी पूजा चल रही है! आरती उतारी जा रही है--रुपयों की! सिक्कों की! और अब तो सिक्के भी नहीं मिलते तो लोग नोटों की गड्डियां रख लेते हैं; क्या करो? कागजी सिक्के और कागजी ही पूजा और कागजी ही आदमी!
तीजे पद में सब जग बंधा, ...
पाखंड में सारा जग बंधा हुआ है। लोग नियम भी रखते हैं, आचरण भी रखते हैं, उसमें से भी तरकीबें निकाल लेते हैं। उसमें से भी हिसाब निकाल लेते हैं कैसे बचना है! व्रत भी रखते हैं, उसमें से भी उपाय कर लेते हैं।
मैं एक जैन घर में मेहमान हुआ। पर्यूषण के दिन होते हैं, तो हरी सब्जी
की मनाही है। मगर देखते हो, होशियार लोग कैसे हैं? वे केला खा रहे थे, मैंने कहा, यह तुम क्या कर रहे हो? वे कहने लगे, यह हरा है ही नहीं। हरी सब्जी की मनाही है, यह तो पीला है।
अब देखते हो तुम आदमी की चालबाजियां? उन्होंने हरी सब्जी का मतलब हरा रंग; तो केला बराबर चलता है। जैन बराबर केले को लेते हैं, केले की सब्जी

बना लेते हैं पर्यूषण के पर्व में। और दूसरे फलों में क्या अड़चन है? वे हरे हैं। और दूसरी सब्जी में क्या अड़चन है? वे हरी हैं। बस रंग की बात है, निकाल ली तरकीब। पर्यूषण के पहले सब्जियां सुखा कर रख लेते हैं जैन। और फिर उन पर पानी छिड़क कर फिर सब्जी बना ली। जब तुम सुखाते हो तो क्या करते हो? पानी ही उड़ रहा है, कुछ और हो रहा है क्या? नाहक क्यों उपद्रव कर रहे हो, पहले पानी उड़ाओगे, फिर पानी छिड़क कर फिर सब्जी बनाओगे। तो पुराने पानी में क्या हर्जा था, वह इससे शुद्ध था जो तुम डाल रहे हो अब। वह कम से कम नैसर्गिक था। मगर चालबाजियां!
मुसलमान दिन में भोजन नहीं करते रमजान के महीने में; रात में भोजन करते हैं। और फिर दिल खोल कर कर लेते हैं! कि दिन भर के लिए इंतजाम हो जाए। दिन भर उपवास और रात भोजन! प्रयोजन क्या है? किसको धोखा दे रहे हो? क्यों धोखा दे रहे हो?
जैन पर्यूषण के दिन में रात पानी नहीं पीते। तो सूरज ढलते-ढलते एकदम पीते रहते हैं पानी, डट कर पी जाते हैं। इतना पी जाते हैं कि रात में कई बार उठना पड़ता है।
मैं सोहन के घर मेहमान था और कुछ जैन साध्वियां भी आकर मुझसे मिलने के लिए वहां मेहमान हो गई थीं। उन्होंने डट कर पीआ होगा पानी, क्योंकि रात तो पानी पी नहीं सकते, तो रात भर फिर पेशाब करनी पड़ेगी। और जैन साध्वी आधुनिक टॉयलेट का उपयोग नहीं कर सकती। शास्त्र में नियम नहीं, क्योंकि महावीर को पता ही नहीं था कि इस तरह के टॉयलेट कभी बनेंगे! महावीर ने तो ठीक ही नियम दिया था कि कभी भी जल इत्यादि में मल-विसर्जन नहीं करना। ठीक नियम है। क्योंकि जिस जल को पीना है, वही तो पोखरा गांव का, वही तो तालाब गांव का, उसी को पीना है, उसी में स्नान करना है, उसी में मल-मूत्र त्याग करोगे, तो गंदगी फैलेगी। यह स्वच्छता का सीधा नियम था। तो महावीर ने कहा कि जल में किसी भी स्थिति में मल-मूत्र त्याग मत करना लेकिन अब जैन मुनि की और जैन साध्वी की बड़ी मुश्किल है। वह तुम्हारा जो टॉयलेट है, वह तो छोटा सा कुआं समझो। उसमें पानी भरा हुआ है। अब उसमें कैसे मल-मूत्र विसर्जन करें? शास्त्र के विपरीत है। तो जैन साध्वियों ने क्या किया रात भर, थाली में पेशाब कर-कर के जाकर सड़क पर फेंकती रहीं! वह जो सोहन के यहां पहरेदार था, वह बड़ा हैरान हुआ। सुबह जब मैं सोहन के बगीचे में गया तो उसने कहा कि गजब की बाइयां ठहरी हैं! मैंने कहाः क्या हुआ? उसने कहाः रात भर जब देखो तब थाली भरकर लिए चली आ रही हैं, तो मैं सोचूं भी बात क्या है? फिर जब मैं पास जाकर देखा तब मुझे पता चला कि बदबू आ रही है, पेशाब की! तो इन बाइयों को हो क्या गया है?
ये इस तरह के उपद्रव पैदा होंगे। क्योंकि पाखंड! जीवन को सहज ढंग से न जिओगे, जबरदस्ती के नियम थोप लोगे, जो तुम्हारे अनुकूल नहीं हैं, तो फिर उनसे बचने के कोई उपाय खोजने पड़ेंगे। सामने के दरवाजे पर एक आदमी हो तुम और पीछे के दरवाजे से तुम दूसरे आदमी हो।
तीजे पद में सब जग बंधा, चौथा अपरंपारा।
और चौथी है असली बात; सहजता। पाखंड से विपरीत। न तो देवी-देवता हैं वहां--क्योंकि देवी-देवता की पूजा पाखंड है। पाषाण की पूजा पाखंड ही हो सकती है। न वहां "नेम-अचारा।" न तो नियम और आचरण हैं। क्योंकि नियम और आचरण ऊपर से थोपोगे तुम, तो भीतर से कोई रास्ता निकालोगे कि कैसे बचते रहें। एक हाथ से छोड़ोगे, दूसरे हाथ से पकड़ोगे।
तीसरे पद में सारा जग बंधा है, पाखंड। और चौथा पद है अपरंपार का; चौथा
पद है सहजता का। लेकिन यह सहजता तभी संभव होती है, जब अनुभव के पद में समाना हो जाए। तब तुम्हारे भीतर परमात्मा जीता है। तब तुम ऐसे ही सहज हो जाते हो जैसे पशु-पक्षी हैं, वृक्ष हैं, नदी-पहाड़ हैं, चांद-तारे हैं, तुम जबरदस्ती अपने ऊपर कोई चीज थोपते नहीं। तुम्हारे चैतन्य से जो विकसित होता है, उसी के अनुकूल जीते हो। तुम्हारी चेतना एक दर्पण हो जाती है। उस दर्पण में जो झलकता है, वही तुम्हारा शास्त्र है। और यह सारा अस्तित्व उसी प्यारे का विस्तार हो जाता है। उसी परमात्मा का विस्तार हो जाता है। फिर तुम सोच-सोच कर, हिसाब लगा-लगा कर व्यवहार नहीं करते। फिर चालबाजी, कुशलता,

होशियारी, पांडित्य, इनकी कोई जरूरत नहीं रह जाती। तुम्हारा व्यवहार निर्दोष होता है।
जो इस चौथे में जीएगा, उसके लिए द्वार खुल जाते हैं परमात्मा के असली मंदिर के।
सुन्न महल में महल हमारा, निरगुन सेज बिछाई।
वह शून्य के महल में प्रविष्ट हो जाता है। जहां स्वयं निर्गुण उसके लिए सेज बिछाता है। स्वयं परमात्मा उसे अपने में लीन कर लेता है। स्वयं परमात्मा द्वार खोल देता है। सारा अस्तित्व उसके लिए अनावृत हो जाता है।

कल मोतियों को रोल दिया साकी ने
सोने में मुझे तोल दिया साकी ने
ये सुनके कि खुलता नहीं मकसूदे-हयात
मैखाने का दर खोल दिया साकी ने

मधुशाला का द्वार स्वयं परमात्मा खोल देता है। मस्ती बरस जाती है। आनंद की अहर्निश धाराएं बहने लगती हैं। अमृत का आविर्भाव होने लगता है। चेला गुरु दोउ सैन करत हैं, बड़ी असाइस पाई।
फिर तो कहने को कुछ बचता नहीं। गुरु इशारा करता है शिष्य को कि देख! शिष्य गुरु को इशारा करता है कि देख रहे हो! अब तो सैन होती है, इशारे होते हैं। अब तो आंख से आंख की बात हो जाती है। अब जबान को बीच में नहीं लाना पड़ता। आंखों-आंखों में बात हो जाती है, आंखों के इशारों में बात हो जाती है।
चेला गुरु दोउ सैन करत हैं, ...
दोनों मुस्कराते हैं एक-दूसरे की तरफ देख कर। कहें तो क्या कहें? दोनों ही स्वाद ले रहे हैं।
... बड़ी असाइस पाई।
बड़ा चैन मिला। बड़ा आनंद बरसा।
एक कहै चल तीरथ जइए, एक ठाकुरद्वार बतावै।
परमजोति के देखे संतो, अब कछु नजर न आवै।।
लोग कहते हैं, कोई कहते हैं तीरथ चलो, कोई कहते हैं कि चलो मंदिर चलो, कोई कहता है काबा, कोई कहता है काशी, लेकिन मलूकदास कहते हैंः
परमजोति के देखे संतो, अब कछु नजर न आवै।
अब क्या ठाकुरद्वारा? अब क्या काबा और क्या काशी? अब क्या कुरान और क्या गीता? अब कहां आना है, कहां जाना है, परम-ज्योति का दर्शन हो गया है, अब तो वही ज्योति सब तरफ दिखाई पड़ती है।
आवागमन का संसय छूटा, काटी जम की फांसी।
और जिसने उस परम ज्योति को देख लिया, अब मृत्यु नहीं है उसके लिए।
मृत्यु समाप्त हो गई।
आवागमन का संसय छूटा, ...
अब आना नहीं होगा वापस जगत में। क्योंकि जगत एक पाठशाला है, चौथा पाठ अगर सीख लिया तो।
... चौथा अपरंपारा।
अगर उस अपरंपार को अनुभव कर लिया, असीम को अनुभव कर लिया, उस अव्याख्य को, अविगत को अनुभव कर लिया, उस अनिर्वचनीय को अनुभव कर लिया, तो फिर लौट कर नहीं आना होगा, बात खत्म हो गई!
विद्यार्थी जब उत्तीर्ण हो जाता है, तो वापस उसी कक्षा में नहीं लौटता।
कह मलूक मैं यही जानिके, मित्र कियो अविनासी।
मलूक कहते हैं कि मैंने फिर और दूसरी मित्रताएं नहीं बांधीं। क्या बांधो मंदिर, मस्जिद, पंडित-पुजारी, मंत्र-तंत्र, तीरथ! मैंने ये सारी मित्रताएं नहीं बनाईं। मैंने तो उसी एक अविनाशी को अपना मित्र बनाया। और जिसने उसे मित्र बनाया, उसने सब पाया।

इसीलिए खड़ा रहा कि तुम मुझे पुकार लो! जमीन है न बोलती,
न आसमान बोलता
जहान देख कर मुझे
नहीं जबान खोलता,
नहीं जगह कहीं जहां
न अजनबी गिना गया,
कहां-कहां न फिर चुका
दिमाग-दिल टटोलता,
कहां मनुष्य है कि जो
उमीद छोड़ कर जीआ,
इसीलिए खड़ा रहा कि तुम मुझे पुकार लो; इसीलिए खड़ा रहा कि तुम मुझे पुकार लो!

तिमिर समुद्र कर सकी
न पार नेत्र की तरी,
विनष्ट स्वप्न से लदी,
विषाद याद से भरी,
न कूल भूमि का मिला,
न कोर भोर की मिली
न कट सकी, न घट सकी
विरह-घिरी विभावरी,
कहां मनुष्य है जिसे
कमी खली न प्यार की,
इसीलिए खड़ा रहा कि तुम मुझे दुलार लो! इसीलिए खड़ा रहा कि तुम मुझे पुकार लो!

उजाड़ से लगा चुका
उमीद मैं बहार की,
निदाघ से उमीद की
वसंत के बयार की
मरुस्थली मरीचिका
सुधामयी मुझे लगी,
अंगार से लगा चुका
उमीद मैं तुषार की;
कहां मनुष्य है जिसे
न भूल शूल-सी गड़ी?
इसीलिए खड़ा रहा
कि भूल तुम सुधार लो!
इसीलिए खड़ा रहा कि तुम मुझे पुकार लो!
पुकार कर दुलार लो, दुलार कर सुधार लो!

मित्रता बनानी हो तो बस उस एक से। पुकारना हो तो बस उसे। प्रतीक्षा करनी हो तो बस उसकी पुकार की। और खड़े रहना, डटे रहना, पुकारते ही रहना! जैसे सौ डिग्री पर पानी आकर वाष्पीभूत हो जाता है, ऐसे ही सौ डिग्री पर प्रार्थना आकर पूरी होती है।
दीनबंधु दीनानाथ मेरी तन हेरिए।।
कहे ही चले जाना कि देखो मेरी तरफ। कब तक मेरी तरफ नजर न उठाओगे? पुकारते ही रहना, उसके द्वार पर दस्तक देते ही रहना।
दीनबंधु दीनानाथ मेरी तन हेरिए।।
मेरी भी तरफ देखो। माना कि बड़ा विस्तार है संसार और बहुत कुछ तुम्हें देखने को है, लेकिन मैं खड़ा रहूंगा, मैं प्रतीक्षा करूंगा।

खड़ा रहा इसीलिए कि तुम मुझे पुकार लो! पुकार कर दुलार लो, दुलार कर सुधार लो!

अड़े रहना! डटे रहना!

मेरा सजल मुख देख लेते!
यह करुण मुख देख लेते!

सेतु फूलों का बना बांधा विरह-वारीश का जल, फूल की पलकें बना कर प्यालियां बांटा हलाहल; दुखमय सुख
सुखभरा दुख--
कौन लेता पूछ, जो तुम,
ज्वाल-जल का देश देते!
मेरा सजल मुख देख लेते!
यह करुण मुख देख लेते!

नयन की नीलम-तुला पर मोतियों से प्यार तोला, कर रहा व्यापार कब से मृत्यु से यह प्राण भोला! भ्रांतिमय कण
श्रांतिमय क्षण--
थे मुझे वरदान, जो तुम
मांग ममता शेष लेते!
मेरा सजल मुख देख लेते!
यह करुण मुख देख लेते!

पद चले, जीवन चला, पलकें चलीं, स्पंदन रही चल, किंतु चलता जा रहा मेरा क्षितिज भी दूर धूमिल! अंग अलसित
प्राण विजड़ित
मानती जय, जो तुम्हीं
हंस हार आज अनेक देते!
मेरा सजल मुख देख लेते!
यह करुण मुख देख लेते!

घुल गई इन आंसुओं में देव, जाने कौन हाला, झूमता है विश्व पी-पी घूमती नक्षत्र-माला; साध है तुम
बन सघन तम
सुरंग अवगुंठन उठा,
गिन आंसुओं की रेख लेते!
मेरा सजल मुख देख लेते!
यह करुण मुख देख लेते!

शिथिल चरणों के थकित इन नूपुरों की करुण रुनझुन विरह का इतिहास कहती, जो कभी पाते सुभग सुन; चपल पद धर
आ अचल उर!
वार देते मुक्ति, खो
निर्वाण का संदेश देते!
मेरा सजल मुख देख लेते!
यह करुण मुख देख लेते!

पुकारते रहो! प्यास को प्रार्थना बनाते रहो! आता है, निश्चित आता है अतिथि। लेकिन आता है तभी जब तुम्हारी पुकार समग्र हो जाती है। अधूरी- अधूरी नहीं। जब तुम्हारे पूरे प्राण उसमें संलग्न हो जाते हैं। और इस पुकार को ऐसे बांटते मत फिरो, कि थोड़ी सी गणेश जी को दे आए, थोड़ी सी शिव जी को दे आए, थोड़ी सी महेश जी को दे आए, बांटते मत फिरो। इस पुकार को सघन करो! इस पुकार को त्वरा दो, तीव्रता दो! इस पुकार को एकाग्रता दो! उस एक के लिए ही पुकारो! बस एक ही भर देगा! एक ही पर्याप्त है। उस एक के पा लेने पर सब पा लिया जाता है।
दीनबंधु दीनानाथ मेरी तन हेरिए।।
भाई नाहिं बंधु नाहिं, कुटुम परिवार नाहिं,
ऐसा कोई मित्र नाहिं, जाके ढिग जाइए।।
मेरा कोई भी नहीं। नहीं कि भाई नहीं थे, नहीं कि बंधु नहीं थे, नहीं कि परिवार नहीं था, मगर ये होना कुछ होना नहीं है। सब धोखा है। सब नाते-रिश्ते बस शब्दों की बातें हैं।
सोने की सलैया नाहिं, ...
सोने का पांसा मेरे पास नहीं।
... रूपे को रुपैया नाहिं।
मेरे पास कुछ भी नहीं है।
कौड़ी पैसा गांठ नाहिं, जासे कछु लीजिए।
तुम्हारे द्वार पर खड़ा हूं, देने को मेरे पास कुछ भी नहीं है। लेने को शून्य है मेरे पास, पूरा हृदय मेरा शून्य है कि तुम पूरे आओ और समा जाओ और देने को मेरे पास कुछ भी नहीं। यह विनम्रता ही समर्पण है।
धार्मिक आदमी में अहंकार होता है। वह कहता है, मैंने इतने व्रत किए, इतने उपवास किए, इतने पुण्य किए, इतनी तीर्थयात्रा की, इतनी बार पूजा करता हूं, इतनी बार नमाज पढ़ता हूं, इतनी बार विष्णु सहस्रनाम का पाठ करता हूं; अकड़ होती है, अहंकार होता है। वह यह कह रहा है कि मेरे पास सोने की सलैया है, रूपे का रुपैया है, खरीद लूंगा तुम्हें! परमात्मा खरीदा नहीं जा सकता। हां, तुम बिक जाओ उसके हाथ तो बिक जाओ, उसे खरीद नहीं सकते।
ठीक कहते मलूकदास, सीधी-सादी बात, सीधे-सादे शब्दों में पर गहरी, अति गहरी--
सोने की सलैया नाहिं, रूपे को रुपैया नाहिं,
कौड़ी पैसा गांठ नाहिं, जासे कछु लीजिए।।
इसलिए लेने को मेरी कोई सामर्थ्य नहीं। तुम्हें कुछ दे सकूं, इसका कोई उपाय नहीं। सिर्फ झोली फैलाता हूं; आओ और बरसो! तुम्हारी करुणा का भरोसा है, अपने कृत्यों का नहीं। अपने गुणों का कोई भरोसा नहीं है सिर्फ तुम्हारी क्षमा का भरोसा है।
इस भेद को ठीक से समझ लेना।
जो व्यक्ति कहता है मैं ऐसे-ऐसे गुणों का धनी हूं, वह कभी परमात्मा को नहीं पा सकेगा। जो कहता है, मेरे क्या गुण, दुर्गुण ही दुर्गुण हैं, पाप ही पाप मेरे पल्ले हैं, भूलें ही भूलें हैं, कांटे ही कांटे मेरे पास हैं, फूल तो मेरे भीतर खिलता ही नहीं, फूल तो तुम उतरो तो खिलें; तुम्हें घर में बिठाने के लिए भी स्थान नहीं है, तुम्हारे योग्य आसन भी नहीं है, कहां से लाऊं!
सोने की सलैया नाहिं, रुपे को रुपैया नाहिं,
फिर भी पुकारता हूं कि आओ। बस प्रेम है, प्रार्थना है, पुकार है।
खेती नाहिं बारी नाहिं, बनिज व्यौपार नाहिं,
ऐसा कोऊ साहु नाहिं, जासे कछु मांगिए।।
कहत मलूकदास, छोड़ दे पराई आस,
मलूकदास कहते हैं: छोड़ दो सारी आशाएं, छोड़ दो पराए की आशाएं, कोई सहयोग नहीं देगा। न कोई पंडित वहां पहुंचा सकता है, न कोई पुरोहित वहां पहुंचा सकता है, न कोई दान वहां पहुंचा सकता है, न कोई धर्म वहां पहुंचा सकता है।
कहत मलूकदास, छोड़ दे पराई आस,

रामधनी पायके अब काकी सरन जाइए।।
अरे, अगर शरण ही जाना हो तो कहां छोटे-मोटे साहूकारों की शरण जा रहा है? उसकी ही शरण जा! उस एक के ही चरण गह!

जहनो-दिलमें अगर बसीरत हो
तीरगी कैफे-नूर देती है
जीस्तकी राहमें हर-इक ठोकर
जिंदगी का शऊर देती है

जहनो-दिलमें अगर बसीरत हो... अगर तुम्हारे मस्तिष्क में और हृदय में देखने की क्षमता हो, दृष्टि हो, दर्शन की पात्रता हो, अगर तुम आंख के परदे काट सको, दृष्टि को निखार सको, अगर आंख का दर्पण बना सको, ...

जहनो-दिलमें अगर बसीरत हो
तीरगी कैफे-नूर देती है

तो फिर अंधियारा भी प्रकाश हो जाता है। और अगर देखने की क्षमता ही न
हो तो प्रकाश भी अंधेरा है। सुबह भी सांझ है, जिंदगी भी मौत है। और अगर देखने की क्षमता हो...

जहनो-दिलमें अगर बसीरत हो
तीरगी कैफे-नूर देती है

तो अंधेरे में से भी ज्योति की किरणें फूटने लगती हैं, और मृत्यु में
से भी अमृत का दर्शन होने लगता है। और जहर भी जहर नहीं रह जाता, देखने की क्षमता हो तो--

जीस्तकी राहमें हर-इक ठोकर
जिंदगीका शऊर देती है

तो जिंदगी की ठोकरें ठोकरें नहीं रह जातीं बल्कि जिंदगी को जीने की शैली सिखाती हैं। हर ठोकर सौभाग्य हो जाती है। हर राह में पड़ी चट्टान सीढ़ी बन जाती है। हर कांटा फूल हो जाता है। शत्रु भी फिर मित्र मालूम होता है। दुर्दिन भी सुदिन और दुर्भाग्य में भी सौभाग्य के दर्शन होने लगते हैं।

जहनो-दिलमें अगर बसीरत हो
तीरगी कैफे-नूर देती है
जीस्तकी राहमें हर-इक ठोकर
जिंदगी का शऊर देती है

इसलिए असली बात तो एक हैः सिर्फ देखने की कला आनी चाहिए। यह देखने की कला कैसे आए? कौन सी बाधाएं हैं जो तुम्हें देखने से असमर्थ किए हैं? पहली बाधा है तुम्हारा अहंकार, कि तुमने अपने को समझ रखा है कि मैं कुछ हूं। फिर तुमने कुछ अपने को किस कारण समझा है, यह गौण है। कोई प्रधानमंत्री है, कोई राष्ट्रपति है, कोई धनी है, कोई ज्ञानी है, कोई त्यागी है, कोई महात्मा है, तुमने किस कारण अपने को कुछ समझा है, यह बात गौण है। जब तक तुमने अपने को कुछ समझा है तब तक तुम्हारी आंख पर पर्दा है। परमात्मा तो नग्न है, प्रकट है, आंख पर पर्दा तुम्हारी है। तुम्हीं नकाब डाले बैठे हो, तुम्हीं बुर्का ओढ़े बैठे हो। और बुर्का तुम्हारे अहंकार का है।
अहंकार तो पहली अड़चन है। अहंकार को हटाना ही होगा तो ही आंख देखने में समर्थ हो सकेगी। इसलिए अहंकार जिन-जिन चीजों के सहारे खड़ा है, उन-उन से अपना तादात्म्य छोड़ दो। मैं नहीं कहता कि धन छोड़ दो, मैं कहता हूं सिर्फ

तादात्म्य छोड़ दो। समझो अमानत है, अपना नहीं कुछ। सबै भूमि गोपाल की। उसका है।
एक सूफी फकीर के दो बेटे थे, जुड़वां बेटे। बहुत प्रेम था उसे उन बेटों से। फकीर मस्जिद गया था रोज की भांति और दो सांड लड़ते हुए रास्ते पर आए और दोनों बच्चे उसमें कुचल गए।
फकीर घर लौटा। पत्नी ने उसे भोजन करवाया--बताया ही नहीं कि बच्चे मर गए। जैसे रोज भोजन कराती थी--वैसे ही पंखा झला, भोजन लगाया, फकीर को भोजन कराया। फकीर ने बार-बार पूछा कि बेटे नहीं दिखाई पड़ते। क्योंकि वे रोज उसके भोजन के समय उसके पास आ जाते, उसकी थाली में बैठ जाते। पत्नी ने कहा कि भोजन कर लें, फिर मैं बेटों के संबंध में कुछ बताऊं। मगर न तो पत्नी की आंख से आंसू टपका, न उसके चेहरे से कोई खबर मिली कि कुछ दुर्घटना हो गई है। और उसने कुछ कहा नहीं क्योंकि फिर पति भोजन न कर पाएगा।
जब भोजन कर चुका तो पति ने पूछा, अब बोलो, कहां हैं मेरे दोनों बेटे? दिखाई नहीं पड़ते, घर में उनका शोरगुल भी सुनाई नहीं पड़ता। कहीं खेलने गए हैं? पत्नी ने कहा, आप आएं, दूसरे कमरे में मौजूद हैं, मिला देती हूं। उसने चादर ओढ़ा दी थी दोनों की लाशों को, चादर उघाड़ दी।
फकीर तो एकदम ठगा रह गया, उसने कहा, यह क्या? उसकी आंखों से तो आंसू झलकने लगे, उसने कहा, यह क्या? पत्नी ने कहा कि रुकिए, जिसने दिया था उसने वापस ले लिया, आप किसलिए परेशान हो रहे हैं? आपको मालूम है कुछ दिन पहले आपका मित्र तीर्थयात्रा को गया था और अपने हीरे-जवाहरात हमारे पास रख गया है, अभी मुझे खबर आयी है कि वह आनेवाला है। वह आएगा तो हीरे-जवाहरात वापस ले जाएगा। तो हम रोएंगे क्या बैठ कर?
फकीर हंसने लगा। फकीर ने कहा कि मैं तो सोचता था तू साधारण गृहिणी है, लेकिन तू मुझसे आगे गई; तूने मुझसे आगे की बात देखी। सच ही तो कहती है तू, उसकी अमानत थी, उसने वापस ले ली। हमारा क्या था?
मैं भी तुम से इतना ही कहता हूं कि धन हो, पद हो, प्रतिष्ठा हो, कुछ भी हो, छोड़ कर भागने को नहीं कह रहा हूं। क्योंकि सब छोड़ कर भाग जाओगे तो भागोगे भी कहां? यही सब लोग वहां पहुंच जाएंगे जहां तुम भाग के पहुंचोगे। इसलिए मैं भागने के पक्ष में नहीं हूं। क्योंकि भाग कर अगर गए, तो होगा क्या? सब हिमालय चले गए, तो क्या करोगे? वहीं जाकर बसाना पड़ेगा "एम.जी.रोड!" आखिर सभी लोग वहां पहुंच गए, तो दुकानें खोलनी पड़ें, "माणिक बाबू" को गुड़ की दुकान खोलनी पड़े, आखिर इतने लोग रहेंगे तो गुड़ तो चाहिए ही पड़ेगा। और गुड़ आएगा तो मक्खियां आएंगी... और फिर सब आएगा! और जब गुड़ ही आ गया तो फिर और क्या बचेगा? सब उपद्रव हो जाएगा। गुड़ जल्दी ही गोबर हो जाएगा! तुम जरा कल्पना करो कि सारे लोग संन्यासी हो गए और भाग गए। भागोगे कहां? जहां जाओगे वहीं बस्ती बस जाएगी। यही बस्ती फिर पुनरुक्त हो जाएगी। जर्मनी के एक बहुत बड़े विचारक, इमेनुअल कांट ने नीति की परिभाषा में
एक महत्वपूर्ण बात कही है। उसने कहा कि वही नियम नैतिक है, जिसको अगर सारे लोग मानें तो भी व्यवधान पैदा न हो। मैं उसकी इस बात से राजी हूं। वही नियम नैतिक है, जिसको अगर सारे लोग भी मानें तो जीवन में कोई व्यवधान पैदा न हो। इसलिए पुराने ढंग का जो संन्यास है, वह अनैतिक है। वह नैतिक नहीं है। क्योंकि अगर सारे लोग उसे मानें, तो मुश्किल खड़ी हो जाएगी। जीवन में व्यवधान पड़ जाएगा। इतना व्यवधान पड़ जाएगा कि संन्यासी को भोजन देने वाला भी कोई नहीं मिलेगा। अगर सभी लोग संन्यासी हो जाएं तो एक बात पक्की है कि जो लोग हिमालय में संन्यास लेकर बैठे हैं और गंगोत्री के किनारे बैठे हैं और ऋषिकेश में माला जप रहे हैं, वे सब भाग कर आ जाएंगे बस्ती में। दुकाने खोलेंगे और क्या करेंगे? उनको खिलाने-पिलाने वाला भी न रह जाएगा।
जरा तुम थोड़ा सोचो, सारे जैन मुनि हो गए! फिर बड़ी मुश्किल होगी। एक-एक जैन मुनि के लिए, सम्हालने के लिए बड़ा इंतजाम करना पड़ता है।
दिगंबर जैन मुनि सिर्फ जैनों से ही भोजन ले सकता है। और किसी से नहीं।
तो जब वह यात्रा करता है, बड़ी मुश्किल खड़ी होती है, क्योंकि कई गांव में जैनी होते ही नहीं। जैनियों की संख्या ही कितनी है! कोई तीस लाख। साठ करोड़

के देश में तीस लाख की संख्या कोई संख्या है? हजारों गांव हैं जहां जैनी नहीं हैं। तो उनको भोजन कौन दे? तो उनके साथ चौके चलते हैं।
तुम कहोगे, चौका क्यों नहीं, चौके क्यों?
तो उसके पीछे भी कारण हैं। क्योंकि जैन मुनि एक घर से भोजन नहीं लेता।
क्योंकि एक पर बोझ न पड़े। क्या-क्या होशियारियां! तो वह दो-चार घर से भोजन लेता है। तो एक चौका नहीं चल सकता।
अब देखना, नियम बना था इसलिए कि एक पर बोझ न पड़े। बात समझ में आती है। महावीर के समय में हजारों जैन मुनि थे, मुश्किल खड़ी हो गई होगी, बिहार छोटा सा इलाका, वैसे भी गरीब--सदा से गरीब बिहार! और पता नहीं बुद्ध और महावीर भी इसको क्यों चुने! मेरे सामने भी विकल्प था, मैंने कहाः नहीं! बिहार के मित्रों ने बहुत कहा कि आप बिहार ही आ जाएं, मैंने कहा, बहुत हो चुका! बुद्ध-महावीर ने जो भूल की, वह मैं नहीं करूंगा। वैसे ही बिहार भूखा मर रहा है, गरीब है, हर साल अकाल है, कभी बाढ़ है, कभी कुछ, कभी कुछ और ऊपर से यह उपद्रव--बुद्ध और महावीर! फिर इनके साथ हजारों संन्यासी। जिस गांव में महावीर ठहर जाएं, समझो अकाल पड़ गया।
क्योंकि दस हजार जैन मुनि उनके साथ चलें। छोटे-मोटे गांव की तो बिल्कुल समाप्ति ही समझो! उनकी चपेट में ही मर जाए, छोटा-मोटा गांव कहां बचे? !
तो यह ठीक था नियम कि एक घर से ही मत मांगना, नहीं तो बोझ पड़ जाएगा। तो थोड़ा-थोड़ा मांग लेना। चार-छह लोगों पर बंट जाएगी बात। मगर आदमी देखते हो कैसा है? नियम किसलिए बनते हैं और क्या परिणाम होता है? अब दिगंबर जैन मुनि के साथ दस-बारह चौके चलते हैं। मतलब दस-बारह स्त्रियां, उनके पति, नौकर-चाकर, यह सारा दंद-फंद चलता है। जहां दिगंबर जैन मुनि ठहरता है और वहां गांव में अगर जैन नहीं है, तो ये दस-बारह चौके वाले लोग, दस-बारह जगह भोजन बनाते हैं। सड़क के किनारे दस-बारह जगह चौके लगते हैं, तंबू तनते हैं! फिर जैन मुनि आते हैं और एक-एक जगह से थोड़ा-थोड़ा भोजन लेते हैं। एक आदमी के लिए दस-बारह जगह भोजन बनता है! ... ताकि भोजन ज्यादा न बनाना पड़े!!
आदमी की मूढ़ता का कोई अंत नहीं है। तो मैं नहीं हूं उस पक्ष में। मैं कांट से सहमत हूं कि ऐसा नियम अनैतिक हो जाता है जिसको अगर सारे लोग मान लें तो मुसीबत खड़ी हो जाए। इसलिए झूठ अनैतिक है। क्योंकि अगर सारे लोग झूठ बोलें तो बड़ी मुश्किल हो जाए।
समझ लो कि एक दफा हम तय ही कर लें कि पूरा देश झूठ बोलेगा। सबने तय कर लिया कि झूठ बोलेंगे। तुमसे किसी ने पूछा, कितने बजे हैं? तुम बोलते हो, पांच बजे हैं। वह फौरन समझ गया कि चार बजे होंगे, कि छह बजे होंगे। पांच तो बज ही नहीं सकते। किसी ने पूछा, कहां जा रहे हो? तुमने कहा, नदी जा रहा हूं। उसने कहा, स्टेशन जा रहे हैं। नदी जा रहे हैं, यह तो बोला ही नहीं जा सकता। जब सभी लोग झूठ बोल रहे हों तो बड़ा उपद्रव मच जाएगा। वह तो थोड़े से लोग झूठ बोलते हैं तो चलता है, क्योंकि बाकी लोग सच बोलते हैं। वह बाकी लोग सच बोलते हैं, उनके आधार पर छोटी सी संख्या का झूठ भी चल जाता है। असल में झूठ बोलने वाला भी इसी ढंग से बोलता है कि सच समझा जाए। वह भी ऐसे नहीं बोलता कि कोई पकड़ ले कि झूठ है। वह भी दावा करता है कि सच है। झूठ बोलने वाला भी और सब मामलों में सच बोलता है। दस-पांच मामलों में सच बोलता है, तब झूठ बोलता है।
एक आदमी एक सेठ के घर से एक दिन मांग कर ले गया कि जरा एक कटोरी चाहिए,
घर में मेहमान आया है। सेठ ने थोड़ा तो सोचा कि कटोरी देना कि नहीं, मगर कटोरी छोटी सी चीज है, और यह आदमी कुछ बुरा नहीं है, पड़ोस में ही रहता है, दे दी कटोरी।
वह आदमी दूसरे दिन सुबह आया और दो कटोरी लेकर आया!
सेठ ने पूछा कि एक ही ले गए थे। उसने कहा कि मैं क्या करूं, रात उसको बच्चा पैदा हो गया। सेठ ने सोचा तो कि कहीं कटोरी के बच्चे पैदा होते हैं! मगर दो आती हों तो कौन मना करे? सेठ ने कहा कि बड़ा अच्छा हुआ। रख लीं कटोरी। फिर वह आदमी एक दिन कड़ाही मांग कर ले गया। फिर दो कड़ाहियां ले आया। सेठ ने कहाः यह भी आदमी अदभुत है!

फिर एक दिन वह सेठ के घर से बहुत से बर्तन ले गया। सेठ ने दे दिए जितने बर्तन चाहिए थे। सोने-चांदी के मांगे तो वे भी दे दिए। उसने कहा कि अब सब के बच्चे हो जाएंगे तो फिर कहना ही क्या?
दूसरे दिन वह आदमी आया ही नहीं। तीसरे दिन भी नहीं आया तो सेठ ने आदमी भेजा। उसने कहाः क्या करें, वे सब मर गए। सेठ ने कहा कि हद हो गई, बर्तन कहीं मरते हैं? तो उस आदमी ने कहाः जब बर्तनों के बच्चे हो सकते हैं, तो मर क्यों नहीं सकते? अरे, जब जन्म होगा तो मौत भी होगी! चौंकना था तो जन्म के वक्त ही चौंक जाना था, भैया! अब बहुत देर हो गई!
वह जिसको झूठ बोलना हो, वह भी पहले सच बोलता है। दस-पांच सच बातें करता है, तब कहीं ग्यारहवीं झूठ डाल देता है। तब उसकी झूठ चलती है।
इस दुनिया में अधिक लोग अब भी सच्चे हैं, इसलिए झूठ चल रही है। अधिक लोग अब भी चोर नहीं हैं, इसलिए चोरी चल रही है। अधिक लोग अब भी बेईमान नहीं हैं, इसलिए बेईमानी चल रही है।
कांट कहता हैः सभी लोग बेईमान हो जाएं, बेईमानी बंद हो जाए। सभी लोग झूठ बोलें, झूठ बंद हो जाए। आत्मघात हो जाए झूठ का अपने आप।
अगर यह बात सच है और इसीलिए झूठ और बेईमानी और चोरी अनैतिक हैं, तो भगोड़ा संन्यास भी अनैतिक है। हालांकि कांट ने उसके संबंध में कोई उल्लेख नहीं किया, क्योंकि उसको भगोड़े संन्यासियों का कोई बोध नहीं था।
मैं तुम्हें भागने को नहीं कहता। मैं तो कहता हूं, तुम जहां हो वहीं रहो, लेकिन अमानत समझना। अमानत में खयानत मत करना। उसने दिया है, भोगो, जीओ, उपयोग करो, बंधना मत। जिस दिन छीन ले, उस दिन रोना मत, चिल्लाना मत, छाती मत पीटना। दिया था तो धन्यवाद! ले लिया तो धन्यवाद है! दिया था तो उपयोग कर लिया, ले लिया तो जरूर लेने में भी उसकी कोई मर्जी होगी। आंख हो देखने की तो--

जीस्त की राह में हर-इक ठोकर
जिंदगीका शऊर देती है
जहनो-दिलमें अगर बसीरत हो
तीरगी कैफे-नूर देती है

बस, देखने की दृष्टि चाहिए। और दृष्टि पर सबसे बड़ा पर्दा अहंकार का है। फिर जिस कारण भी यह पर्दा पड़ रहा हो, वे सब कारण तोड़ दो। तादात्म्य से पर्दा पड़ता है। धन से जुड़ गए तो धन अहंकार बन गया। कहा कि मेरा है, बस, उपद्रव हो गया। जहां आया "मेरा", वहां आया "मैं"। ज्ञान से कहा "मेरा" है, वहीं उपद्रव हो गया। कहा "मेरा धर्म," "मेरी किताब"--और उपद्रव हो गए।
मत कहना। मेरा कुछ भी नहीं, सब उसका है। उसकी हम पर अनुकंपा है कि अपना अस्तित्व हमें भेंट दिया, कि थोड़ी देर हम उसके अस्तित्व का रस लें। उसने अपने बगीचे में हमें निमंत्रित किया कि हम उसके फूलों की गंध लें। उसके फूलों को तोड़ो मत। उसके फूलों को तोड़ कर तुम मिटा ही डालोगे, मार ही डालोगे। वे न उसके रह जाएंगे, न तुम्हारे रह जाएंगे। फूलों को वृक्षों पर रहने दो।
तादात्म्य मत बनाओ। बस, संन्यास का मौलिक अर्थ हैः किसी भी चीज के मालिक मत बनो। जीओ, और जो हाथ में आए उसका उपयोग करो और जी भर कर उपयोग करो!! बस, मालिक मत बनो! मालिक वही है। उसके अतिरिक्त कोई भी मालिक नहीं। उसके अतिरिक्त जिसने भी मालकियत का दावा किया, वही अधार्मिक है।
रामधनी पायके अब काकी सरन जाइए।
वही धनी है। वही सारे धन का मालिक है। मालिकों का मालिक है। अब उसको पाकर किसकी शरण जाना? इसलिए वे कहते हैं:
अब मैं अनुभव पदहिं समाना।।
सब देवन को भरम भुलाना, अविगति हाथ बिकाना।
अब तो बिक गया एक परमात्मा के हाथ, अब परम धनी से मैत्री हो गयी, अब तो उसमें डुबकी लग गई, अब किसकी करूं पूजा, किसका करूं आराधन? जाऊं काशी कि काबा? अब तो जहां हूं, वही मौजूद है। आंख बंद करूं तो भीतर मौजूद है, आंख

खोलूं तो बाहर मौजूद है। जिसमें देखूं, वही है। पत्थर में भी वही है। चांद-तारों में भी वही। जिस दिन तुम्हें सारा अस्तित्व परमात्ममय दिखाई पड़ने लगे, उस दिन जानना स्वर्ग उतर आया, मोक्ष उतर आया। निर्वाण उतर आया। उस क्षण तुम्हारा जीवन आनंद की पहली बार अनुभूति करेगा। उस दिन तुम्हारा जीवन समारोह बनेगा, उत्सव बनेगा, लेकिन उसके पहले शर्त याद रखना-- रामदुवारे जो मरे!
उसके द्वार पर पहले अहंकार को मार डालना होगा। तो फिर सब कुछ तुम्हारा है। सारा अस्तित्व; अस्तित्व की सारी संपदा, सारी गरिमा, सारा सौरभ।

आज इतना ही।

रामदुवारे जो मरे
आठवां प्रवचन

प्रभु, मुझ पर अनुकंपा करें

पहला प्रश्नः ओशो, यह जो मेरा जन्मों-जन्मों का अहंकार है, वही शायद आपके और मेरे बीच सबसे बड़ी बाधा है। यही अहंकार मुझे आपके चरणों में झुकने नहीं देता, मिटने नहीं देता। प्रभु, मुझ पर अनुकंपा करें और मुझे मिटा कर इसी जन्म में अपने में समेट कर एक कर लें।

संत! अहंकार यदि कुछ होता, तो उसे मिटाया भी जा सकता था। अहंकार तो केवल भ्रांति है। मात्र आभास है। जैसे रस्सी में कोई सांप को देख ले अंधेरे में। फिर भयभीत हो जाए, भाग खड़ा हो, और लोगों से पूछता फिरे कि सांप को कैसे मारूं? उससे तुम क्या कहोगे? दोगे उसे खंजर कि तलवार? उससे तुम कहोगेः दीया ले जाओ, गौर से देखो, सांप है ही नहीं। रस्सी है। अंधेरे में भ्रांति हो गई है।
ऐसा ही अहंकार है। तुमने मान लिया है। अंधेरे में भ्रांति हो गई है। अहंकार ऐसे है जैसे तुम्हारी छाया। पीछे तो चलती तुम्हारे, लेकिन है?
है उसका कोई अस्तित्व? और अगर तुम अपनी छाया से लड़ने लग गए तो बहुत मुश्किल में पड़ोगे। जीत तो न सकोगे, टूटोगे, बुरी तरह हारोगे।
यह अड़चन ठीक से समझ लेना।
छाया से जो लड़ेगा, जीत तो सकता ही नहीं। हारना निश्चित है। इसलिए नहीं
कि छाया तुम्हें हरा सकती है बल्कि इसलिए कि छाया से लड़ोगे तो अपने ही से टूट जाओगे, खंडित हो जाओगे। पराजित होओगे बारबार। छाया बलशाली है, इसलिए नहीं; छाया है ही नहीं, इसलिए। कैसे जीतोगे? लेकिन लड़ने में शक्ति व्यय होगी। और जितनी शक्ति व्यय होगी उतने तुम क्षीण होओगे। तुम जितने क्षीण होओगे उतना लगेगा छाया बलवान है। और इस गणित को मान कर अगर चलते रहे, तो टूट जाओगे अपनी ही छाया से लड़-लड़ कर।
अहंकार से लड़ो मत।
और न केवल तुम खुद लड़ रहे हो, संत, तुम मुझसे भी कहते हो कि मैं भी तुम्हारे अहंकार को मिटाऊं। अहंकार होता तो जरूर मिटाने का कोई उपाय हो सकता था। अहंकार नहीं है। जाग कर गौर से देखो!
इसलिए अहंकार मिटाने की बात ही भूल जाओ। ध्यान को जगाओ! ध्यान से ज्योति जलेगी। उस ज्योति में अहंकार कभी नहीं पाया गया है। दूसरे साधु- संत तुमसे कहते हैंः अहंकार छोड़ो, अहंकार काटो, अहंकार मारो। मैं तुमसे नहीं कहता। मैं तो कहता हूंः ध्यान का दीया जलाओ। फिर खोजो; अगर मिल जाए अहंकार तो मेरे पास ले आना। अब तक तो किसी को भी ध्यान का दिया जलाने पर मिला नहीं। ध्यान का दीया जलते ही तुम जिसे पाओगे, वह है आत्मा, अहंकार नहीं। और उसे मिटाना थोड़े ही है। और तुम मिटाना भी चाहो तो उसे न मिटा सकोगे।
अहंकार को नहीं मिटा सकते, क्योंकि वह है नहीं और आत्मा को नहीं मिटा सकते, क्योंकि वह शाश्वत अस्तित्व है। मिटा तो कुछ भी नहीं सकते--न अहंकार, न आत्मा। अहंकार को रोशनी जला लोगे तो पाओगे कि नहीं है, और रोशनी जली कि पाओगे कि आत्मा है। और आत्मा मेरी और तुम्हारी थोड़े ही होती है! आत्मा तो शुद्ध अस्तित्व है--मेरा भी वही, तुम्हारा भी वही, सबका वही। इसलिए जो आत्मा में प्रविष्ट हो गया, बुद्ध उसके, महावीर उसके, कृष्ण उसके, क्राइस्ट उसके, नानक, कबीर, मलूक सब उसके। जो सागर में उतर गया, सारी नदियां भी उसने पा लीं--जो पहले सागर में उतर चुकी हैं। वे भी उसकी हो गईं।

सलिल-कण हूं कि पारावार हूं मैं?
स्वयं छाया, स्वयं आधार हूं मैं।
बंधा हूं, स्वप्न है, लघु वृत्त में हूं,
नहीं तो व्योम का विस्तार हूं मैं।

समाना चाहती जो बीन-उर में, विकल वह शून्य की झंकार हूं मैं।
भटकता, खोजता हूं ज्योति तम में, सुना है, ज्योति का आगार हूं मैं।

जिसे निशि खोजती तारे जला कर, उसी का कर रहा अभिसार हूं मैं। जनम कर मर चुका सौ बार लेकिन,
अगम का पा सका क्या पार हूं मैं?

कली की पंखड़ी पर ओस-कण में, रंगीले स्वप्न का संसार हूं मैं; मुझे क्या आज ही या कल झरूं मैं। सुमन हूं, एक लघु उपहार हूं मैं।

जलन हूं, दर्द हूं, दिल की कसक हूं, किसी का हाय, खोया प्यार हूं मैं।
गिरा हूं भूमि पर नंदन-विपिन से,
अमर-तरु का सुमन सुकुमार हूं मैं।

तुम अमृत के पुत्र हो।

गिरा हूं भूमि पर नंदन-विपिन से,
अमर-तरु का सुमन सुकुमार हूं मैं।

तुम उस अमृत के वृक्ष के फूल हो--जिसका न कोई जन्म, न कोई मृत्यु!

बंधा हूं, स्वप्न है, लघु वृत्त में हूं,
नहीं तो व्योम का विस्तार हूं मैं।

सोए हो तो छोटे हो, छोटे हो तो ओछे हो, ओछे हो तो अहंकार से भरे रहोगे।
जाग जाओ तो व्योम का विस्तार हो, सारा आकाश हो! तुम्हारी कोई सीमा नहीं फिर। अहंकार सीमा है, आत्मा असीमा है।

समाना चाहती जो बीन-उर में,
विकल वह शून्य की झंकार हूं मैं।
भटकता, खोजता हूं ज्योति तम में,
सुना है, ज्योति का आगार हूं मैं।

तुमने अभी सुना है कि मैं ज्योतिर्मय हूं, जाना नहीं। सुना है कि अमृत-पुत्र हो, पहचाना नहीं। मैं तुम्हें पहचान के सूत्र दे सकता हूं। मैं तुम्हें मार्ग का इशारा दे सकता हूं, इंगित दे सकता हूं। लेकिन संत, तुम चाहो कि मैं तुम्हारे अहंकार को मिटा दूं, यह असंभव! तुम्हारी भ्रांति तुम्हारे होश से जाएगी। तुम्हारी भ्रांति अगर मेरे होश से जा सकती होती, तो बात बड़ी आसान हो जाती! अगर आंख वाला अंधे को रोशनी दिखा सकता, तब तो बड़ा सुगम था जगत में सत्य को पा लेना। आंख वाला औषधि की चर्चा कर सकता है, वैद्य का पता दे सकता है, लेकिन आंख तो तुम्हें अपनी ही तलाशनी होगी। और वही कठिनाई है।
अहंकार नहीं है बड़ी समस्या, बड़ी समस्या है कि ध्यान के लिए जो श्रम करना होता है, ध्यान के लिए जो सतत साधना करनी होती है, उतना सातत्य हम में नहीं है। एक दिन किया, फिर दो दिन विश्राम हो जाता है। तो एक दिन में जो बनाते हैं, वह दो दिन में मिट जाता है। फिर वहीं के वहीं, फिर कोरे के कोरे।

कुछ थोड़ी-सी लिखावट आती है, बस आलस्य में पुंछ जाती है। सातत्य चाहिए। अगर बूंद-बूंद भी सतत टपकती रहे तो चट्टानों को तोड़ देती है।
लेकिन तुम उस श्रम से बचना चाहते हो। तो तुम आशा रखे हो, मैं तोड़ दूं। मैं तोड़ सकता होता तो तुम से पूछता ही नहीं, तोड़ ही देता। नहीं तोड़ सकता हूं, इसका यह अर्थ नहीं है कि नहीं तोड़ना चाहता हूं। अब जिसने रस्सी को सांप समझा हो, उसे ले जाना पड़ेगा रस्सी के पास--और वह जाना नहीं चाहता। वह भागता है। वह भयभीत होता है। उससे कहो कि यह दीया रहा, आओ मेरे साथ, देख लो ठीक से। वह कहता हैः वहां तो मुझे ले ही मत जाओ, वहां सांप है। पहले सांप का मेरा डर मिटा दो, फिर मैं चलूंगा।
मुल्ला नसरुद्दीन तैरना सीखने गया था। पैर फिसल गया, सीढ़ी पर नदी के काई जमी थी। उठा और एकदम घर की तरफ भागा। जिन उस्ताद के साथ गया था, जो उसे सिखाने वाले थे तैरना, उन्होंने चिल्ला कर कहा कि अरे नसरुद्दीन, कहां भागे जा रहे हो? तैरना नहीं सीखना? कितने दिन से तो मेरी जान खाते थे कि तैरना सिखा दो! नसरुद्दीन ने कहाः फिर मिलेंगे। जब तैरना सीख लूंगा तब नदी के पास आऊंगा। अभी पैर फिसल गया, देखा नहीं! अगर जरा और पानी में गिर गया होता तो आज जान गंवाई होती। अब तो तैरना सीख कर ही आऊंगा!
लेकिन तैरना कहां सीखोगे? कोई गद्दे-तकिए बिछा कर थोड़े ही तैरना सीखा जाता है! और कितना ही गद्दा-तकिया बिछा कर तुम हाथ-पैर तड़फड़ाओ, यह तैरना काम नहीं आएगा; जब नदी में जाओगे तभी तैरना सीख सकोगे।
नदी में जाने में खतरा है!
खतरा तो है ही। कौन जाने, सीख पाओ तैरना, न सीख पाओ; कहीं डूब जाओ! कौन जाने, जो ले जा रहा है, खुद भी जानता हो, न जानता हो! दुःसाहस चाहिए! अदम्य साहस चाहिए! और श्रद्धा चाहिए।

ले चल मुझे भुलावा देकर
मेरे नाविक! धीरे-धीरे।

जिस निर्जन में सागर लहरी
अंबर के कानों में गहरी--
निश्छल प्रेम-कथा कहती हो,
तज कोलाहल की अवनी रे!

जहां सांझ-सी जीवन छाया
ढीले अपनी कोमल काया,
नील-नयन से ढुलकाती हो
ताराओं की पांत घनी रे!

जिस गंभीर मधुर छाया में, विश्व चित्र-पट चल माया में-- विभुता विभु-सी पड़े दिखाई, दुख-सुख वाली सत्य बनी रे!

श्रम-विश्राम क्षितिज-वेला से,
जहां सृजन करते मेला से;
अमर जागरण उषा नयन से
बिखराती हो ज्योति घनी रे!

ले चल मुझे भुलावा देकर
मेरे नाविक! धीरे-धीरे।

हम चाहते हैं कोई ले चले। और भुलावा देकर ले चले! यह रास्ता ऐसा नहीं। यहां तो तुम्हें पहले ही सब साफ कर दिया जाएगा। कठिनाइयां भी, चुनौतियां भी, खतरे भी। रास्ता दुरूह है, दुर्गम है। पर्वत के शिखर की तरफ उठना है।

गिरने के खतरे तो हैं ही। उतार नहीं है कि सुगम हो, चढ़ाव है। इसलिए दुर्गम है। इसलिए हांफ भी जाओगे। इसलिए बोझ भी कम कर लेना जरूरी है।
इसीलिए तो रोज-रोज कहता हूंः फेंक दो तुम्हारा कूड़ा-करकट ज्ञान, जो तुमने उधार इकट्ठा कर रखा है। इतना बोझ लेकर पर्वत-शिखरों पर न चढ़ पाओगे, सिर हल्का करो। इतना भार न लिए चलो। भूल जाओ कि हिंदू हो, कि मुसलमान, कि ईसाई, कि जैन, कि बौद्ध, कि सिख! क्योंकि ये सब न भूलोगे तो ये छाती पर बंधे हुए पत्थर हैं। ये तुम्हें आगे न जाने देंगे। इन पत्थरों को लेकर तुम सागर तैरने चले हो? इन पत्थरों को लेकर तुम पर्वत शिखर चढ़ने चले हो? पर्वत शिखर पर तो जैसे-जैसे व्यक्ति ऊंचाई पर जाता है वैसे-वैसे बोझ को कम करना होता है। क्योंकि थोड़ा सा भी बोझ भारी मालूम होने लगता है। एक तो चढ़ाई, खून पसीना होता है, फिर बोझ!
निर्बोझ हो जाओ, निर्भार हो जाओ! छोड़ दो सब ज्ञान, छोड़ दो सब पंथ, छोड़
दो सब मान्यताएं, विश्वास। खाली हो जाओ, शून्य हो जाओ। तो देर नहीं लगेगी दीये के जलने में। दीया जल सकता है। लेकिन खतरा तो लेना ही होगा सब छोड़ने का। इसको तुम पकड़े भी रहो और चाहो कि जीवन-ज्योति जग जाए, तो नहीं हो सकता। जब तक तुम जीवन-ज्योति के सिद्धांतों को मानते रहोगे, जीवन-ज्योति की तस्वीरों की पूजा करते रहोगे, तब तक जीवन-ज्योति न जलेगी। इन तस्वीरों से तुम कितनी ही आशा रखो, रोशनी होने वाली नहीं है।

नाविक! इस सूने तट पर
किन लहरों से खे लाया?
इस बीहड़ बेला में क्या
अब तक था कोई आया?

उस पार कहां फिर जाऊं
तम के मलीन अंचल में?
जीवन का लोभ नहीं, वह
वेदना छद्म-मय छल में।

प्रत्यावर्तन के पथ में
पद-चिह्न न शेष रहा है,
डूबा है हृदय-मरुस्थल
आंसू नद उमड़ रहा है।

अवकाश शून्य फैला है
है शक्ति न और सहारा,
अपदार्थ तिरूंगा मैं क्या
हो भी कुछ कूल-किनारा।

घबड़ाहट होगी जब मझधार में नाव पहुंचेगी। पुराना किनारा छूट जाएगा और नये किनारे का दूर-दूर तक कोई पता नहीं! पुराने सब आधार छूट जाएंगे और नये आधार समय लेते हैं। पहले तो पुरानी भूमि हट जाएगी पैरों के नीचे से, तब बहुत घबड़ाहट होती है कि कहीं मैं अधर में न गिर जाऊं! कहीं मैं अतल में न गिर जाऊं!
मृत्यु जैसा लगता है ध्यान। इसीलिए तो लोग ध्यान की बातें करते हैं, ध्यान नहीं करते। ध्यान के संबंध में शास्त्र पढ़ते हैं, ध्यान नहीं करते। जितनी देर बातें करते हैं, जितनी देर शास्त्र पढ़ते हैं, उतनी देर ध्यान कर लें तो सब हल हो जाए। सब व्याधि कट जाए, औषधि मिल जाए। मगर ध्यान नहीं करते, ध्यान पर बड़ा विवेचन करते हैं। ध्यान के संबंध में बड़ी बाल की खाल निकालते हैं। ध्यान की विधियों के संबंध में खूब लोग जानते हैं। लेकिन ध्यान का स्वाद जरा भी नहीं लिया। उस पार क्या है, वे इसी पार से बता सकते हैं! शास्त्र पढ़ लिए हैं। नावें कैसी होती हैं, उनकी भी तस्वीरें देख ली हैं। मझधार में कैसे तूफान उठते हैं, उनकी भी अफवाहें सुन ली हैं। सब इसी

किनारे बैठे-बैठे! एक इंच पानी में नहीं उतरे। एक डग मझधार की तरफ भरी नहीं। न डांडें उठाईर्ं, न नाव खेई, न कभी खतरा मोल लिया। अपनी-अपनी सुरक्षा में बैठे हैं--खिड़की, द्वार-दरवाजे सब बंद किए! और वही चर्चा चल रही है। रोशनी की चर्चा--और अंधेरे में बैठे हैं! करो चर्चा, करते रहो जन्मों-जन्मों तक, रोशनी चर्चा से नहीं होती।
संत, कठिनाई कुछ और नहीं है, कठिनाई सिर्फ इतनी है कि एक सातत्य को निर्मित करना होगा। चाहे कुछ ही क्षण क्यों न हो, चुप बैठे रहो। छोड़ना है सोचना-विचारना। छोड़ना है कल्पना, छोड़ना है कल्पना के जाल। और लोग क्या- क्या कल्पनाएं बनाए बैठे हैं! या तो स्मृतियों का एक अंबार लगा रखा है, उसी में कुरेदते रहते हैं, लौट-लौट कर पीछे देखते रहते हैं--अहा! कल कितना सुंदर था जो बीत गया! और कल भी तुम थे और तुम प्रसन्न न दिखाई पड़े थे, तब तुम कह रहे थे--अहा! जो कल बीत गया, वह कितना सुंदर था! जो बचपन बीत गया, वह कितना प्यारा था! जो दिन बीत गए, वे सत-युग थे, स्वर्ण-युग थे, राम-राज्य था! या तो पीछे की तुम स्मृतियां बांधे बैठे हो, उन्हीं में खोए रहते हो, या फिर भविष्य की योजनाएं बना रखी हैं। व्यर्थ की योजनाएं, व्यर्थ की कल्पनाएं। छोटी-छोटी बात से मौका भर मिल जाए तुम्हें सरकने का, तो या तो अतीत में सरक जाते हो या भविष्य में सरक जाते हो। और इन दोनों में उलझे रहने के कारण ध्यान नहीं बन पाता।
ध्यान है वर्तमान में होना--न अतीत, न भविष्य।
इतने क्रोधित और परेशान क्यों हो रहे हो, भाई ब्रह्मचारी जी? --मुल्ला नसरुद्दीन विस्मय से बोला--ऐसे उत्तेजित होने की तो कोई बात ही नहीं हुई। और पेट पर से एक चूहा ही निकला है, कोई हाथी तो नहीं निकला। फिजूल में नाराज हो रहे हो!
तुम्हें घटनाओं कीशृंखलाबद्धता का नियम नहीं मालूम--मटकानाथ ब्रह्मचारी ने अपने पलंग पर से उठते हुए कहा--अभी तक मेरी तोंद पर से चींटियां आदि ही निकलती थीं, आज यह चूहा निकल गया। यदि इसी तरह बात आगे बढ़ती गई, तो कल बिल्लियां निकलेंगी, परसों कुत्ते निकलेंगे। फिर कुत्तों पर ही बात तो रुकेगी नहीं। अरे मियां, धीरे-धीरे आदमी और गधे-घोड़े निकलेंगे, गाय-भैंसे निकलेंगी। और एक दिन ऐसा भी आएगा कि हाथी भी निकलने लगेंगे"--ब्रह्मचारी जी गुस्से में बोले--तब किसी को रोकना बहुत मुश्किल हो जाएगा। मेरा पेट पेट न होकर आम रास्ता बन जाएगा!
लोग बड़ी दूर की सोचते हैं! चींटे-चींटियों से हाथियों तक का हिसाब लगा लेते हैं! तो या तो तुम भविष्य में खो जाते हो कि कल ऐसा होगा, कल ऐसा करेंगे। जब ध्यान लगेगा, जब समाधि फलेगी, जब बुद्धत्व का फूल खिलेगा, तो कैसा आनंद नहीं होगा! एक क्षण को लगता है, स्वर्ग उतर आया!
लोग इस जन्म में ही नहीं, अगले जन्मों तक का इंतजाम कर रहे हैं! परलोक
की फिकर कर रहे हैं। स्वर्ग में थोड़ा सा बैंक-बैलेंस हो, इसका इंतजाम कर रहे हैं! स्वर्ग के खाते में भी थोड़ा पुण्य जमा कर रहे हैं। अतीत में लौटते हैं या भविष्य में। और दोनों के मध्य में जो बारीक सी रेखा है वर्तमान की, उसे चूक जाते हैं। बस, उससे चूके कि ध्यान से चूके। उससे चूके कि अहंकार निर्मित होगा। और हाथ तुम्हारे कुछ लगेगा नहीं।
अतीत राख है, कब का राख हो चुका।

जो बीत गई सो बात गई।

जीवन में एक सितारा था,
माना वह बेहद प्यारा था,
वह डूब गया तो डूब गया
अंबर के आनन को देखो,
कितने इसके तारे टूटे,
कितने इसके प्यारे छूटे, जो छूट गए फिर कहां मिले, पर बोलो टूटे तारों पर

कब अंबर शोक मनाता है,
जो बीत गई सो बात गई।

जीवन में वह था एक कुसुम
थे उस पर नित्य निछावर तुम, वह सूख गया तो सूख गया
मधुवन की छाती को देखो,
सूखीं इसकी कितनी कलियां मुर्झाईं कितनी वल्लरियां जो मुर्झाईं फिर कहां खिलीं, पर बोलो सूखे पत्तों पर
कब मधुवन शोर मचाता है
जो बीत गई सो बात गई।

जीवन में मधु का प्याला था तुमने तन-मन दे डाला था
वह टूट गया तो टूट गया
मदिरालय का आंगन देखो
कितने प्याले हिल जाते हैं गिर मिट्टी में मिल जाते हैं जो गिरते हैं कब उठते हैं पर बोलो टूटे प्यालों पर कब मदिरालय पछताता है
जो बीत गई सो बात गई।

मृदु-मिट्टी के हैं बने हुए मधु-घट टूटा ही करते हैं
लघु जीवन ले कर आए हैं
प्याले टूटा ही करते हैं फिर भी मदिरालय के अंदर
मधु के घट हैं मधु प्याले हैं जो मादकता के मारे हैं
वे मधु लूटा ही करते हैं
वह कच्चा पीने वाला है
जिसकी ममता घट-प्यालों पर
जो सच्चे मधु से जला हुआ
कब रोता है, चिल्लाता है
जो बीत गई, सो बात गई।

पहला सूत्र ध्यान काः जो बीत गई सो बात गई। फिर लौट-लौट मत देखो। फिर स्मृतियों को मत कुरेदो। स्मृतियों को मत जगाते रहो। जगाते रहोगे, वे जागती रहेंगी। जगाते रहोगे, उनमें पुनः-पुनः प्राण डालते रहोगे। उन्हीं से घिरे रहोगे।
लोग बैठे हों तो उनसे पूछो कि क्या कर रहे हो? बस दो काम में से एक कुछ
कर रहे होंगे--या तो अतीत में उधेड़बुन चल रही होगी या भविष्य में।
अतीत जा चुका और भविष्य अभी आया नहीं। दोनों का अभाव है। और अभाव में तुम जीते हो। उसी अभाव से अहंकार निर्मित होता है। भाव में जीओ; अस्तित्व में जीओ। अस्तित्व के सघन प्रकाश में अहंकार की छाया नहीं बनती फिर। अस्तित्व की सघन अग्नि में सब जल जाता है कूड़ा-करकट। और कितनी ही तुम योजनाएं बनाओ भविष्य की, कितनी ही कल्पनाएं सजाओ, कितने ही सपनों मेंशृंगार भरो, कितने ही सपनों को निर्मित करो--सब मिट्टी में मिल जाएंगे। क्योंकि अस्तित्व तुम्हारे सपनों के अनुसार नहीं चलता। अस्तित्व तुम्हें मानने को मजबूर नहीं है। अस्तित्व का अपना ढंग है, अपनी शैली है। अस्तित्व

की अपनी गति है। एक-एक की सुनेगा तो बहुत मुश्किल में पड़ जाएगा। किस-किस की सुने?
इसलिए अस्तित्व तटस्थ भाव से बहा जाता है। तुम अगर उसके साथ बह लो तो ध्यान लग जाए। लेकिन तुम साथ बहो कैसे? तुम्हारी अपनी योजनाएं हैं, तुम अस्तित्व पर आरोपित करना चाहते हो। तुम चाहते हो यह जीवन की धारा बाएं मुड़े, कि दाएं मुड़े, कि अभी ठहरे, कि अभी विश्राम करना है, कि अभी सागर में न गिरे, अभी ऐसा हो, अभी वैसा हो... तुम शर्तें लगाए जाते हो। तुम अकेले हो? अनंत-अनंत लोग हैं, सबकी शर्तें हैं। अस्तित्व किसकी सुने, किसकी न सुने? अस्तित्व चुपचाप चला जाता है--अपनी गति में, अपनी मदमस्ती में। काश, तुम अस्तित्व के साथ बह सको तो ध्यान हो जाए। तुम्हारी फिर कोई मांग नहीं होनी चाहिए।
संन्यास का मेरे लिए यही अर्थ हैः कोई मांग नहीं, कोई अपेक्षा नहीं।
जो है, उससे राजी होना संन्यास है। जो है, जैसा है, सुंदर है, शुभ है; उसमें तल्लीन होना संन्यास है। उसमें लवलीन होना संन्यास है। जो है, उसमें परितुष्ट होना। फिर कहां अहंकार! न रहा अतीत, न रहा भविष्य। बस, उन्हीं दोनों के सहारे अहंकार खड़ा होता है। ये दो बैसाखियां हैं जो अहंकार को खड़ा करती हैं। तुम आए वर्तमान में कि बैसाखियां गिर गईं।
और ध्यान रखो, इतना जो विषाद दुनिया में दिखाई पड़ता है, इतना जो दुख दिखाई पड़ता है, उसका अधिकतम कारण है, अपेक्षाएं। अपेक्षाएं हैं, तो आज नहीं कल जब अपेक्षाएं टूटेंगी तो प्राणों पर संकट के बादल घिर आएंगे। मेरी अमीर विधवा मौसी के बच्चे नहीं थे। मगर उनके पास धन खूब था। उन्हें कुत्ते पालने का शौक था। उनके घर में पांच सौ दस कुत्ते थे। मैंने जिंदगी भर धन पाने के लोभ में उन्हें खुश रखने की हर तरह से कोशिश की। उनके नापाक बदबूदार कुत्तों को खूब प्यार जताया, पागल कुत्तियों की पूछों पर हाथ फेरा, खुजलीदार पिल्लों को उठा कर गले से लगाया। मेरी मौसी कल मर गई। -- ढब्बू जी ने अपने दोस्त मुल्ला नसरुद्दीन को बताया।
नसरुद्दीन ने उत्सुकता से पूछाः अच्छा, तो वह वसीयत में तुम्हारे लिए क्या लिख गई?
ढब्बू जी ने रोते हुए बतायाः वे ही पांच सौ दस मरियल कुत्ते, कुत्तियां और पिल्ले!
तुम क्या चाहते हो, अस्तित्व उसे वैसा ही पूरा नहीं करेगा। अस्तित्व
जो चाहता है, तुम उससे राजी हो जाओ। दुखी होने का रास्ता हैः तुम अस्तित्व से मांग करो कि ऐसा होना चाहिए। और सुखी होने का रास्ता है कि जैसा हो, तुम अस्तित्व को धन्यवाद दे सको कि बड़ी कृपा है, मैं शुक्रगुजार! मैं आभारी, मैं अनुगृहीत!
ऐसे अतीत और भविष्य से, संत, मुक्त हो जाओ, तो ध्यान सुगमता से सध जाएगा। इन दोनों के बीच में ही ध्यान है। ध्यान यानी वर्तमान का क्षण सब कुछ है। पीछे भी सब झूठ, आगे भी सब झूठ। सत्य है अभी और यहीं। इस क्षण अगर तुम्हारे भीतर कोई विचार की तरंग न रह जाए, फिर कहां अहंकार? फिर कहां हो तुम? फिर एक सन्नाटा है, एक अपूर्व सन्नाटा! उसी सन्नाटे में आत्म-अनुभव है, निर्वाण है, मोक्ष है, समाधि है। उसी सन्नाटे में सच्चिदानंद का आगमन है। सत्यम्, शिवम्, सुंदरम के फूल उसी सन्नाटे में खिलते हैं। वही सन्नाटा वसंत है।
मैं नहीं कर सकूंगा। राह दे सकता हूं, चलना तुम्हें होगा। मैं तुम्हारे लिए नहीं चल सकता। बुद्ध ने कहा हैः बुद्ध केवल मार्ग दे सकते हैं, इशारे दे सकते हैं। बुद्ध तो मील के पत्थर हैं, जिन पर तीर बना है कि इतना और चलो, इतने मील और चलो तो फलां जगह पहुंच जाओगे। न तो तुम्हें हाथ पकड़ कर जबरदस्ती ले जाया जा सकता है। क्योंकि जो जबरदस्ती आए, वह मुक्ति नहीं होगी। मुक्ति और जबरदस्ती!
तुम्हें भेंट में भी नहीं दी जा सकती मुक्ति। क्योंकि भेंट की कोई कीमत करना ही नहीं जानता। कितनी चीजें तुम्हें भेंट में मिली हैं, तुमने कोई कीमत की? जीवन तुम्हें भेंट में मिला है, तुमने कभी परमात्मा को धन्यवाद दिया कि हे प्रभु, तेरा मैं अनुगृहीत हूं, क्योंकि तूने मुझे जीवन

दिया? जीवन से और क्या मूल्यवान हो सकता है? नहीं, तुम्हारे भीतर कोई अनुग्रह नहीं उठा। उसने तुम्हें चैतन्य दिया है, तुमने अपने चैतन्य के लिए धन्यवाद दिया? नहीं, शिकायतें की होंगी, संदेह प्रकट किए होंगे, न अनुग्रह जगा, न श्रद्धा जगी। ऐसे ही तुम्हें अगर मोक्ष भी मिल जाए, तो तुम मोक्ष में भी शिकायतें करोगे कि आज धूप ज्यादा है, कि आज वर्षा हो गई, कि आज कपड़े सुखाने थे, कि आज यह करना था, कि आज वह करना था। तुम्हें मोक्ष भी अगर मिल जाए मुफ्त... परमात्मा ने सब दिया है, मोक्ष को बचा रखा है। वह तुम्हें खोजना है। ताकि तुम उसकी कीमत कर सको, उसका मूल्य कर सको।
परमात्मा ने तुम्हें सब देकर देख लिया कि तुम्हें जो भी दिया जाए, उसका तुम मूल्य नहीं करते। तुम अपने श्रम से जिसे पाते हो, उसका ही मूल्य करते हो। दो कौड़ी की चीजों का भी तुम मूल्य करते हो, अगर श्रम से मिलें। और अगर मुफ्त मिल जाएं तो तत्क्षण तुम्हारे मन में उनकी कोई कीमत नहीं रह जाती। कीमत आंकने का तुम्हारे पास एक ही उपाय, एक ही मापदंड है और वह यह है कि कितना श्रम तुमने किया।
परमात्मा ने जो आखिरी बहुमूल्य चीज है, जो परम जीवन है, वह रोक रखा है।
सब दे दिया है तुम्हें, उसे खोजने की सारी सुविधा दे दी है, उसे पाने का सामर्थ्य दे दिया है, उस तक पहुंचने की पूरी की पूरी शक्ति दे दी है, मगर उस परम शिखर को छोड़ रखा है। यह शुभ किया है। यह उचित ही किया है। उसे तुम्हें ही पाना होगा। उसे कोई तुम्हें नहीं दे सकता। और कोई अगर कहे कि मैं तुम्हें दूंगा, तो तुम सावधान रहना, कोई धोखा है, कोई बेईमानी! जो ऐसा कहता है, तुम्हें लूटेगा। जो ऐसा कहता है, उससे बड़ा धोखेबाज इस दुनिया में कोई और नहीं।
सत्य को पाना होता है। मोक्ष को पाना होता है। ये चीजें हस्तांतरित नहीं होतीं। नहीं तो एक बुद्ध पर्याप्त था, सारी दुनिया को बुद्धत्व बांट देता।
संत, श्रम करो! तुम्हें मैंने नाम दिया हैः संत। क्योंकि मैं संभावना देखता हूं। क्योंकि मैं देखता हूं उस सूरज को जो तुम्हारे अंधेरे में छिपा है; उस सुबह को, जो तुम्हारी अमावस में छिपी है। अमावस के गर्भ में एक भोर है, जो कभी भी प्रकट हो सकती है। जरा उठो, जरा चलो, छोड़ो आलस्य! और छोड़ो यह भरोसा कि कोई और तुम्हें दे सकेगा, अन्यथा यह तुम्हारे आलस्य को ही छिपाने का एक ढंग होगा।
हम बड़े तर्क निकाल लेते हैं अपनी चीजों को छिपाने के।
एक मित्र मेरे पास आते हैं, वर्षों से आते हैं। आकर चरण छू जाते हैं,
और कहते हैं कि बस, आपके चरण छू लिए, अब और क्या करना है! मैंने उनसे कहा कि अगर यह सच है, तो दुकानदारी भी बंद करो! ... बड़े व्यापारी हैं।... मेरे चरण छू लिया, अब दुकानदारी भी क्या करना!
उन्होंने कहाः यह कैसे होगा? दुकानदारी तो करनी ही होगी। तो मैंने कहाः तो फिर तुम धोखा किसको दे रहे हो? दुकानदारी तुम करोगे, मेरे चरण छूने से काम नहीं होता। लेकिन परमात्मा मेरे चरण छूने से मिलेगा--वह तुम्हें करना नहीं है। जो तुम्हें चाहिए, जो तुम्हें पाना है--धन--वह तो तुम दौड़ रहे हो खुद, वह तुम किसी पर नहीं छोड़ रहे हो, वह मेरे चरणों पर नहीं छोड़ रहे। जो तुम्हें पाना नहीं है और ऐसे ही मिलता हो मुफ्त तो क्या हर्जा है, वह तुम मेरे चरणों पर छोड़ रहे हो! अगर श्रद्धा पूरी है तो सब छोड़ दो और अगर श्रद्धा पूरी नहीं है, तो फिर यह श्रम करो। श्रद्धा को आलस्य छिपाने का आवरण मत बनाओ।
आदमी के मन में बड़े तर्क होते हैं। बड़ी होशियारियां होती हैं। हर चीज
से बचने का रास्ता निकाल लेता है।
मुल्ला नसरुद्दीन को किसी ने खबर दी कि नसरुद्दीन, तुम यहां बैठे होटल में क्या कर रहे हो? तुम्हारी पत्नी एक आदमी से घर में प्रेम कर रही है। नसरुद्दीन ने कहा कि अभी ठीक करता हूं उसको! चमड़ी उधेड़ कर रख दूंगा! शक तो मुझे भी था। अभी जाकर उसे नसीहत सिखाता हूं!
नसरुद्दीन भागा हुआ घर पहुंचा, खिड़की में से छलांग लगा कर अंदर घुस गया। वह आदमी पत्नी के साथ पलंग पर लेटा हुआ था। वह आदमी भी उठ कर एकदम से

अलमारी में छिप कर खड़ा हो गया। नसरुद्दीन तो गुस्से में आगबबूला हो ही रहा था, उसने अलमारी खोली, बस अलमारी खोलते ही से उसका एकदम गुस्सा शांत हो गया। वह था गांव का पहलवान। बोला कि उस्ताद, यहां दिन में भूत बन कर खड़े होकर मेरे बच्चों को डराने की कोशिश करते हो, शर्म नहीं आती! तभी तो मैं कहूं कि फजलू रोज मुझसे कहता है कि पिताजी, घर में भूत है! जरूर तुम्हीं को देख कर डर गया होगा। अपने घर जाओ, कुछ काम करो, भाई!
देखा, तरकीब निकाल ली उसने!
मगर कोई ऐसे मानने वाले थोड़े ही होते हैं। और पहलवान से जब तुम इस तरह कहोगे तो पहलवान भी समझ गया कि हालत क्या है!
दूसरे दिन फिर नसरुद्दीन घर पहुंचा, देखा कि छाता बाहर रखा है किसी का, जूते उतरे हैं। जूते का बड़ा लंबा ढंग देख कर ही समझ गया कि वही पहलवान होना चाहिए। छाते पर देखा तो उसका नाम लिखा है। उठा कर छाते को अपने पैर पर रख कर तोड़ डाला। दो टुकड़े कर दिए। और कहा कि हे प्रभु, अब वर्षा कर दे! ... क्या करो! ... अब हो जाए वर्षा! चखा दे इसको मजा!
आदमी न मालूम कितने हिसाब खोज लेता है, जिस चीज से बचना हो! सावधान रहना अपने मन से, तुम्हारा मन बहुत तर्क-कुशल है। वह आलस्य को श्रद्धा कह सकता है। उसे शब्दों पर शब्द की पर्तें जमाने में कोई अड़चन नहीं आती। वह बेईमानी को आस्तिकता बना लेता है। वह पाखंड को धर्म बना लेता है। वह थोथे आडंबर को नीति मानने लगता है। वह दिखावे को, दूसरों के सामने प्रदर्शन करने को सदाचार समझ लेता है।
बहुत जागरूक होकर अपने मन की चालबाजियों को देखो।
संत, संतत्व तो घटना है। घटेगा। और मैं खुश हूं जिस ढंग से तुम विकसित
हो रहे हो। इधर इन पांच-सात वर्षों में बहुत कुछ हुआ है। तुम्हारे जीवन में बहुत कुछ बदला है। लेकिन बहुत कुछ अभी और होना है। चलो, आकांक्षा भी पैदा हुई कि यह अहंकार जाए, यह भी क्या कम है! लोगों की आकांक्षाएं तो हैं कि अहंकार कैसे भरे, कैसे बढ़े? तुममें यह आकांक्षा पैदा हुई कि अहंकार जाए, यह भी शुभ लक्षण है। वसंत का पहला फूल खिला जैसे! अब और फूल भी आते ही होंगे। पहले फूल ने खबर दे दी कि वसंत आ गया, अब दूर नहीं है।
और मैं तुम्हारे विकास से खुश हूं। लेकिन, अभी बहुत यात्रा पड़ी है। जब मैं कहता हूं कि मैं तुम्हारे विकास से खुश हूं तो इतना ही समझना कि तुम्हें बल दे रहा हूं, तुम्हें आश्वासन दे रहा हूं। तुम्हें आश्वस्त कर रहा हूं कि इतना चल लिए हो, थोड़ा और चलो, थोड़ा और चलो। धीरे-धीरे, चलते-चलते, एक-एक कदम चलते-चलते हजारों मील की यात्रा पूरी हो जाती है।
बुद्ध एक पहाड़ी रास्ते से गुजर रहे थे। आशा थी कि गांव पहुंच जाएंगे दोपहर तक, लेकिन सांझ होने लगी। आनंद थक गया है, बहुत थक गया है। बुद्ध भी थक गए हैं। पहाड़ी रास्ते पर एक खेत में बने झोपड़े के पास रुके हैं। आनंद ने झोपड़े के बाहर बैठे बूढ़े किसान से पूछा--उसकी बुढ़िया भी बैठी वहीं कुछ चरखा कात रही है--पूछा कि गांव कितनी दूर है? उस बूढ़े ने कहाः होगा यही कोई चार मील। चार मील सुनते ही आनंद का तो चेहरा और उतर गया। चार कदम चलने की हिम्मत न थी, गिरी-गिरी हालत हो रही थी कि अब गिरे तब गिरे, इतने थक गए थे! भूखे, प्यासे, दिन भर की तपन। बुढ़िया ने अपना चरखा चलाना रोक दिया और अपने बूढ़े से कहा जरा होश से बातें करो, देखते नहीं कितने थके-मांदे यात्री हैं, अरे, दो मील बहुत होगा! और बुढ़िया ने कहा कि मैं कहती हूं कि दो मील है। यह बुढ़ऊ की बातें मत सुनो, इनको कुछ होश नहीं, सठिया गए हैं।
थोड़ी हिम्मत आई आनंद में। लेकिन बुद्ध हंसे।
रास्ते में आनंद पूछने लगा, आप हंसे क्यों? बुद्ध ने कहाः इसलिए हंसा
कि बुढ़िया ने जो काम किया, वही काम मुझे चौबीस घंटे करना पड़ता है। चाहे चार मील हो कि चालीस मील हो, मैं कहता हूंः यही दो मील, यही दो मील!
और यही हुआ। जब दो मील चलने के बाद गांव नहीं आया तो फिर किसी राहगीर
से पूछा आनंद ने कि भई, गांव कितनी दूर है, दो मील सुना था, दो मील तो निकल भी गए। उसने कहाः यही होगा कोई दो मील, बस अब आया! और दो मील चल कर भी गांव नहीं आया। बुद्ध ने कहाः अब समझे? उस बुढ़िया की भाषा मैं समझा! बूढ़ा सठिया नहीं गया था, बूढ़ा सच्चा ही कह रहा था। लेकिन बुढ़िया ने करुणा की, उसने

कहाः जरा देखते नहीं कितने थके-मांदे लोग, इनको चार मील बताते शर्म नहीं आती? अरे, दो मील बहुत!
रास्ता तो लंबा है। लेकिन इतना भी लंबा नहीं कि पूरा न हो सके। मंजिल कठिन तो है, मगर असंभव नहीं। साधना तो करनी होगी, साध्य है। दुरूह है, दुर्गम है, असाध्य नहीं! फिर तुम जैसा चल आए हो, जितना चल आए हो, उससे आशा बंधती है कि आगे भी रास्ते ठीक मिलते जाएंगे।
मुझ पर मत छोड़ो! मुझ पर छोड़ने में खतरा है। छोड़ा मुझ पर कि तुम बस बैठ जाओगे।
यही तो इस पूरे देश का दुर्भाग्य है। इसने छोड़ दिया सब, मान लिया कि भगवान की इच्छा होगी तो सब हो जाएगा। भगवान की इच्छा से निश्चित सब हो सकता है, मगर पहले तुम्हें अपनी पूरी इच्छा को श्रम में संलग्न कर देना होगा। तुम जब अपनी इच्छा को पूरा का पूरा श्रम में संलग्न कर देते हो, उसी क्षण भगवान की ऊर्जा तुम्हें मिलनी शुरू होती है, उसके पहले नहीं।
तुम अपना पूरा श्रम ध्यान में लगा दो। मैं तो साथ खड़ा ही हूं! और परमात्मा भी तुम्हारे साथ खड़ा है। सारा अस्तित्व तुम्हारे साथ है। जब भी कोई व्यक्ति ध्यान की दिशा में उतरता है, सारा अस्तित्व आनंदमग्न हो उसे सहयोग देता है, क्योंकि कोई भूला-भटका घर आ रहा है। कोई दूर निकल गया वापस लौट रहा है। कोई बीज फूट रहा है, अंकुरित हो रहा है, पल्लवित हो रहा है। आकाश उसे छाया देता है, सूरज उसे गर्मी देता है, बादल उसे पानी देते हैं। भूमि उसे प्राण देती है। यह सारा अस्तित्व उसके लिए सहयोगी हो जाता है।
हां, अस्तित्व के विपरीत चलना हो तो तुम अकेले रह जाते हो। अहंकार की यात्रा अकेले की यात्रा है। ध्यान की यात्रा में सारा अस्तित्व सहयोगी है। मगर अस्तित्व पर ही मत छोड़ देना। तुम्हें तो श्रम करना ही है। अस्तित्व सहयोग देगा।
और तुमने अब तक जैसा किया है, वह शुभ है, ठीक दिशा में है। तुम्हारे कदम ठीक दिशा में पड़ रहे हैं। जरा लौट कर पांच-सात साल पहले की अपनी शक्ल याद करो, संत! सब बदल गया है!
संत जब शुरू-शुरू में यहां आए और ध्यान करते थे तो ध्यान में मालूम है
वह क्या करते थे? पंजाबी हैं! तो घूंसे चलाते। गालियां देते! जैसे किसी को मार रहे हों, किसी की हत्या कर रहे हों। पंजाबी ध्यान भी करे तो है तो पंजाबी ही! और जब वह ध्यान में आ जाते तो फिर हिंदी नहीं बोलते थे, फिर पंजाबी ही। अब सब बदल गया है। संत के चेहरे से पंजाबीपन विदा हो गया है, आदमियत की झलक आने लगी है। एक सरलता आई है। आंखों में भी एक शांति आई है। व्यक्तित्व में एक सौम्यता आई है। वह लठैतपन चला गया। वे जो घूंसे ध्यान में उठते थे, वह जो मार-पीट की वृत्ति ध्यान में जगती थी, वह सब शांत हो गई है। आधा काम तो पूरा हो गया। और जब आधा हो गया तो शेष आधा भी हो जाएगा! चले चलो! चले चलो!!

दूसरा प्रश्नः ओशो, मैं धनी होना चाहता हूं, बड़ा पद भी पाना चाहता हूं, सुंदर स्त्री भी। मैं क्या करूं?

तुम जरूर किसी धोखेबाज के हाथ में पड़ोगे, पहली तो बात, यह ख्याल रखना। क्योंकि इस तरह की आकांक्षाओं वाले लोग ही शिकार बनते हैं चालबाजों के। तुम अगर धनी होना चाहते हो, तो जरूर कोई तुम्हें ताबीज देगा और लूटेगा। जितना तुम पर है, वह भी जाएगा! जरा सम्हल कर चलना, बड़ी गलत आकांक्षा है!
एक मुसलमान युवक मेरे पास आया। कुछ दिन मेरे पास रहा। चालबाज था। मैंने उसको कहा भी कि तू यह सब चालबाजी छोड़ दे, नहीं तो मेरे पास ज्यादा देर नहीं टिक सकेगा। लेकिन वह तो आया ही इसलिए था क्योंकि मेरे पास इतने लोग आते-जाते हैं, इनमें से किसी न किसी को वह फांस ले। और लोग आ-आ कर मुझसे शिकायत करने लगे कि उसने हमसे सौ रुपये ले लिए। कोई कहता आकर, वह कहता-- उसने हमसे अंगूठी ले ली। कोई कहता, उसने हमारी घड़ी ले ली। मैं उनसे पूछता कि कोई तुमसे घड़ी ले कैसे लेगा? तुमसे अंगूठी ले कैसे लेगा? तुमसे सौ रुपये का नोट कोई ले कैसे लेगा? उसने कहा कि उसने हमें पहले चमत्कार करके

दिखाया। एक रुपये का नोट लिया, उसके दो बना दिए! जब उसने एक के दो बना दिए तो हमने सोचा कि सौ के भी दो सौ बना देगा। वह सौ लेकर नदारद हो गया है। होने ही वाला है यह।
तो मैं उनसे कहता कि तुम उसी को दोष दोगे या अपने को भी दोष दोगे? वह
तो चालबाज है, जाहिर है। मगर तुम कुछ ईमानदार हो, ऐसा नहीं। आखिर बेईमान तो तुम भी पक्के हो! तुम सौ रुपये के दो सौ रुपये बनवा रहे थे, तुमको अगर धोखा दे गया तो कुछ बुरा नहीं किया। तुमको ठीक दंड मिला है। तुम अगर अपनी अंगूठी को दो अंगूठियां बनवा रहे थे... और उसे कुछ थोड़ी सी हाथ की कलाएं आती थीं, एकाध नोट को वह दो नोट बना कर दिखा देता था। वह सब झूठा खेल, सब हाथ का खेल। मगर जब कोई आदमी एक रुपये के नोट को दो रुपये का नोट बना कर दिखा दे या एक अंगूठी से दो अंगूठी बना कर दिखा दे, तो फिर तुम्हारे भीतर लोभ जगता है। लोभ खतरनाक अवस्था है। कोई न कोई तुम्हें सताएगा; कोई न कोई तुम्हें लूटेगा।
और जो लोग मुझसे आ आ कर शिकायत करते, वे कहते कि वह बेईमान है, उसको आप यहां क्यों टिकने देते हैं? मैं उनसे कहता कि तुम को भी मुझे नहीं टिकने देना चाहिए, तुम भी कोई ईमानदार नहीं हो।
एक यहूदी अपने बेटे को समझा रहा था कि बेटा, अब तू दुकान पर बैठना शुरू कर। और इसके पहले कि दुकान पर बैठे, कुछ बातें सीख ले। जैसे, मेरे पिताजी ने मुझे बताया था, वह मैं तुझे बताता हूं। उन्होंने दो सूत्र मुझे बताए थे। पहला सूत्रः कि हमेशा अपने वचन का पालन करना, ताकि दुकान की प्रतिष्ठा हो। और दूसरा उन्होंने मुझे सूत्र बताया था कि भूलकर भी किसी को वचन मत देना। न रहेगा बांस, न बजेगी बांसुरी।
दुकान पर नैतिक जीवन जीना होता है। तो बाप अपने बेटे से बोला कि देख,
कल का ही सवाल है। एक आदमी भूल से सौ रुपये के नोट की जगह मुझे दो सौ रुपये के नोट दे गया--वे आपस में चिपके हुए थे। तो उसने समझा एक है। वह जब सीढ़ियां उतर रहा था, तभी मैंने देखा तो दो नोट थे। अब सवाल यह उठता है--व्यावसायिक नैतिकता का सवाल--कि मैं अपने पार्टनर को बताऊं कि न बताऊं?
यह देखते हो? यह ईमानदारी है! व्यावसायिक नैतिकता है! वह आदमी सीढ़ियां ही उतर रहा है! उसका तो सवाल ही नहीं उठता कि उसको बताना है! अपने पार्टनर को बताऊं कि नहीं बताऊं?
तुम कहते होः "धनी होना चाहता हूं, सुंदर स्त्री पाना चाहता हूं, बड़ा
पद पाना चाहता हूं।"
तुम धोखे में पड़ोगे। पाओगे क्या? जिन्होंने पा लिया, उन्हें क्या मिला है?

सागरों की खनक खरीदी है
दोस्ती के भरम खरीदे हैं
आरजूए-निशात में हमने
कैसे दिलचस्प गम खरीदे हैं
दिलचस्प भला, मगर दुख ही दुख!
सागरों की खनक खरीदी है,
दोस्ती के भरम खरीदे हैं;
आरजूए-निशात में हमने...
सुखी होने की आकांक्षा में...
कैसे दिलचस्प गम खरीदे हैं

धन है, पद है, प्रतिष्ठा है, सुंदर स्त्रियां हैं, सुंदर पुरुष हैं--सब दिलचस्प गम हैं। मनोरंजन भला हो जाए थोड़ी देर को, मगर पीछे फांसी लगती है। अभी से सावधान हो जाओ, हरिकृष्ण! तुम यहां आए होओगे मेरी जीवन-दृष्टि
के संबंध में सुन कर कि मैं जीवन को उसकी समग्रता में स्वीकार करता हूं, तो तुमने सोचा होगाः चलो, यह व्यक्ति है जिससे पूछ लेना चाहिए कि धन, पद, सुंदर स्त्री, सब कैसे मिलें? यह व्यक्ति त्याग की बात नहीं करता। शायद इसी भ्रांति में तुम यहां आ गए हो। यहां त्याग की बात नहीं होती, लेकिन बड़ी

सूक्ष्मता से त्याग घटित होता है। यहां त्याग की बात नहीं होती, यह सच है।
यहां बात ध्यान की होती है। मगर जिसको ध्यान आ गया, उसको त्याग तो अपने आप आ जाता है। जिसको ध्यान आ गया, उसे चीजों की व्यर्थता दिखाई पड़ने लगती है।
और व्यर्थता आ गई समझ में, तो पकड़ छूट जाती है।
तुम गलत जगह आ गए।
एक व्यक्ति ने विज्ञापन दिया--तुम्हारे जैसे लोगों के लिए ही दिया होगा--दो रुपये भेजिए और रातोंरात लखपति बनने का फार्मूला मालूम कीजिए। अब दो रुपये में कौन लखपति न बनना चाहे! लगभग एक लाख व्यक्तियों ने रुपये भेजे। एक सप्ताह बाद उन सभी व्यक्तियों के पास, जिन्होंने विज्ञापन से प्रभावित होकर दो रुपये भेजे थे, जवाब मिला--जो काम मैं कर रहा हूं, वही काम आप भी शुरू कर दीजिए। मैं तो रातोंरात लखपति हो गया!
एक लाख ने भेज दिए दो-दो रुपये, तो वह तो दो लाख रुपये उसके पास हो गए। तुम्हें इसी तरह धोखा दिया जा रहा है। तुम्हें जुए खिलाए जा रहे हैं। मटका चल रहा है। और लोग जुए खिलाते हों तो ठीक है, और लोग नाल काटते हों तो ठीक है, सरकारें भी जुए खिला रही हैं। सरकारें भी, जो गांधीवादी होने का दावा करती हैं, वे भी लाटरियां निकालती हैं! लाटरी जुआ है। सिर्फ लोगों को धोखा है। लेकिन लोभी फंस जाता है। लोभी को लगता है कि एक ही रुपया तो लगाना है दांव पर। और लाखों मिल जाएंगे, एक दफा मिल गए तो बस, ... ! मगर करोगे क्या लाखों को पाकर?
टाल्सटाय की प्रसिद्ध कहानी हैः
एक आदमी, एक दर्जी, हर महीने एक रुपया लाटरी की टिकट खरीदता था। ऐसा वह बीस साल से करता था। न कभी उसको लाटरी मिली, न उसने अब सोचना ही जारी रखा था कि कभी मिलेगी, मगर पुरानी आदत हो गई थी तो एक महीने में एक रुपये की खरीद लेता था। एक रुपये में कुछ बिगड़ता भी न था।
मगर बीसवें साल अनहोना घटा! द्वार पर आकर एक रॉल्स रॉयस कार खड़ी हुई, उसमें से बड़े-बड़े थैले नोटों के भरे हुए लोग उतरे और उन्होंने कहा कि भाई दर्जी, अब क्या बैठे कर रहे हो, अब छोड़ो-छाड़ो सीना-पिरोना! ... वह अपनी बटने टांक रहा था, शाम का वक्त।... फेंको-फांको यह सब! ये मिल गए तुमको दस लाख रुपये। लाटरी में जीत गए हो तुम। दर्जी ने भी आव देखा न ताव... दस लाख रुपये मिल जाएं तो अब क्या करना! उसने दुकान में ताला मारा और चाबी कुएं में फेंक दी! कि अब करना ही क्या है!
साल भर में दस लाख रुपये हवा हो गए। चीजें जैसे आती हैं वैसे ही जाती हैं, यह भी ख्याल रखना। जब दस लाख रुपये आए ऐसे आकाश से उड़ते हुए, तो ऐसे ही आकाश में उड़ते हुए चले गए। क्योंकि साल भर वह जीआ ऐसे जैसे कोई शहंशाह जीए। खरीदी बड़ी-बड़ी गाड़ियां, बड़े मकान, सुंदर से सुंदर स्त्रियां, बड़े-बड़े होटलों में रहा, सारी दुनिया का चक्कर मार आया--जो था भोगने योग्य, भोग लिया। और जो भोग से होना था, वह हुआ। साल भर बाद दस लाख रुपये पर पानी फिर गया, वह तो अलग, साल भर में स्वास्थ्य पर भी पानी फिर गया। आंखें भी धुंधली हो गईं, चश्मा भी चढ़ गया, चलने में भी डंडा लेकर चलता तो टेक-टेक कर चल पाता। क्योंकि भोग कुछ सस्ता तो पड़ता नहीं। टूट गया बिल्कुल। शराब और वेश्याएं और रात का जागना, और होटलों का भोजन! सीधा सादा आदमी था, जिंदगी में ये चीजें कभी खाई भी न थीं, एकदम से खाईं तो उसका दुष्परिणाम भी हुआ। साल भर बाद आकर दरवाजे पर खड़ा हुआ तब याद आया कि चाबी तो कुएं में फेंक दी! सो कुएं में उतरा। ठंड के दिन, रूस का मौसम, पानी बिल्कुल बर्फ हो रहा है, उसमें डुबकी मारी, बामुश्किल चाबी खोज पाया। खींच-खांच कर लोगों ने बाहर निकाला।
ताला खोल कर फिर दूसरे दिन से सुबह दुकान शुरू की। लेकिन साल भर में ऐसा लगा जैसे बीस साल गुजर गए हों! जैसे बीस साल कम हो गए उम्र के, इतना कमजोर हो गया।
मगर पुरानी आदतें नहीं जातीं। फिर वह अगला महीना आया, एक तारीख, एक रुपये की टिकट उसने फिर खरीद ली। हालांकि भगवान से रोज प्रार्थना करता था कि अब नहीं। अब मत दिलवाना लाटरी! अब बहुत हो गया! देख लिया जो देखना था, और बरबादी भी देख ली! अब नहीं! इधर रोज प्रार्थना भी करता... आदमी का ऐसा अदभुत

द्वंद्व से भरा हुआ मन है, तुम जरा गौर करोगे तो तुम्हारे भीतर भी ऐसा ही मन पाओगे। इधर कहता रोज भगवान से कि नहीं, अब मत दिलवा देना! एक दफा बहुत है, जो दिखा दिया नरक, वह पर्याप्त है! मगर टिकट भी खरीदता जाता।
और सालभर बाद फिर आकर वही कार रुकी। उसने छाती पीट ली, उसने कहाः मारे गए! अब फिर फंसे! जानता है कि नहीं फंसना है, मगर फिर निकल कर द्वार के बाहर आ गया, फिर थैलियां उतरीं, फिर रुपये, और फिर उसने ताला मारा। और कहता जा रहा है अपने दिल में कि हे प्रभु, यह क्या करवा रहे हो? यह मत दिखलाओ, यह मैं क्या कर रहा हूं! और ताला भी मार दिया और कुएं में जब चाबी फेंकने लगा, तब फिर कहा कि हे प्रभु, क्यों? ! क्या फिर ठंडे पानी में उतरवाओगे? और चाबी फेंक दी!
मगर फिर उसे दुबारा ठंडे पानी में उतरने की नौबत नहीं आई, क्योंकि उस साल वह मर ही गया!
करोगे क्या बहुत धन पाकर? बरबाद होना है? मूढ़ता के हाथ धन लग जाए तो सिवाय बरबादी के और क्या होगा? इस दुनिया में बहुत कम समझदार लोग हैं जो धन का उपयोग जानते हों। यहां इस दुनिया में बहुत कम समझदार लोग हैं, जो किसी भी चीज का उपयोग जानते हों। हर चीज से हानि हो जाती है। बेहतर यही है कि लोगों के पास बहुत चीजें न हों, नहीं तो उनसे उनकी हानियां ही होने वाली हैं। मैं धनपतियों को जानता हूं। उनको धन तो क्या मिला, चिंता मिली, संताप मिला, बेचैनी मिली, विक्षिप्तता मिली। मैं उन लोगों को जानता हूं, जिन्होंने सुंदरतम स्त्रियों से शादी की, और सिवाय चिंता-संताप के कुछ भी नहीं। क्योंकि जब सुंदर स्त्री होती है तो चिंता पकड़ आती है।
मुल्ला नसरुद्दीन ने शादी की तो गांव की सब से बदशक्ल औरत से शादी की। होशियार आदमी! गांव भर के लोग पूछने लगे कि नसरुद्दीन, तुझे अच्छी से अच्छी स्त्री मिल सकती थी, गांव में कितने लोगों के तेरे ऊपर निमंत्रण आए, कितने पिताओं ने तुझे समझाया, कितने न्यौते तुझे मिले, और तूने इस स्त्री को चुना? जिसे भूत-प्रेत भी देख लें तो भाग खड़े हों! उसने कहाः भाई, इसमें राज है। यह घर में रहेगी तो चिंता नहीं होगी। एक तो इसकी वफादारी पर कभी शक पैदा नहीं हो सकता। यह एक बड़ा लाभ है, कि यह सदा व.फादार रहेगी, यह कभी धोखा नहीं दे सकती। धोखा देगी किसके साथ? इस गांव में तो कोई है नहीं जो इसके पास भी आ सके!
जैसा मुसलमानों में रिवाज है, जब विवाह कर पत्नी को घर लाया तो पत्नी
ने पूछा कि नसरुद्दीन, रिवाज के अनुसार पूछती हूं कि किस-किस के सामने घूंघट उठा सकती हूं? किस-किस के सामने बुरका उठा सकती हूं? नसरुद्दीन ने कहाः मुझे छोड़ कर जिसके सामने उठाना हो उठा। और ऐसे भी मैं दिन भर घर आने वाला नहीं हूं, रात के अंधेरे में ही आऊंगा। डरवा जितनों को डरवा सके!! आखिर तुझ से शादी किसलिए की है!
सुंदर स्त्रियां लोगों को चिंताएं ले आती हैं। धन चिंता ले आता है। सुंदर पुरुष चिंता ले आते हैं। चिंता स्वाभाविक है, उसके पीछे गणित है। जब स्त्री इतनी सुंदर है तो कोई अकेले तुम ही उसके चाहक होओगे? और भी चाहक होंगे। और अगर तुम्हीं अकेले चाहक हो उसके तो क्या ख़ाक स्त्री सुंदर है! कि कोई और न मिला, तुम्हीं मिले! जब स्त्री सुंदर है, जितनी सुंदर है, उतने ही उसके चाहक होंगे। जब पुरुष सुंदर है, तो उतनी ही उसे चाहने वाली स्त्रियां होंगी।
फिर संदेह पैदा होता है, फिर शक पैदा होता है। लोग शक-शक में ही जीते हैं, संशय-संशय में ही जीते हैं। मरे जाते हैं, सड़े जाते हैं। और सुंदरतम स्त्री भी दो दिन से ज्यादा थोड़े ही सुंदर रहती है! जब उसको पहचान लिया, जान लिया, फिर क्या करोगे? दो दिन बाद सब शांत हो जाता है। वह तो दूर थी तो सुंदर थी। जैसे-जैसे पास आएगी वैसे-वैसे सौंदर्य समाप्त हो जाएगा। जब तुम उसे घर में ले आओगे डोले में बिठा कर, बस तभी मुसीबत खड़ी हो जाएगी। हरिकृष्ण, कुछ जागो, समझो!
ढब्बू जी भागे-भागे पोस्ट आफिस पहुंचे। और हांफते-हांफते पोस्ट मास्टर से बोलेः सुनिए, मेरी धर्मपत्नी धन्नो की जान खतरे में है। वह घर के भीतर अपने कमरे में अंदर से दरवाजा बंद करके गहरी नींद में सो रही है।

और अभी-अभी घर में आग लग गई है। मैंने बहुत आवाजें दीं, किंतु उसने दरवाजा नहीं खोला। और अब तो घर के भीतर घुसना भी मुश्किल है। आप ही बताइऐ मैं क्या करूं?
पोस्ट मास्टर बोलाः ढब्बू जी, आप मेरे पास क्यों आए हैं! मैं भला क्या
कर सकता हूं? अरे, आपको तो फॉयर बिग्रेड वालों के पास जाना चाहिए! नहीं-नहीं, मैं वहां नहीं जाऊंगा, कतई नहीं जाऊंगा--ढब्बू जी ने लगभग
रो देने वाले स्वर में कहा--पिछली बार मैंने यही गलती की थी और साले फायर बिग्रेड वालों ने सचमुच ही मेरी पत्नी को बचा लिया था।
आज नहीं कल फिर तुम मुक्त होना चाहोगे। और विवाह तो आसान है, तलाक बहुत कठिन है।
मुल्ला नसरुद्दीन तलाक लेने गया था, अपने वकील से बोला। वकील ने कहा
कि नसरुद्दीन, तलाक महंगा पड़ेगा, विवाह से चार गुना ज्यादा खर्चा हो जाएगा! नसरुद्दीन ने कहाः हो जाए, तलाक का मजा ही और है--नसरुद्दीन ने कहाः अरे, कहां विवाह और कहां तलाक! क्या तुलना कर रहे हो? हो जाए, खर्चा जो भी होना हो! अब विवाह का मजा ले लिया तब पता चला कि तलाक बात ही और है! तलाक का मजा ही और है!
कहावत है अरबी में कि दुनिया में बड़ी शांति होती, बड़ा आनंद होता, अगर
हर पुरुष कुंआरा होता और हर स्त्री विवाहित होती। बड़ा मुश्किल है! यह हो कैसे! इसलिए दुनिया में दुख रहने वाला है।
हरिकृष्ण, क्यों दुख की तलाश कर रहे हो? यहां मेरे पास आए हो, ध्यान की पूछो। धन की पूछते हो! परमात्मा की पूछो। पत्नी की पूछते हो! पद की पूछते हो! निर्वाण की पूछो। यह सब तो चल ही रहा है। यह सब तो सारा संसार ही है। इसी में तो सारे लोग डूबे हैं। इतने लोगों को डूबे देख कर भी तुम्हें होश नहीं आता, कि अगर इनको कुछ मिल रहा होता तो इनके चेहरे पर चमक होती, इनकी आंखों में ज्योति जलती, इनके प्राणों में दीया जलता, इनके जीवन में दीवाली होती! जरा इनको गौर से तो देखो! धन भी है, मगर इनसे ज्यादा निर्धन लोग तुम पाओगे? सुंदर पत्नी है, पति है, बच्चे हैं, और इनसे ज्यादा कुरूप अवस्था में रहते हुए तुम लोग पाओगे? पद है, प्रतिष्ठा है, नाम है, धाम है और भीतर घास-फूस भरी है, भीतर कुछ भी नहीं। वह जो खेत में बिजूका खड़ा कर देते हैं न--झूठा आदमी--हंडी लगा दी, उस पर गांधी टोपी रख दी, हंडी में डंडा लगा दिया और एक डंडा आड़ा बांध दिया वह हाथ हो गया और खादी का कुर्ता पहना दिया और अचकन पहना दी। और अगर बहुत ही शौकीन हुआ खेतवाला तो चूड़ीदार पायजामा पहना दिया और लखनवी जूते। क्या जंचते हैं। दूर से देखो तो बिल्कुल लगता है कि आज नेताजी क्या सैर को निकले हैं सुबह-सुबह? पशु-पक्षी डर भी जाते हैं। खलील जिब्रान की कहानी है एक, कि मैंने एक बिजूके से पूछा कि हे भाई बिजूके, यहां खेत में खड़े-खड़े, वर्षा में, धूप में, सर्दी में थक जाते होओगे? चौबीस घंटे न कोई मनोरंजन, न फिल्म, न रेडियो, न टी. वी., न कुछ संग-साथी, न रोटरी-क्लब, न लायंस-क्लब, न होटल जा सको, न होटल यहां आ सके, थक जाते होओगे, उदास हो जाते होओगे, मगर देखता हूं कि तुम सदा प्रसन्न खड़े हो अपनी अकड़ में! तुम्हारी इस प्रसन्नता का राज क्या है? उस बिजूके ने कहाः सुन, मेरी प्रसन्नता का राज यह है कि पशु-पक्षियों को डराने में मुझे जो मजा आता है, वह क्या ख़ाक तुम्हारे मनोरंजन में रखा है! दूसरों को डराने का मजा ऐसा है, कि आए वर्षा, आए धूप, आए सर्दी, सब सह लूंगा, मगर दूसरों को डराने का मजा ऐसा है!
यह कहानी प्रीतिकर है। नेताओं का भी मजा क्या है, बड़े पद पर जो हैं उनका मजा क्या है? दूसरों को डराने का मजा! दूसरों को दबाने का मजा! जिनके पास बहुत धन है, उनका मजा क्या है? मजा यही है कि दूसरों को झुकाने का मजा! कि दूसरों से जी-हुजूर कहलवाने का मजा! ये सब बिजूके हैं। इन सब में घास-फूस भरी है। इनकी अचकन वगैरह उतार कर भीतर देखोगे तो बड़े हैरान होओगे; जैसे हनुमान जी ने छाती चीरी और उसमें राम जी दिखाई पड़े, ऐसे किसी नेता की छाती चीरो और तुम बड़े हैरान हो जाओगे--एकदम घास-फूस! और ऐसी सड़ी-गली कि गाय-भैंसें भी चरने से इनकार करें। गाय-भैंसें तो दूर, गधे भी मुंह फेर लें। है क्या उनके भीतर? बड़े पद पर भी बैठ जाते हैं तो है क्या भीतर?

तुम भी बड़े पद पर हो जाओ, धन पा लो, यश पा लो, क्या पा लोगे? इस दुनिया में यश पानी पर खींची गई लकीरों जैसा है। अभी खींचा, अभी मिटा। कितने लोग आए और कितने लोग गए, उनका कुछ नाम, पता, ठिकाना? कितने लोग आए और कितने लोग गए, सोने के उनके महल थे, स्वर्ण उनके रथ थे, और सब हुआ क्या? सब मिट्टी में मिल गया!
कुछ और करो--कुछ जो मिट्टी में न मिल सके। कुछ और, जिसको मृत्यु पोंछ न सके। कुछ और, जो तुम्हें अमृत से जुड़ा दे। मेरे पास आए हो, अमृत की तलाश करो, शाश्वत को खोजो। वही असली धन है। वही असली पद है। वही असली सौंदर्य है।

तीसरा प्रश्नः ओशो, क्या सच ही सभी धार्मिक क्रियाकांड व्यर्थ हैं?

सुधीर! क्रियाकांड का अर्थ समझो। क्रियाकांड का अर्थ होता है, जिसमें तुम्हारा हृदय नहीं है। और जहां हृदय नहीं है वहां झूठ तो हो ही जाएगा। इसलिए सवाल कृत्य का नहीं है, सवाल हृदय का है। मीरा नाची, तुम भी वैसे ही नाच सकते हो। ठीक वैसे ही घुंघरू बांधो, वैसा ही इकतारा हाथ में लो।... आखिर फिल्मी मीराएं होती हैं न, तुम भी फिल्मी मीरा हो सकते हो! ... और बिल्कुल वैसे ही नाच सकते हो, मगर वह क्रियाकांड होगा। क्योंकि तुम्हारा हृदय तो वहां नहीं होगा। एक कृत्य है, मुर्दा, जिसके पीछे प्राणों की सरिता नहीं बह रही।
मीरा का नाचना क्रियाकांड नहीं है और तुम्हारा बिल्कुल वैसा ही नाचना... और यह भी हो सकता है तुम मीरा से भी अच्छा नाच सको; क्योंकि हो सकता है तुमने नृत्य की शिक्षा ली हो, दीक्षा ली हो, तुम नृत्य में पारंगत होओ। मीरा ने कोई शिक्षा-दीक्षा ली थी, ऐसा तो है नहीं। यह तो मौज थी, यह तो मस्ती थी! यह नृत्य तो कोई सिखावन नहीं थी ऊपर की, भीतर से उमगा था, तो चाहे नृत्य की कला की दृष्टि से इसमें भूल-चूकें भी रहीं होंगी। रहीं ही होंगी... कोई लच्छू जी महाराज या बिच्छू जी महाराज देखते तो फौरन पाते कि इसमें ये-ये भूलें हैं, लेकिन इस नृत्य में प्रेम है, आह्लाद है, अर्चना है, प्रार्थना है, पूजा है। यह प्रेम हृदय को चढ़ाने की प्रक्रिया है। हृदय को ही लेकर मीरा आई है मंदिर के द्वार पर। यह नृत्य क्रियाकांड नहीं है। तुम इसी नृत्य को करो, क्रियाकांड हो जाएगा।
इसलिए ध्यान रखना, ऊपर से तय नहीं होगी बात कि क्रियाकांड व्यर्थ है
या नहीं, तय होगी भीतर से। और तुम्हीं जान सकते हो तुम्हारे भीतर को। तुम्हारे अंतस को सुधीर, और कौन जानेगा? तुम जो कर रहे हो, वह वस्तुतः है? या तुम सिर्फ दिखावा कर रहे हो? तुम्हारे प्राणों की उमंग है या केवल एक कर्तव्य निभा रहे हो? करना चाहिए, इसलिए कर रहे हो? या कि नहीं रुक सकते करने से, इसलिए कर रहे हो?
मीरा का परिवार विरोध में था। जहर भेजा था उन्होंने, कि इससे बेहतर तो
तू मर जा। क्योंकि बदनामी होती है। शाही घर की महिला, रास्तों पर नाचे! और वह भी राजस्थान, जहां की स्त्रियां सदियों से घूंघट नहीं खोली थीं। वहां घूंघट सरक जाए, पल्ला गिर जाए! अब नृत्य में कोई घूंघट का ख्याल रखे कि पर्दे का ख्याल रखे कि पल्ले को सम्हाले? नृत्य तो नृत्य है--और फिर मीरा का नृत्य! वह तो अपना तन-मन भूल कर नाच रही है। उसे लोगों का पता ही नहीं, उसको तो सिर्फ परमात्मा का पता है। उससे क्या छिपाना है, उसके सामने तो सब प्रकट ही है। उसके सामने तो सब नग्न ही है। तो परिवार को कष्ट होता था, प्रतिष्ठा को धक्का लगता था, लोग आकर कहते होंगे कि राजरानी रास्तों पर नाचे, भिखमंगे भीड़ लगा कर देखें, राहगीर खड़े होकर देखें, हंसी-मजाक उड़ाएं-- यह अच्छा है? परिवार ने मजबूरी में भेजा होगा जहर कि तू पी ले और मर जा! मीरा का नृत्य क्रियाकांड नहीं है। तुम नाचो मीरा ही जैसे। तुम्हीं जांच सकोगे और कौन जांचेगा? तुम्हारे अंतस का मेल बैठ रहा है? तुम नाचने में डूब गए हो? ऐसे डूब गए कि नर्तक न बचे, नृत्य ही बचे? तो समझना कि क्रियाकांड नहीं रहा। फिर प्रेम का अहोभाव हो गया, उत्सव हो गया।
और यही सत्य सभी क्रियाकांड के संबंध में लागू होता है।

मेरे पास लोग आते हैं। कोई आकर चरणों में झुक जाता है, और मैं देखता हूं उसके अंतस का उसमें कुछ मेल नहीं है। उसका अहंकार अकड़ा हुआ खड़ा है। अहंकार झुक ही नहीं रहा है। शायद वह झुक रहा है, यह और अहंकार को बढ़ा रहा है कि देखो, इसे कहते हैं शिष्टाचार; कि देखो इसे कहते हैं धार्मिकता! वह चारों तरफ लोगों को देखता है कि देख लिया, इसे कहते हैं विनम्रता! इसको कहते हैं साधुता, सरलता!
यह झुकना न हुआ। हालांकि वह झुका, मगर झुकना व्यर्थ गया। यह शारीरिक व्यायाम हुआ। इसमें आत्मा नहीं है। यह क्रियाकांड है। इससे अच्छा था वह न झुकता।
लेकिन कोई झुकता है, सच में ही झुकता है। पानी-पानी हो जाता है, पिघल जाता है। बह जाता है। ख्याल ही नहीं है कि कोई देख रहा है कि नहीं देख रहा है। ख्याल ही नहीं है कि मैं कोई विशेष कृत्य कर रहा हूं। ख्याल ही नहीं है! एक आनंदभाव ने पकड़ लिया है। एक मस्ती छा गई है। दोनों झुके... ।
मैं माथेरान था, एक शिविर में। एक गांधीवादी विचारक और लेखक, ऋषभदास रांका मेरे साथ सुबह-सुबह घूमने निकले थे। उधर से "सोहन" आ गई, उसने जल्दी से झुक कर मेरे चरण छू लिए। ऋषभदास रांका ने उसे रोकने की कोशिश की, लेकिन उसने तो देखा ही नहीं। बाद में ऋषभदास मुझसे बोले, कि आपको रोकना चाहिए; आपको इस तरह के क्रियाकांड को सहयोग नहीं देना चाहिए।
मैंने उनसे कहाः आप छुओ पैर, मैं रोक दूंगा। रोक ही नहीं दूंगा, मुझे अपने पैर धोने पड़ेंगे! क्योंकि वे अपवित्र हो जाएंगे। उस दिन से जो मुझसे वे नाराज हुए, फिर मुझे दिखाई न पड़े! मैंने कहाः आप छुओगे तो क्रियाकांड होगा, "सोहन" ने छुआ तो क्रियाकांड नहीं था। कौन रोके, किसको रोके? वह उसका आत्मिक भाव था। रोकना असंभव था। रोकना दुष्टता होती, क्रूरता होती।
हां, मैंने उनसे कहा, आप झुको और आपको ऐसा मजा चखाऊं झुकते वक्त कि फिर
आप जिंदगी भर कभी भूल कर किसी के सामने न झुको! मैंने कहा, आप प्रयोग ही क्यों नहीं कर लेते?
वे तो जो नदारद हुए फिर उस दिन से, फिर मुझे दिखाई नहीं पड़े। दुश्मन ही
हो गए मेरे। हालांकि बात सीधी-साफ थी।
झुकने-झुकने में फर्क है। पूजा-पूजा में फर्क है। अर्चना-अर्चना में फर्क है। सारा फर्क तय होता है हृदय से।
तुम पूछते हो सुधीरः "क्या सच ही सभी धार्मिक क्रियाकांड व्यर्थ हैं?"
क्रियाकांड है तो व्यर्थ है। अगर हृदय का उन्मेष है, तो व्यर्थ नहीं है।

यह मंदिर का दीप इसे नीरव जलने दो।

रजत शंख-घड़ियाल, स्वर्ण वंशी, वीणा स्वर,
गए आरती वेला को शत-शत लय से भर;
जब था कल-कंठों का मेला
विहंसे उपल, तिमिर था खेला
अब मंदिर में इष्ट अकेला;
इसे अजिर का शून्य गलाने को गलने दो।

चरणों से चिह्नित अलिंद की भूमि सुनहली, प्रणत शिरों को अंक लिए चंदन की दहली;
झरे सुमन बिखरे अक्षत सित
धूप-अर्ध्य नैवेद्य अपरिमित
तम में सब होंगे अंतर्हित;
सबकी अर्चित कथा इसी लौ में पलने दो!

मन के मनके फेर पुजारी विश्व सो गया, प्रतिध्वनि का इतिहास प्रस्तरों के बीच सो गया;

सांसों की समाधि का जीवन
मसि-सागर का पंथ गया बन;
रुका-मुखर कण-कण का स्पंदन!
इस ज्वाला में प्राण-रूप फिर से ढलने दो!

झंझा है दिग्भ्रांत रात की मूर्च्छा गहरी, आज पुजारी बने, ज्योति का यह लघु प्रहरी,
जब तक लौटे दिन की हलचल,
तब तक यह जागेगा प्रतिपल
रेखाओं में भर आभा जल;
दूत सांझ का इसे प्रभाती तक चलने दो!
यह मंदिर का दीप इसे नीरव जलने दो!

और तुम्हारे भीतर अगर शून्य, शांत, मौन का आविर्भाव हो जाए, तो फिर क्रियाकांड हुआ, न हुआ; आरती सजी, न सजी; पूजा का थाल रचा गया, न रचा गया; कुछ भेद नहीं पड़ता।

यह मंदिर का दीप इसे नीरव जलने दो!

फिर नीरव, चुपचाप तुम्हारे प्राणों का दीप जलता रहे, पर्याप्त पूजा है!

रजत शंख-घड़ियाल, स्वर्ण वंशी, वीणा स्वर,
गए आरती वेला को शत-शत लय से भर;
जब था कल-कंठों का मेला
विहंसे उपल, तिमिर था खेला
अब मंदिर में इष्ट अकेला;
इसे अजिर का शून्य गलाने को गलने दो।
यह मंदिर का दीप इसे नीरव जलने दो।

एक ही बात इष्ट है कि तुम्हारे भीतर का दीया जले। फिर वह नीरव हो, न बजें शंख, न घड़ियाल, न वीणा के स्वर छिड़ें, चलेगा। क्योंकि पर्याप्त है उसका होना।
बस, वह तुम्हारे भीतर का दीया जलता रहे। सब हो गया! या उस दीये की रोशनी में अपने आप सहज-स्फूर्त नाच उठे, वीणा के स्वर छिड़ें, गीत तुम्हारे ओठों से फूट पड़ें, तो फिर गीत फूटने दो।
दो तरह के लोग हुए इस पृथ्वी पर, दो तरह के लोग हैं--एक है भक्त एक है ध्यानी। ये अस्तित्व दो में बटा हुआ है--जैसे स्त्री-पुरुष; जैसे ऋण विद्युत, धन विद्युत; जैसे अंधेरा और प्रकाश; जैसे जन्म और मृत्यु, वैसे ही ध्यानी और भक्त। ध्यानी के लिए तो पर्याप्त है कि भीतर का दीया जलता रहे, मौन, शून्य--आवाज भी नहीं होगी। बुद्ध के पास बांसुरी नहीं बजी, न घंटे- घड़ियाल, न पूजा के थाल सजे, न धूप, न सुगंध-सुवास, कुछ भी नहीं। लेकिन कृष्ण के पासशृंगार सजा, मोर-मुकुट बंधा, ओठों पर बांसुरी आई, बांसुरी बजी, राधा नाची, रास रचा गया। ये दो तरह के व्यक्ति हैंः एक, जिसके भीतर ध्यान होगा और अभिव्यक्त शून्य में होगा; और एक, जिसके भीतर ध्यान होगा और अभिव्यक्त स्वरों में होगा। दोनों सुंदर हैं। बस ख्याल रखना भीतर का, निर्णय भीतर है।
तुम बिल्कुल हाथ पालथी में रख कर बुद्ध की तरह बैठ जाओ और कुछ भी न करो, कोई क्रियाकांड नहीं, लेकिन भीतर हजार-हजार विचार चलते रहें, तो यह भी क्रियाकांड है। यह जो तुम हाथ पर हाथ रख कर बैठे हो सिद्धासन में, यह भी क्रियाकांड है। क्योंकि इसके भीतर भी प्राण नहीं, जीवन नहीं। और तुम नाचो चैतन्य की भांति, न कोई आसन है न कोई सिद्धासन है, मृदंग बज रही है, चैतन्य नाच रहे, साथ उनके प्रेमी नाच रहे--तो भी यह क्रियाकांड नहीं है। क्रिया

मात्र से कोई कांड नहीं हो जाता। क्रिया के पीछे हृदय हो तो क्रियाकांड नहीं। अक्रिया के पीछे हृदय हो तो अक्रिया भी पूजा बन जाती है। सब कुछ निर्भर करता है तुम्हारे हृदय पर। और इसकी परख तुम्हारे अतिरिक्त और कौन देगा? तुम्हारे हृदय को तुम्हीं जान सकते हो। वहीं कसते रहना, वहीं कसौटी है।

आखिरी प्रश्नः ओशो, मैं अज्ञानी हूं। मेरे चारों ओर अंधकार ही अंधकार है। मेरे लिए क्या मार्ग है?

संगीत! अंधकार केवल एक बात का प्रमाण है कि आलोक हो सकता है। अंधकार केवल एक चीज का सबूत है कि आलोक संभव है। इसलिए अंधकार को नकारात्मक दृष्टि से मत देखो। नास्तिक की दृष्टि से मत देखो। आस्तिक की दृष्टि से देखो। तो फिर तुम्हें अंधकार में भी रोशनी छिपी मालूम पड़ेगी। अंधकार तो गर्भ है रोशनी का। अंधकार से घबड़ा न जाओ, न भयभीत, न चिंतित--आनंद-मग्न, क्योंकि आती होगी सुबह! और जितना अंधकार घना होता है, भोर उतनी ही करीब होती है।

गहन है यह अंध कारा;
स्वार्थ के अवगुंठनों से
हुआ है लुंठन हमारा।

खड़ी है दीवार जड़ की घेर कर,
बोलते हैं लोग ज्यों मुंह फेर कर,
इस गगन में नहीं दिनकर,
नहीं शशधर, नहीं तारा।

कल्पना का ही अपार समुद्र यह, गरजता है घेरकर तनु, रुद्र यह, कुछ नहीं आता समझ में,
कहां है श्यामल किनारा।

प्रिय मुझे वह चेतना दो देह की, याद जिससे रहे वंचित गेह की,
खोजता फिरता न पाता हुआ,
मेरा हृदय हारा।

गहन है यह अंध कारा;
स्वार्थ के अवगुंठनों से
हुआ है लुंठन हमारा।

सच कहते हो, अंधेरा है; गहन अंधकार है, चारों ओर अंधकार है! हम बुरी तरह अंधेरे में लुटे हैं। अंधेरा हमें लूट रहा है। मगर अंधेरा हमारे कारण है। जिस दिन यह बात समझ में आ जाएगी, उसी क्षण अंधेरा टूटना शुरू हो जाएगा। क्यों नहीं जलाते दीया? दीया जलाने से कौन रोक रहा है? उसी दीया जलाने के लिए तो मैं निरंतर तुम्हें पुकार दे रहा हूं।

है अंधेरी रात पर दीवा जलाना कब मना है?
कल्पना के हाथ से कमनीय जो मन्दिर बना था;
भावना के हाथ ने जिसमें वितानों को तना था
स्वप्न ने अपने करों से था जिसे रूचि से संवारा
स्वर्ग के दुष्प्राप्य रंगों से, रसों से जो सना था,
ढह गया वह तो जुटाकर ईट पत्थर कंकड़ों को;
एक अपनी शांति की कुटिया बनाना कब मना है?

है अंधेरी रात पर दीवा जलाना कब मना है?

क्या घड़ी थी एक भी चिंता नहीं थी पास आई, कालिमा तो दूर, छाया, भी पलक पर थी न छाई, आंख से मस्ती झपकती, बात से मस्ती टपकती, थी हंसी ऐसी जिसे सुन बादलों ने शर्म खाई
वह गई तो ले गई उल्लास के आधार माना,
पर अथिरता पर समय की मुस्कुराना कब मना है? है अंधेरी रात पर दीवा जलाना कब मना है?

हाय, वे उन्माद के झोंके कि जिनमें राग जागा, वैभवों से फेर आंखें गान का वरदान मांगा,
एक अन्तर से ध्वनित हों दूसरे में जो निरन्तर भर दिया अम्बर अवनि को मत्तता के गीत गा-गा, अन्त उनका हो गया तो मन बहलने के लिये ही
ले अधूरी पंक्ति कोई गुनगुनाना कब मना है? है अंधेरी रात पर दीवा जलाना कब मना है?

हाय, वे साथी कि चुंबक लौह-से जो पास आए,
पास क्या आए, हृदय के बीच ही गोया समाए
दिन कटे ऐसे कि कोई राग वीणा के मिलाकर
एक मीठा और प्यारा जिन्दगी का गीत गाए,
वे गए तो सोचकर यह लौटने वाले नहीं, वे,
खोज मन का मीत कोई लौ लगाना कब मना है?
है अंधेरी रात पर दीवा जलाना कब मना है?

रात अंधेरी है, निश्चित अंधेरी है, पर दीया जलाओ! उस दीये का नाम ही ध्यान है। भीतर का दीया जलाओ क्योंकि अंधेरा भी भीतर है। और तुम्हारे कारण है, क्योंकि तुम दीया क्यों नहीं जलाते? क्यों करते हो इतनी कंजूसी, क्यों इतनी कृपणता?
मैंने सुना है, एक आदमी यात्रा पर गया--मारवाड़ी था, महाकंजूस। कोई सात मील पहुंचा होगा तब उसे याद आई कि मैं दीया तो जलता हुआ छोड़ आया हूं, पता नहीं वह मेरा बेटा बुझाए, न बुझाए, न मालूम कितना तेल जल जाए, और मुझे तो लौटने में अभी दो-तीन दिन लगेंगे। सो वह लौट आया। सात मील से लौट आया। घर आकर द्वार पर दस्तक दी, बेटे से पूछा कि दीया बुझा दिया कि नहीं? बेटे ने कहाः हद हो गई, क्या तुमने मुझे बुद्धू समझा है? मैं भी मारवाड़ी हूं। इधर तुम गए कि उधर मैंने दीया बुझाया। सच तो यह है कि तुम जाने में जो देर लगा रहे थे तो मैं यही सोच रहा था कि कब ये खिसकें, कब मैं दीया बुझाऊं, तेल नाहक जल रहा है! अरे, जब जाना ही है तो जाओ! मगर तुम्हें शर्म नहीं आती, सात मील चल कर आए, जूते घिस गए होंगे!
बाप ने कहाः तूने मुझे समझा क्या है? जूते बगल में दबा कर आया हूं! तेरा बाप हूं, तू मुझे समझता क्या है? जूते और मेरे घिस जाएं!
कौन-सी कृपणता तुम्हें रोक रही है भीतर का दीया जलाने को? और यह दीया ऐसा है, इसमें तेल लगता भी नहीं, मारवाड़ी होओ तो भी जला सकते हो! बिन बाती बिन तेल! इसमें बाती भी नहीं लगती, तेल भी नहीं लगता। यह दीया सच में पूछो तो भीतर जलने को बिल्कुल तत्पर है। "चित चकमक लागै नहीं?" बस तुम्हारे चित्त की चकमक नहीं लग रही है!
चकमक पत्थर देखा न, दो पत्थरों को रगड़ देते हैं, आग पैदा हो जाती है, दीया जल जाता है। "चित चकमक लागै नहीं!"
बस तुम्हारे चित्त की चकमक जरा रगड़ दो कि दीया जला ही है, और भीतर रोशनी हो जाए। और जिसके भीतर रोशनी है, उसके बाहर अंधेरा रहे तो रहे, क्या फिकर? जिसके भीतर रोशनी है, उसके बाहर भी रोशनी है। और जिसके भीतर अंधेरा है, उसके बाहर भी रोशनी हो तो किस काम की है?

मजबूत बना हूं,
इसी से तो तना हूं।

एक दिन डालों ने भी कहा था,
तना?
किस बात पर है तना?
जहां बिठाल दिया गया था वहीं पर है बना; प्रगतिशील जगती में तिल भर नहीं डोला है, खाया है, मोटाया है, सहलाया चोला है; लेकिन हम तने से फूटीं,
दिशा-दिशा में गईं
ऊपर उठीं,
नीचे आईं
हर हवा के लिए दोल बनीं, लहराईं, इसी से तो डाल कहलाईं।

एक दिन पत्तियों ने भी कहा था, डाल?
डाल में क्या है कमाल?
माना वह झूमी, झुकी, डोली है ध्वनि-प्रधान दुनिया में
एक शब्द भी कभी बोली है?
लेकिन हम हर-हर स्वर करती हैं, मर्मर स्वर मर्मभरा भरती हैं, नूतन हर वर्ष हुई,
पतझर में झर
बहार-फूट फिर छहरती हैं,
विथकित-चित पंथी का
शाप-ताप हरती हैं।

एक दिन फूलों ने भी कहा था,
पत्तियां?
पत्तियों ने क्या किया?
संख्या के बल पर बस डालों को छाप लिया, डालों के बल पर ही चल-चपल रही हैं, हवाओं के बल पर ही मचल रही हैं;
लेकिन हम अपने से खुले, खिले, फूले हैं-- रंग लिए, रस लिए, पराग लिए--
हमारी यश-गंध दूर-दूर-दूर फैली है,
भ्रमरों ने आकर हमारे गुन गाए हैं,
हम पर बौराए हैं।

सबकी सुन पाई है,
जड़ मुस्कुराई है!

धर्म जड़ की बात है। न तनों की, न डालों की, न पत्तों की, न फूलों की, न फलों की, जड़ की। जड़ अदृश्य है।
और सब दृश्य है, सिर्फ परमात्मा अदृश्य है। और सबका रूप है, सिर्फ परमात्मा अरूप है। और सब आकार है, परमात्मा निराकार है। इससे ही हम उससे वंचित हो जाते हैं।
सब दिखाई पड़ता है--वृक्ष का वैभव, आकाश में फैली हुई शाखाएं, फूलों- पत्तों के रंग, हवाओं में उड़ती गंध, भ्रमरों के गीत, पक्षियों की चहचहाहट।
और जड़ें? दबी पड़ी रहती हैं--पृथ्वी के गर्भ में; पृथ्वी के अंधकार में।

लेकिन वहीं है प्राण सबका--फूल का, पत्ते का, फल का। वहीं है जीवन का स्रोत सबका। जिसने जड़ को खोजा, उसने ही जीवन के सत्य को जाना है।
मलूकदास के सूत्र। कैसे हम अदृश्य के साथ एक हो जाएं? कैसे हम डूब जाएं उसमें जिसका ओर-छोर मिलता नहीं? कैसे हम लीन हो जाएं उसमें जिसका पता-ठिकाना मालूम नहीं? चलें किस दिशा में कि खोज लें उसे कि जिसे पाकर सब पा लिया जाता है; और जिसे बिना पाए, कुछ भी पाया हो तो दो कौड़ी का है? सीधी- सादी बातें हैं मलूक की। जरा भी कठिन नहीं। जरा भी जटिल नहीं हैं। लेकिन सीधी सरल उन्हीं के लिए हैं जो सीधे-सरल हैं। अगर तुम जटिल हो, उलझे हो, द्वंद्वग्रस्त हो, दुविधा से भरे हो, तो सीधी-सरल बातें भी तुम्हारे भीतर जा कर इरछी-तिरछी हो जाएंगी। सीधी लकड़ी को पानी में डाल कर देखा? तिरछी हो जाती है। कम से कम दिखाई तो पड़ने लगती है कि तिरछी हो गई है। खींचो जल के बाहर, सीधी की सीधी है। जल के भीतर भी सीधी थी, लेकिन तिरछी भासती थी। आभास होता था।
ऐसा ही तुम्हारा जटिल मन है। ये मलूक के वचन अगर तुम्हारे मन पर पड़े
तो सब तिरछे हो जाएंगे। तुम इनमें ऐसे अर्थ निकाल लोगे, जो इनमें नहीं हैं। और तुम वे अर्थ चूक जाओगे, जो इनमें ओतप्रोत भरे हैं। ये वचन मन से सुनने के वचन नहीं हैं, ये वचन अ-मन से सुनने के वचन हैं, ध्यान से सुनने के वचन हैं। सब निर्भर करता हैः कैसे तुम सुनोगे। जो कहा गया है, वह तो बहुत साफ-सुथरा है। मगर जो सुनेगा, अगर कूड़े-कचरे से भरा है, तो उसके भीतर पहुंचते-पहुंचते हवाएं गंदी हो जाएंगी। सुबह की ताजी हवाएं, मलय पवन, तुम्हारे भीतर पहुंचते-पहुंचते दुर्गंधयुक्त हो जाएंगी।
इसलिए अपने को साफ सुथरा किए बिना संतों को नहीं समझा जा सकता।
संतों को समझना और तरह का अध्ययन नहीं है। और तरह के अध्ययन में तुम जैसे हो वैसे ही काफी हो, संतों को समझने के पहले खूब भीतर स्नान होना चाहिए। उसको ही मैं ध्यान कहता हूं। भीतर के स्नान का नाम ध्यान है। संतों को समझने के पहले भीतर सन्नाटा आना चाहिए। शून्य उमगना चाहिए।
शून्य से समझोगे तो ही समझोगे।
ब्रह्मा की मूर्तियां देखी हैं? चतुर्मुख हैं ब्रह्मा। चतुरानन हैं।

ब्रह्मा के मुख चार,
एक ही बात,
किंतु, चारों मुख से
ब्रह्मा कहते हैं।
चारों मुख से बात एक ही कहने का तात्पर्य ज्ञात है?

सुनो एक से
तो लगता है,
वह ब्रह्मा की बात;
दूसरे से सुनने पर
लगता है
वह श्रोता की है;
सुनो तीसरे मुख से
तो वह सबकी लगती है;
और सुनो चौथे से
तो ऐसा लगता,
वह नहीं किसी की बात,
बात वह सिर्फ बात है।
कवि ब्रह्मा हैं,
और कविता ब्रह्मा की वाणी; नई आज भी,
समझ सको तो,
लीक पुरानी।

ब्रह्मा के ही चार मुख नहीं हैं, सभी संतों के चार मुख हैं। नहीं कि चार मुख हैं, बल्कि संतों को चार तरह से समझा जा सकता है। एक तो समझने का ढंग है आम आदमी का कि बुद्ध के वचन, महावीर के वचन, कृष्ण के वचन, क्राइस्ट के वचन, मोहम्मद के वचन हम कैसे समझ सकेंगे? यह तो दिव्यवाणी है! हमारी सामर्थ्य कहां? ऐसा मत सोचना कि यह बात विनम्रता से कही गई है। यह बात बड़ी चालाकी की है। तुम जो नहीं समझना चाहते हो, कहने लगते होः हमारी पात्रता कहां? चाहते नहीं कि समझो। क्योंकि समझो तो महंगा हो सकता है सौदा। समझोगे तो कुछ करना भी होगा। समझोगे तो करना ही होगा। समझ कर कौन करने से बचा है? समझोगे तो बदलोगे। बदलने की तैयारी नहीं। अच्छा है कि समझो ही न। तो हम टालते हैं।
हमारे टालने का बड़ा सुंदर ढंग है। हम कहते हैंः यह उपनिषद के वचन, ये
तो द्रष्टाओं के, ऋषियों के वचन हैं; पारलौकिक हैं, स्वर्गीय हैं; कहां हम पृथ्वी के वासी, कहां यह स्वर्ग की वाणी, हमारा इसमें तालमेल कहां! बस इतना काफी कि हम पूजा कर लें, कि दो फूल चढ़ा दें, कि उपनिषद को सिर झुका लें, कि गीता को गुनगुना लें अहोभाव से, समझ के ये हमारे परे हैं! हमारे-इसके बीच बड़ी अलंघ्य खाई है। यह अवतारों की वाणी, तीर्थंकरों की, पैगंबरों की, हम साधारण-जन, जमीन पर सरकते, घिसटते, ये आकाश में उड़ने वालों के वचन; अपौरुषेय हैं! ये पुरुषों के वचन नहीं। ये वेदों की ऋचाएं, स्वयं परमात्मा से उतरीं, यह ब्रह्मा की वाणी, हम कैसे समझेंगे? हम तो सुन भी लें तो धन्यभाग!
चालाकी समझ लेना।
यह बहुत चालाकी की बात है। यह ये कहना है कि हमें क्षमा भी करो, हमें
और भी जरूरी काम करने हैं! अभी हमें जीवन जीना है; धन जोड़ना है, पद-प्रतिष्ठा कमानी है। अभी कैसे तुम हमारे जीवन में प्रवेश पा सकोगे? अभी कैसे हम तुम्हें प्रवेश पाने दें? हम बड़े प्रीतिकर ढंग से द्वार बंद कर लेते हैं। बड़े सौम्य, सुसंस्कृत ढंग से द्वार बंद कर लेते हैं। तीर्थंकर कह कर, अवतार कह कर हम दूर कर देते हैं।
इस चालबाजी से बचना! यह चालबाजी सदियों-सदियों पुरानी है।
और या फिर अगर हम समझें ठीक से तो एक अदभुत रहस्यमय अनुभव होता है। ऐसा नहीं लगता कि यह वाणी बुद्ध की है, महावीर की है, कबीर की है, नानक की है, मलूक की है, ऐसा लगता हैः अपनी है, अपने ही हृदय की है। अपने ही अंतस्तल की है। अपने ही भीतर उठी है। जैसे मलूक वही कह गए जो हम कहना चाहते थे, जो हम न कह पाते थे, जिसके लिए हमारे पास शब्द न थे, जिसे हम बांधते थे और बंधता नहीं था, बांध गए मलूक उसे। जिसे हम शब्द देते थे और छूट-छूट, छिटक-छिटक जाता था, भर गए उसे शब्दों में। हमने भी गुनगुनाना चाहा था, मगर बांसुरी हमें बजानी न आती थी। तू-तू कर के रह गए थे। मलूक गा गए। जो हमसे न हो सका, कर गए। उनकी अनुकंपा है। तब तुम्हें लगेगाः तुम्हारा ही प्राण बोला।
और जब ऐसा लगे कि तुम्हारा ही प्राण बोला, तभी जानना कि सत्संग शुरू हुआ। जब तक तुमने कहाः "भगवान उवाच", तब तक समझना अभी सत्संग शुरू नहीं हुआ। जब तुम्हें ऐसा लगाः अपने ही अंतस का उदगार, तो सत्संग का प्रारंभ है। और जब लगेगा कि मेरे ही प्राणों की पुकार है यह, कि सदगुरु केवल दर्पण है और मैंने अपने ही वास्तविक चेहरे को उस दर्पण में देख लिया है, कि सदगुरु तो वीणा है और मैंने अपनी ही झंकार, प्राणों में जो छिपी थी, उस वीणा पर सुन ली है; कि मेरी हृदय-तंत्री ही सदगुरु के रूप में बजी है, झंकृत हुई है।
तो तीसरी बात भी समझ में आ जाएगी कि तब लगेगा: यह मेरी ही नहीं, सबकी है। जिसको अपने अंतस की आवाज सुनाई पड़ी उसको जगत के अंतस की आवाज सुनाई पड़ जाती है। तब ऐसा लगेगा कि पक्षी भी यही गा रहे हैं; और वृक्षों में भी हवाएं सन-सन करके जो गुजरती हैं, उपनिषदों की ऋचाएं पैदा हो रही हैं; और पहाड़ों से झरने उतरते हैं, झर-झर, मर-मर, उनकी ध्वनि वेदों की पुकार है; कि सुबह गाते पक्षी हों, कि आकाश में गरजते बादल, कि कड़कती बिजलियां,

परमात्मा की ही विभिन्न अभिव्यक्तियां हैं। सब कुछ तब श्रीमद्भगवद्गीता है। तब हर ध्वनि कुरान है।
और जब तीसरी बात लगेगी, तो चौथी भी दूर नहीं। तब फिर लगेगाः न यह मेरी है, न यह तेरी है, इस पर मैं और तू का कोई बंधन नहीं बांधा जा सकता, यह तो बस सत्य है। किसका? सत्य किसी का नहीं होता। सत्य के हम होते हैं, सत्य हमारा नहीं होता। सागर नदियों का नहीं होता, नदियां सागर की हो जाती हैं। तब चौथी बात दिखाई पड़नी शुरू हो जाएगी। सत्य तो बस सत्य है। न हिंदू का, न मुसलमान का, न ईसाई का, न जैन का, न बौद्ध का--अव्याख्य, अनिर्वचनीय, विशेषण-शून्य! और जिस दिन ऐसा सत्य दिखे, जानना उस दिन ही मुक्ति करीब आई। ऐसा सत्य ही मुक्त करता है।
जब तक हिंदू हो, बंधे रहोगे। मुसलमान हो, जकड़े रहोगे। ईसाई हो, कारागृह में पड़े हो। जैन हो, जंजीरों में हो। जिस दिन जैन, हिंदू, ईसाई, बौद्ध, ये सारी सीमाएं पीछे छूट जाएंगी, सत्य केवल सत्य रह जाएगा, उस दिन ही जानना आकाश मिला, असीम मिला, अनंत मिला। और अनंत में ही मुक्ति है। उसी अनंत की तरफ मलूक के इशारे हैं।

जिधर देखिए, श्याम विराजे।
श्याम कुंज, वन, यमुना श्यामा,
श्याम गगन, घन वारिद गाजे।
श्याम धरा, तृण-गुल्म श्याम हैं,
श्याम सुरभि-अंचल-दल साजे;
श्याम बलाका, शालि श्याम है, श्याम विजय-बाजे नभ बाजे। श्याम मयूर, कोकिला श्यामा, कूजन, नृत्य श्याम मृदु माजे; श्याम काम, रवि श्याम मध्यदिन,
श्याम नयन काजल के आंजे।
श्रुति के अक्षर श्याम देखिए,
दीपशिखा पर श्याम निवाजे;
श्याम तामरस, श्याम सरोवर,
श्याम अनिल, छबि श्याम संवाजे।

एक-एक कदम चलो! ये ब्रह्मा के चारों मुख तुम्हारे लिए हैं। पहले पर मत अटक जाना। दुनिया में अधिक लोग पहले पर अटके हैं। दूसरे पर जो गया, सत्संग शुरू हुआ। तीसरे पर जो गया, सत्संग में डूबा। चौथे पर जो पहुंचा, शून्य हुआ; सत्संग में मिटा। निर्वाण हुआ उसका।
चौथा लक्ष्य है। उसके पहले नहीं रुकना है। बढ़ते ही चलना है! आलस्य न करना! तामस न करना!

"सोने वाले की किस्मत
सोती रहती है,
उठ बैठे की किस्मत
उठ बैठा करती है,
खड़े हुए का भाग्य
खड़ा हो जाता है,
चलने वाले का
चल पड़ता है।
चरैवेति... चरैवेति।"

संन्यासी वही है जो चलता रहे। चलता रहे, चलता रहे तब तक जब तक कि अंतिम पड़ाव न आ जाए। चलता रहे तब तक जब तक कि चलने के लिए और कोई स्थान शेष न रह जाए।

बुद्ध से पूछा है उनके भिक्षुओं नेः हम क्या करें? आप तो विदा होने लगे, आखिरी घड़ी आ गई! तो बुद्ध के अंतिम वचन हैंः "चरैवेति... चरैवेति।" चलते रहो। रुकना मत। जब तक आगे कुछ दिखाई पड़ता रहे मार्ग, चलते ही रहना। जब आगे कोई मार्ग ही शेष न बचे, तो समझना कि मंजिल आई। और ऐसी घड़ी आती है जब तुम मिट जाते हो। मार्ग ही नहीं मिट जाता, मार्गी भी मिट जाता है। पंथ ही नहीं मिट जाता, पंथी भी मिट जाता है। और जहां पथ और पंथी दोनों मिट जाते हैं, वहीं गंतव्य है; वहीं परमात्मा है। वहीं तुम निराकार हो, निर्गुण हो। वहीं तुम उस जड़ को खोज पाओगे, जिसका यह सारा विस्तार है। उसे पाकर मुक्ति है, आनंद है। उसे पाकर अमृत है।
राम दुवारे जो मरे!
मलूक कहते हैंः मर जाओ राम के द्वार पर! मिट जाओ राम के द्वार पर! क्योंकि वैसे मिटने में ही अमृत की शुरुआत है। वैसी मृत्यु में ही पुनर्जन्म है। और ऐसा पुनर्जन्म कि फिर कोई मृत्यु नहीं होती।
सूत्रों को समझना--
मलूका सोइ पीर है, जो जानै पर-पीर।
मलूक कहते हैंः मैं उसी को संत कहता हूं, जिसने अपनी ही पीड़ा नहीं जानी, दूसरे की पीड़ा भी जानी। यहां तो ऐसे लोग हैं जिन्हें अपनी पीड़ा का भी बोध नहीं है। दूसरों की पीड़ा तो बहुत दूर, इतने मूर्च्छित हैं कि अपनी ही पीड़ा का पता नहीं चल रहा है।
तुम्हें अपनी पीड़ा का पता है? काश, पता होता, तो तुम ऐसे ही बने रहते जैसे तुम हो! कुछ करते न! घर में आग लगी हो और तुम बैठे रहते, ताश खेलते रहते! चौपड़ बिछाए रहते! शतरंज के हाथी-घोड़े चलाते रहते! --घर में आग लगी होती! काश, तुम्हें दिखाई पड़ जाए कि घर लपटों से घिरा है, तो कुछ करोगे, आग को बुझाने के लिए कोई उपाय करोगे। तुम्हें अभी अपनी पीड़ा भी नहीं दिखाई पड़ती। कभी भूल-चूक से दिखाई भी पड़ जाए, तो तुम उसे जल्दी छिपा लेते हो। ढांक लेते हो। शराब पी कर छिपा लेते हो; सिनेमा-गृह में बैठ कर भूल जाते हो; मित्रों से गपशप करने में लग जाते हो; अपने को सदा व्यस्त रखते हो, जब तक जागे रहते हो, सुबह से लेकर रात तक उलझे रहते हो, लगे रहते हो कहीं न कहीं। क्योंकि लगे रहोगे, उलझे रहोगे, तो पीड़ा दिखाई न पड़ेगी। न पड़ेगी पीड़ा दिखाई, न पीड़ा को बदलने के लिए कुछ करना पड़ेगा। थके-मांदे रात गिर जाते हो-- रात भी चैन नहीं, सपनों में उलझे रहते हो। वह भी तुम्हारी चालबाजी है। सपने भी तुम्हारी ईजाद हैं। दिन में तुम काम में उलझाए रखते हो अपने को, रात भी विश्राम नहीं। क्योंकि जहां विश्राम हुआ, वहां डर है कि कहीं भीतर के घाव दिखाई न पड़ जाएं।
इस दुनिया में अधिकतम लोग अपने घावों को भुलाने में लगे हैं। मिटाने में नहीं। जो घावों को भुलाने में लगे हैं, उन्हीं को मैं गृहस्थ कहता हूं। और जो घावों को मिटाने में लग जाते हैं, उन को संन्यस्त कहता हूं। गृहस्थ और संन्यस्त की मेरी और कोई परिभाषा नहीं है। भगोड़ों को नहीं कहता संन्यासी, जगोड़ों को कहता हूं--जो जाग उठे। जिन्होंने देखा कि घर में आग लगी है और हम क्या कर रहे हैं! हम कैसे गंवा रहे हैं समय को!
लोग समय गंवा ही नहीं रहे हैं, लोगों से अगर पूछो कि भई, क्या कर रहे हो? लोग कहते हैंः समय काट रहे हैं। कोई हुक्का पीकर समय काट रहा है; कोई ताश खेल कर समय काट रहा है; कोई व्यर्थ की बकवासों में पड़ा है और समय काट रहा है। पागलो, समय तुम्हें काट रहा है; और तुम सोच रहे हो कि तुम समय को काट रहे हो!
हमारे पास समय के लिए जो मौलिक शब्द है, वैसा शब्द दुनिया में किसी भाषा के पास नहीं है। क्योंकि हमारे पास एक ऐसा शब्द है समय के लिए जो अनूठा है। समय को हमने कहा हैः काल। और मृत्यु को भी काल कहा है। दोनों का एक ही नाम है, अकारण नहीं है। उसके पीछे सार्थकता है। क्योंकि समय मृत्यु है। समय तुम्हारी मृत्यु को करीब ला रहा है। जो तुम्हारी मृत्यु को करीब ला रहा है, वही समय है। इसलिए ठीक है दोनों को एक ही नाम देना। समय और कुछ नहीं, मृत्यु की पगध्वनियां हैं। इसलिए समय को भी काल कहा, मृत्यु को भी काल कहा।

समय तुम्हें खा रहा है। गला रहा है! और मूढ़ता की हद है, कि लोगों का समय काटे नहीं कटता, समय काटने के लिए मनोरंजन चाहिए, समय काटने के लिए न मालूम क्या-क्या उपाय करते हैं। किसे धोखा दे रहे हो? जरा आंख खोलो! समय कितनों को काट चुका है! करोड़ों-करोड़ों लोग काटे जा चुके हैं। रोज कोई गिरता है, रोज कोई मरता है, फिर भी तुम समय काट रहे हो? !
पहली तो जरूरत है कि अपनी पीड़ा को समझो। अपने गहन दुख को समझो। तुम्हारा जीवन अभी नरक है। लेकिन नहीं समझना चाहते। नहीं समझना चाहते तो नहीं सुनते हो। मलूक जैसे व्यक्ति से मिलना भी हो जाए तो भी बहरे हो जाते हो। अंधे हो जाते हो। जीसस ने बार-बार कहा हैः आंखें हों तो देख लो और कान हों तो सुन लो! किससे कहते हैं जीसस? तुमसे कहते हैं। तुम्हारे ही जैसे लोगों से कहा था। उनके पास भी तुम्हारी जैसी आंखें थीं, और तुम्हारे जैसे कान थे। लेकिन क्यों बार-बार कहते हैंः कान हों तो सुन लो, आंख हों तो देख लो? इसलिए कहते हैं कि लोग कहां देखते हैं, यहां-वहां देखते हैं! कान हों तो कुछ का कुछ सुनते हैं। जो देखना चाहिए, नहीं देखते; जो सुनना चाहिए, नहीं सुनते। सबसे बड़ी देखने की बात तो यह है कि मैं अपनी परिस्थिति समझूं कि मैं कहां हूं, क्या हूं? लेकिन, डर लगता है!
मुल्ला नसरुद्दीन को उसके मित्र चंदूलाल ने बंबई से फोन किया। वर्षा
भी नहीं, बादल भी नहीं, फोन बिल्कुल ऐसा साफ जैसा बगल के कमरे से कोई बोल रहा हो। और चंदूलाल ने कहा कि नसरुद्दीन, बहुत मुश्किल में पड़ गया हूं। पांच हजार रुपयों की जरूरत है, तत्क्षण इंतजाम करो।
नसरुद्दीन ने कहाः क्या कहा?
चंदूलाल ने कहा कि सुनाई नहीं पड़ रहा क्या? मुझे तो तुम्हारी बात बिल्कुल साफ-साफ सुनाई पड़ रही है। पांच हजार रुपये की एकदम जरूरत है।
नसरुद्दीन ने कहा कि कुछ सुनाई नहीं पड़ता; कुछ जोर से बोलो।
चंदूलाल चिल्ला कर बोला कि पांच हजार रुपये की जरूरत है।
मुल्ला नसरुद्दीन ने कहाः भाई, सुनाई नहीं पड़ता।
आपरेटर दोनों की बातें सुन रहा था। वह बड़ा हैरान हुआ! उसने कहा कि बड़े मियां, सब साफ सुनाई पड़ रहा है, और आप यही कहे चले जा रहे हो कि सुनाई नहीं पड़ता, सुनाई नहीं पड़ता!
तो नसरुद्दीन ने कहाः तुझे सुनाई पड़ रहा है तो तू ही दे दे! मुझे सुनाई नहीं पड़ रहा है!!
हम वही सुनते हैं, जो हम सुनना चाहते हैं। और वही देखते हैं, जो हम देखना चाहते हैं। हमारा देखना भी गलत है, हमारा सुनना भी गलत है। हम सत्यों से बच रहे हैं। और सत्यों से बचने का कारण है। क्योंकि सत्य का पहला आघात तो कठिन होने वाला है। तुम्हारे भीतर से जन्मों-जन्मों का जो पीड़ा का अंबार है, उसका विस्फोट हो जाएगा। अंगार ही अंगार पाओगे, घाव ही घाव पाओगे, मवाद ही मवाद पाओगे। इसलिए भागे हो, अपने से भागे हो! कहीं अपने से मिलना न हो जाए! भागते ही रहते हो। कि कहीं रुके और भूल-चूक से मिलना न हो जाए! और कभी-कभी अगर आकस्मिक रूप से यह मिलना हो जाता है, तो तुम आंख बचा जाते हो। और कभी संयोगवशात ऐसा व्यक्ति मिल जाता है, जो दर्पण की तरह तुम्हारी असलियत को प्रकट कर दे, तो तुम उसके दुश्मन हो जाते हो। तुम उसे गालियां देते हो। तुम उस पर पत्थर फेंकते हो। तुम उसे जहर पिलाते हो। तुम उसे सूली लगाते हो।
तुम्हारी तकलीफ मैं समझता हूं।
तुम कहते हो कि हमें हमारे हाल पर छोड़ दो। मत दिखाओ हमें हमारे नरक! और
जो अपनी ही पीड़ा नहीं देख रहा है, वह दूसरे की पीड़ा कैसे देख सकेगा? और बड़ा मजा है, जिनको अपनी पीड़ा नहीं दिखाई पड़ती उनको हम समझाते हैं कि दूसरों पर दया करो, दान करो, दूसरों की सेवा करो!
मेरे पास लोग आ जाते हैं, वे कहते हैंः आप लोगों को ध्यान सिखाते हैं!
और देश इतना गरीब! और लोग इतने दुख में! आप लोगों को यह क्यों नहीं कहते कि जा कर सेवा करो? मैं उनसे कहता हूं कि पांच हजार साल से तो तुम कह रहे हो लोगों से कि सेवा करो दुख मिटा? और जो सेवा कर रहे हैं, खुद उनका दुख मिटा? लेकिन सेवा भी एक उपाय बन जाती है अपने दुख से बचने का।

मैं बहुत से सेवकों को जानता हूं। अपने दुख से बचने के लिए वे दूसरे
के दुख में अपने को उलझाए हुए हैं। भूले रहते हैं। उलझे रहते हैं। कोई शराब पी कर अपने को उलझाए रखता है, किसी को कुछ नहीं सूझता तो वह चर्खा ही कातता रहता है। बुद्धूपन की भी कोई सीमाएं होती हैं! शतरंज भी खेलते तो कुछ अक्ल बढ़ती! चर्खा कातोगे, थोड़ी-बहुत और होगी पास तो वह भी चली जाएगी। अब चर्खा कातने में कोई अक्ल की तो जरूरत है भी नहीं! लेकिन उलझाए रखो अपने को!
लोग सेवा में भी अपने को उलझा रहे हैं, वह भी एक व्यस्तता है।
नहीं, मैं तुम्हें दूसरे की पीर की तो कैसे कहूं, वह तो आगे की बात हो जाएगी। मैं पहले तो तुमसे तुम्हारी ही पीर की बात कह सकता हूं। हां, तुमने अगर अपनी पीर जान ली, तो दूसरी बात अपने आप हो जाने वाली है--मुझे कहनी भी नहीं पड़ेगी! और तुम अगर अपनी पीर से ऊपर उठ सके, अपनी पीड़ा को अगर अतिक्रमण कर सके, तो ही तुम दूसरे को भी सहयोग दे सकोगे कि वह अपनी पीड़ा के पार हो जाए। अन्यथा तुम करोगे क्या? स्कूल खोलोगे, अस्पताल खोलोगे, ठीक है, स्कूल से पढ़-लिख कर भी और अस्पताल से स्वस्थ होकर भी बात वही की वही रहेगी।
जीसस के जीवन में एक कहानी है। ईसाई ग्रंथों में उसका उल्लेख नहीं है। ईसाई ग्रंथों में बहुत सी बहुमूल्य कहानियों का उल्लेख नहीं है। लेकिन, जो भी मूल्यवान इस जगत में पैदा होता है, कोई न कोई उसे बचाए रखता है। सूफी फकीर उन कहानियों को बचा लिए हैं जो ईसाइयों ने छोड़ दी हैं। और ईसाइयों ने इस कहानी को जान कर छोड़ा होगा। क्योंकि अगर यह कहानी न छोड़ी जाती तो मदर टेरेसा को नोबल प्राइज नहीं मिल सकती थी।
कहानी है कि जीसस एक गांव में प्रवेश किए। गांव के द्वार पर ही उन्हें
एक युवक एक वेश्या के पीछे भागता हुआ दिखाई पड़ा। वे युवक को तत्क्षण पहचान गए। दौड़े, उसे पकड़ा और कहाः मेरे मित्र, क्या तुम मुझे भूल गए, मैं तो तुम्हें पहचान गया। उस युवक ने जीसस की तरफ क्रोध से देखा और कहा कि मैं भी आपको पहचान गया हूं; और इसीलिए भाग रहा हूं। जीसस ने कहा कि याद है, तुम अंधे थे और मैंने ही तुम्हारी आंखें चमत्कार से ठीक की थीं? उस युवक ने बड़े क्रोध से कहा कि हां, भलीभांति याद है! भूल जाए, ऐसी यह बात नहीं! उम्र भर याद रहेगी! जन्म-जन्म याद रहेगी! तो जीसस ने कहाः जब आंखें तुम्हें मिल गईं तो इन सुंदर आंखों का, दृष्टि का उपयोग वेश्या के पीछे भागने में कर रहे हो! तो उस युवक ने कहा कि अब आपसे क्या छिपाऊं; तो इन आंखों का और क्या करूं? तुम्हीं कहो! अंधा ही बेहतर था। तुमने और एक झंझट लगा दी। इसीलिए तो भाग रहा हूं कि फिर कोई और झंझट न लगा दो!
जीसस को तो भरोसा ही न हुआ कि तुम किसी को आंख दो और वह तुम पर यह लांछन लगाए! कि तुम्हीं कारण हो मेरे उपद्रव के!
वे नगर में प्रविष्ट हुए, उन्हें एक आदमी मिला जो सड़क के किनारे नाली में पड़ा हुआ, शराब पीए गालियां बक रहा था। जीसस ने गौर से देखा, पहचान गए। हिलाया उसे और कहा कि मेरे भाई, मुझे पहचानते हो? तुम बीमार थे, मृत्युशय्या पर पड़े थे, मैंने ही तुम्हें जीवन दिया था; मैंने ही तुम्हें मृत्यु से बचाया था। यह तुम क्या कर रहे हो? जीवन का यह उपयोग? शराब पी कर नाली में पड़े हो? उस आदमी ने सिर ठोंक लिया; उसने कहाः और क्या करूं? तुम्हीं बताओ, और क्या करूं? चार दिन की जिंदगी है, खाओ, पीओ, मौज करो! बहुत दिन पड़ा रहा बिस्तर पर, बहुत दिन धार्मिक रह चुका। बिस्तर पर धार्मिक रहना ही पड़ा! कोई उपाय ही न था। बिस्तर पर सात्विक रहना ही पड़ा! गलत करने की सामर्थ्य भी न थी। धन्यवाद है तुम्हारा कि तुमने मुझे स्वस्थ किया और गलत करने की सामर्थ्य दी। अब तो मेरा पीछा न करो! अब तो चार दिन सुख-शांति से जी लेने दो! ... नाली में पड़ा है, गालियां बक रहा है, इसको सुख-शांति का जीवन कह रहा है!
जीसस को बहुत सदमा लगा। क्या मेरे कृत्यों का यह परिणाम है? वे उदास गांव से बाहर निकल आए।
उन्होंने गांव के बाहर एक आदमी को देखा कि वह फांसी का फंदा लगा रहा था। रोका कि भाई मेरे, रुको! जिंदगी बहुमूल्य है; क्यों फांसी का फंदा लगा रहे हो? और उस आदमी ने कहाः बस, रहने दो! तुम फिर आ गए! मैं मर चुका था... यह

आदमी मर चुका था और जीसस ने इसे मुर्दा से जिंदा किया था... उस आदमी ने कहा, दूर रहना, पास मत फटकना! मैं तो मर चुका था, तुम्हीं ने मुझे जिंदा किया और मुसीबत में डाला। अब रोटी-रोजी, बाल-बच्चे, पत्नी, मकान, हजार झंझटें पीछे लगा दीं! अब मैं फिर मरने आया, आप फिर आ गए! तुम मेरा पीछा छोड़ोगे या नहीं? देख ली जिंदगी बहुत, अब और क्या करना है? मुझे विश्राम करने दो।
लोगों को तुम जीवन दे दो तो वे क्या करेंगे? लोगों को तुम स्वास्थ्य
दे दो, वे क्या करेंगे? लोगों को तुम शिक्षा दे दो, वे क्या करेंगे? वे जो हैं, वही तो करेंगे न! जैसे बच्चे के हाथ में तलवार आ जाए; कि बच्चे के हाथ में जहर आ जाए; वह करेगा क्या?
सेवा से नहीं होगा। तुम्हें जागना होगा। और तुम्हारे जागरण से, तुम्हारे आनंद से, तुम्हारे अहोभाव से अगर तुम औरों को भी जगा सको! और जागरण बड़ी और बात है। वह जीवन की साधारण सुविधाओं का नाम नहीं है। न स्वास्थ्य का नाम है, न बीमारी से मुक्त होने का, न अंधेपन से मुक्त होने का। जागरण हैः भीतर परमात्मा है, इसके अनुभव का नाम। फिर तुम्हारे जीवन से जो होगा, शुभ होगा।
ठीक कहते हैं मलूक--
मलूका सोइ पीर है, ...
वे कहते हैंः मैं उसी को संत कहता हूं--साधक वह जो स्वयं की पीड़ा को जाने और संत वह जो दूसरे की पीड़ा को जाने। कौन है पीर? कौन है संत?
मलूका सोइ पीर है, जो जानै पर-पीर।
यह व्याख्या की उन्होंने। प्यारी व्याख्या की। संत वह है, जो दूसरे
की पीड़ा जाने। लेकिन पीड़ा जानने का मतलब? मलूकदास ने कोई अस्पताल नहीं खोले, और न स्कूल खोले... और किसी ने खोले भी हों, मलूकदास तो इस तरह के उपद्रव कर ही नहीं सकते। तुम तो जानते ही हो मलूकदास क्या कह गए! --"अजगर करै न चाकरी, पंछी करै न काम; दास मलूका कह गए, सबके दाता राम।" एक ही बात सिखाई उन्होंने कि सब भांति परमात्मा पर समर्पित हो रहो। मार जाओ डुबकी उसमें! लीन हो जाने दो अपनी बूंद को उसके समुद्र में! मिट जाएगी सारी पीड़ा! जो पर-पीर न जानही, सो काफिर बेपीर।
वे कहते हैंः मैं उसी को नास्तिक कहता हूं, जिसे दूसरे की पीड़ा का कोई बोध नहीं है। मगर ध्यान रखना, पुनः-पुनः ध्यान रखना, दूसरे की पीड़ा वही जान सकता है जिसे स्वयं की पीड़ा का बोध हो। और बोध ही नहीं, जिसने स्वयं की पीड़ा मिटा ली हो, वही दूसरे की पीड़ा जान सकता है। और वही दूसरे की पीड़ा मिटाने में सहयोगी हो सकता है। अन्यथा ईसाई मिशनरी हो सकते हो तुम। और तुम्हें सम्मान भी बहुत मिलेगा। तुम भिखमंगों की सेवा कर सकते हो, इससे भिखमंगापन नहीं मिटता; तुम कोढ़ियों की सेवा कर सकते हो, इससे कोढ़ी भी नहीं मिटते; हां, तुम उलझे रहोगे। तुम्हारी जिंदगी अकारथ हो जाएगी। तुम्हारी जिंदगी में भी दीया नहीं जलेगा। तुम्हें एक व्यस्तता मिल जाएगी।
दूसरे की पीड़ा वही मिटा सकता है जिसने पहले अपनी पीड़ा मिटा ली हो। जो जाग गया, वही जगा सकता है। जो अभी खुद ही सो रहे हैं, जो अभी खुद ही नींद में बड़बड़ा रहे हैं, इनसे तुम सोचते हो कि दूसरों का जागरण हो सकेगा? यह असंभव है।
इसलिए इस देश ने सेवा नहीं सिखाई, सत्संग सिखाया। इस देश ने सेवा नहीं सिखाई, साधना सिखाई। सेवा साधना की अनिवार्य परिणति है; अपने आप आ जाती है। जैसे फूल खिलते हैं तो सुगंध आ जाती है, और सूरज निकलता है तो रोशनी हो जाती है, और दीया जलता है तो अंधेरा मिट जाता है, बस, ऐसे!
जहां-जहां बच्छा फिरै, तहां-तहां फिरै गाय।
कह मलूक जहं संतजन, तहां रमैया जाए।।
और मलूक कहते हैंः एक और राज की बात तुम्हें बता दूं कि जैसे बछड़े के पीछे उसकी गाय घूमती है, ऐसे संतों के पीछे परमात्मा घूमता है। संतों को परमात्मा खोजने हिमालय नहीं जाना पड़ता, खुद परमात्मा संतों को खोजता चला आता है, संत जहां होते हैं।
कबीर ने कहा हैः पहले मैं ईश्वर को खोजता फिरता था, और जब तक ईश्वर को खोजता फिरा, ईश्वर मुझे मिला नहीं। खोज में ही भूल है। खोज में तुमने कई

बातें मान लीं। एक तो यह कि खो दिया है। जो कि गलत है। ईश्वर को कभी हमने खोया नहीं। इसलिए खोजेंगे कैसे? और खोजोगे कहां? क्या कहीं और है ईश्वर जो तुम उसे खोजने जाओगे? है तो यहां है, नहीं तो फिर कहीं भी नहीं है। है तो अभी है, नहीं तो फिर किसी और समय में--अतीत में या भविष्य में--उसे तुम न पा सकोगे। अगर आज और अभी नहीं है, तो मृत्यु के बाद नहीं होगा। अगर इस लोक में नहीं है, तो परलोक में नहीं होगा। अगर पृथ्वी पर नहीं है, तो आकाश भी उससे शून्य है। है तो सब जगह है। सच पूछो तो ईश्वर होने का ही दूसरा नाम है; अस्तित्व का ही दूसरा नाम है।
कबीर कहते हैं कि पहले मैं खोजता फिरा, तब उसे नहीं पाया। फिर मुझे समझ में आया कि मेरे खोजने में ही भूल हो रही है। यह खोजना भी एक वासना है। यह भी इच्छा है। यह भी मन की आकांक्षा, अभीप्सा है। यह भी महत्वाकांक्षा है। फिर मैंने यह खोज भी छोड़ दी। जैसे और सारी इच्छाएं छोड़ दी थीं, यह इच्छा भी छोड़ दी। जिस दिन यह इच्छा छोड़ दी, उस दिन से वह मेरे पीछे घूमता है... कहत कबीर कबीर! हरि लागे पीछे फिरत, कहत कबीर कबीर!
कह मलूक जहं संतजन, तहां रमैया जाए।
वह राम वहां-वहां चला जाता है, जहां-जहां संत होते हैं।
इसलिए हमने सदगुरु को भगवान की उपस्थिति की जगह माना। उसे तीर्थ माना। क्योंकि जहां सदगुरु है, वहां राम होगा ही। राम तो सभी जगह है, मगर सदगुरु के पास जाग्रत है, ज्योतिर्मय है, प्रज्ज्वलित है। तुम्हारे भीतर बुझा-बुझा, धुआं-धुआं, सदगुरु के भीतर अंगारे की तरह दहकता हुआ।

कुछ न हुआ, न हो
मुझे विश्व का सुख, श्री, यदि केवल
पास तुम रहो।
मेरे नभ के बादल यदि न कटे--
चंद्र रह गया ढका,
तिमिर रातको तिर कर यदि न अटे लेश गगन-भास का,
रहेंगे अधर हंसते, पथ पर, तुम हाथ यदि गहो।
बहु रस साहित्य विपुल न पढ़ा-- मंद सबों ने कहा,
मेरा काव्यानुमान यदि न बढ़ा-- ज्ञान, जहां का रहा,
रहे, समझ है मुझमें पूरी, तुम कथा यदि कहो।

कुछ न हुआ, न हो
मुझे विश्व का सुख, श्री, यदि केवल
पास तुम रहो।
रहेंगे अधर हंसते, पथ पर, तुम
हाथ यदि गहो।

और इस जगत में क्या है पाने योग्य? एक परमात्मा हाथ गह ले, एक परमात्मा साथ हो ले, तो सब साथ है। और नहीं तो सारा जगत साथ हो तो भी तुम अकेले हो-- भीड़ में भी अकेले हो। प्रियजन हैं, परिवार है, फिर भी तुम अकेले हो। देखते हो अपने अकेलेपन को? कौन जाएगा साथ? कल श्वास उड़ जाएगी, अरथी बंध जाएगी, कौन देगा साथ? यहां न कोई संगी है, न कोई साथी है। यहां सब भुलावे हैं। यहां के सब वायदे, यहां की सब कसमें, यहां के सब आश्वासन झूठे हैं। बस, बात की बात है। उलझाए रखने की तरकीबें हैं। अपने को भुलावे में डाले रखने के उपाय हैं। नशे हैं, मादक व्यवस्थाएं हैं। जिनमें हम सोए-सोए जिंदगी गुजार देते हैं।

लेकिन तुम अकेले हो। परमात्मा जब तक तुम्हारे साथ नहीं, उसका हाथ जब
तक तुम्हारे हाथ में नहीं, तब तक तुम अकेले हो। इस अकेलेपन को पहचानो। इसके पहचानने का नाम संन्यास है कि मैं अकेला हूं। जंगल में भाग कर अकेले होने की जरूरत कहां है? अकेले तुम हो ही। जहां हो वहीं अकेले हो। ठेठ घर में, ठेठ बाजार में, बीच बाजार में अकेले हो। अकेलापन जानने के लिए तुम्हें पहाड़ पर किसी गुफा में बैठना पड़े, तो तुम्हारा अकेलेपन का बोध सच्चा नहीं है। पत्नी छोड़ कर जाना पड़े तब तुम जानोगे कि अकेले हो? पत्नी के पास जो न जान सका कि अकेला हूं, वह और कहां जानेगा कि अकेला है?
एक नई विधवा ने बीमा कंपनी में जाकर मैनेजर से पति के बीमे की रकम मांगी, तो मैनेजर ने शिष्टाचारवश उसे कुर्सी पर बैठने को कहा और बोलाः हमें यह सुनकर बड़ा ही दुख हुआ देवी जी, कि आपके पतिदेव नहीं रहे।"
देवीजी बिगड़ कर बोलींः जी हां, पुरुषों का सब जगह यही हाल है। जहां स्त्री को चार पैसे मिलने का अवसर आता है, उन्हें बड़ा दुख होता है।
अगर तुम्हारी पत्नी तुम्हें तुम्हारे अकेलेपन का स्मरण नहीं दिला सकी, तो हिमालय की कोई गुफा सफल नहीं हो सकेगी। अगर तुम्हारा पति तुम्हें याद न दिला सका, तो कोई मंदिर, कोई मस्जिद कारगर नहीं हो सकती।
एक स्त्री को ज्योतिषी ने बताया--विधवा होने के लिए तैयार हो जाओ। शीघ्र ही तुम्हारे पति की हत्या हो जाएगी।
स्त्री ने पूछाः उसके बाद? ... क्या मैं बरी हो जाऊंगी?
पति-पत्नी सोच ही क्या रहे हैं? तुम जरा अपने भीतर ही झांक कर देखो!? कौन पति होगा जिसने नहीं सोचा होगा कई बार कि कब छुटकारा हो जाए! कैसे छुटकारा हो! कौन पत्नी नहीं है जिसने नहीं सोचा कि विधाता ने भी भाग्य में किसको लिख दिया था!
बाजार में जितने जोर से अकेलेपन का अनुभव हो सकता है, कहीं और नहीं हो सकता। अकेलेपन में शायद तुम भूल ही जाओ, लेकिन यहां तुम्हें जगाए रखने के लिए चारों तरफ से भाले चुभ रहे हैं। इसलिए मैं नहीं कहता कहीं भागो, यहीं देखो, समझो, पहचानो! अकेले हो, और तब तक अकेले रहोगे जब तक परमात्मा का हाथ हाथ में न हो।
कह मलूक हम जबहिं ते लीन्ही हरि की ओट।
सोवत हैं सुखनींद भरि, डारि भरम की पोट।।
मलूक कहते हैं कि हमने तो यह देख कर कि यहां तो सब अकेलापन ही अकेलापन
है, कोई संगी नहीं, कोई साथी नहीं, हरि की ओट ले ली। हम तो हरि के साथ हो लिए। हम तो हरि के पीछे हो लिए। हमने तो उसकी बांह पकड़ ली। और तब से--
सोवत हैं सुखनींद भरि, डारि भरम की पोट।।
अब सारे भ्रम हमारे गिर गए हैं। अब तो हम महाआनंद की नींद में लीन हैं। अब हम विश्राम में हैं। अब कोई हमारे जीवन में उपद्रव नहीं है। एक छोटा सा रहस्यः हरि की ओट। और तुम्हारे जीवन में क्रांति घट जाती है।

सलिल-कण हूं कि पारावार हूं मैं
स्वयं छाया, स्वयं आधार हूं मैं।
बंधा हूं, स्वप्न हूं, छोटा बना हूं,
नहीं तो व्योम का विस्तार हूं मैं।

समाना चाहती जो बीन उर में,
विकल उस शून्य की झंकार हूं मैं। भटकता खोजता हूं ज्योति तम में, सुना है ज्योति का आगार हूं मैं!

जिसे निशि खोजती तारे जला कर,
उसी का कर रहा अभिसार हूं मैं। जनम कर मर चुका सौ बार लेकिन अगम का पा सका क्या पार हूं मैं?

कली की पंखड़ी पर ओस-कण में,
रंगीले स्वप्न का संसार हूं मैं; मुझे क्या आज ही या कल झरूं मैं।
सुमन हूं, एक लघु उपहार हूं मैं।

सलिल-कण हूं कि पारावार हूं मैं
स्वयं छाया, स्वयं आधार हूं मैं।
बंधा हूं, स्वप्न हूं, छोटा बना हूं,
नहीं तो व्योम का विस्तार हूं मैं।

शरीर से बंधे हो, मन से बंधे हो, तो छोटे हो। परमात्मा से बंधो तो सारा आकाश तुमसे छोटा है।
गांठी सत्त कुपीन में, सदा फिरै निःसंक।
मलूक कहते हैंः इस सत्य को अपने कोपीन में बांध लो और फिर निःशंक हो
कर फिरो! न तुम्हें फिर कोई लूट सकता--क्योंकि सत्य चुराया नहीं जा सकता।
मृत्यु भी उसे नहीं छीन सकती।
गांठी सत्त कुपीन में, सदा फिरै निःसंक।
नाम अमल माता रहै, ...
एक बार प्रभु का नाम तुम्हारी पकड़ में आ जाए... नाम अमल माता रहै... फिर मदमाते रहो, फिर मस्त रहो, अलमस्त रहो।
... गिनै इंद्र को रंक।
मलूक कहते हैंः अगर इंद्र भी मेरे सामने खड़ा हो तो मुझे भिखारी मालूम पड़ेगा।... जिसको परमात्मा मिल गया, उसके लिए इंद्र भी भिखारी है।
धर्महि का सौदा भला, दाया जग ब्योहार।
रामनाम की हाट ले, बैठा खोल किवार।।
कहते हैंः और सब सौदे करके देख लिए, पाया क्या? सब जगत का व्यवहार थोथा है। कौड़ियों का है। हीरे-जवाहरात ऐसे नहीं मिलते! ...
धर्महि का सौदा भला, ...
अगर हीरे-जवाहरात पाने हों तो एक ही सौदा करने योग्य है, वह धर्म का सौदा है।
रामनाम की हाट ले, बैठा खोल किवार।
और कहां चले जा रहे हो, किन दुकानों पर भटक रहे हो, परमात्मा दरवाजा खोले, दुकान सजाए बैठा है कि आओ! परमात्मा बिकने को राजी है तुम्हारे हाथ! तुम जरा झोली फैलाओ!
औरहिं चिंता करन दे, तू मत मारे आह।
जाके मोदी राम-से, ताहि कहा परवाह।।
मलूक कहते हैं कि जब से हमने यह राज जाना, यह कुंजी हमारे हाथ लगी, तबसे हमने यह समझ लिया कि करने दो औरों को चिंता।
औरहिं चिंता करन दे, तू मत मारे आह।
अब तो आह हमसे निकलती ही नहीं, चिंता होती ही नहीं!
जाके मोदी राम-से, ...
हमारा साहूकार तो राम है।
जाके मोदी राम-से, ताहि कहा परवाह।
अब हम किसकी परवाह करें? अब हम छोटे-मोटे मोदियों के पीछे नहीं घूमते! रामराय असरन सरन, मोहिं आपन करि लेहु।
इतनी ही प्रार्थना करो कि हे प्रभु, हे अशरण को शरण देने वाले, हे अपात्र को पात्र बना लेने वाले, हे पापी को पुण्यात्मा कर लेने वाले, हे लोहे को छू दो तो सोना हो जाए ऐसे पारस, मोहिं आपन करि लेहु! मुझे अपना कर लो! मुझे अपना बना लो!
संतन संग सेवा करौं, भक्ति-मजूरी देहु।
बस, इतना ही कर दो कि संतों के साथ मेरा जोड़ बन जाए। तुम तो हो अदृश्य, तुम्हें तो छुऊं तो कैसे छुऊं, तुम्हें देखूं तो कहां देखूं, इतनी ही दया कर दो--

संतन संग सेवा करौं, ...
संतों का संग मिल जाए, संतों के चरण मिल जाएं।
... भक्ति-मजूरी देहु।
और कुछ चाहता नहीं मजदूरी में, बस भक्ति बढ़ती रहे!
सुनते हो? यह प्यारा वचन सुनते हो! गांठ बांध कर रख लेना। हीरों से भी ज्यादा जगमगाता वचन है।
संतन संग सेवा करौं, भक्ति-मजूरी देहु।।
और कुछ ज्यादा मांगता नहीं, मजदूरी में भी और कुछ नहीं मांग रहे हैं, इतना ही कि मेरी भक्ति बढ़ती रहे, मेरी प्रार्थना गहन होती रहे!
भक्ति-मजूरी दीजिए, कीजै भवजल पार।
बोरत है माया मुझे, गहे बांह बरियार।।
भक्ति की मजूरी इसलिए मांगता हूं, कहते हैं मलूक, क्योंकि भक्ति की नाव ही मुझे इस भवसागर के पार ले जा सकती है। अन्यथा माया मुझे जबरदस्ती डुबाने की कोशिश में लगी है... माया का अर्थ हैः मूर्च्छा।... मैं मूर्च्छा में डूबा जा रहा हूं, मुझे जगाओ!
एक सुंदर अध्यापिका की आवारगी की चर्चा जब स्कूल में बहुत होने लगी
तो स्कूल की मैनेजिंग कमेटी ने दो सदस्यों को जांच-पड़ताल का काम सौंपा। ये दोनों सदस्य उस अध्यापिका के घर पहुंचे। सर्दी अधिक थी, इसलिए एक सदस्य बाहर लान में ही धूप सेंकने के लिए खड़ा हो गया और दूसरे सदस्य से उसने कहा कि वह खुद ही अंदर जाकर पूछताछ कर ले। एक घंटे के बाद वह सज्जन बाहर आए और उन्होंने पहले सदस्य को बताया कि अध्यापिका पर लगाए गए सारे आरोप बिल्कुल निराधार हैं। वह तो बहुत ही शरीफ और सच्चरित्र महिला है।
इस पर पहला सदस्य बोलाः ठीक है, तो फिर हमें चलना चाहिए। मगर यह क्या? तुमने केवल अंडरवीयर ही क्यों पहन रखी है? जाओ, अंदर जाकर फुलपेंट तो पहन लो।
यहां होश किसको?
मुल्ला नसरुद्दीन एक रात घर लौटा। जब उसने अपना चूड़ीदार पाजामा निकाला तो पत्नी बड़ी हैरान हुई; अंडरवीयर नदारद!! तो उसने पूछाः नसरुद्दीन अंडरवीयर कहां गया?
नसरुद्दीन ने कहा कि अरे! जरूर किसी ने चुरा लिया!!
अब एक तो चूड़ीदार पाजामा! उसमें से अंडरवीयर चोरी चला जाए और पता भी नहीं चला!! चूड़ीदार पाजामा नेतागण पहनते ही इसीलिए हैं कि कोई कितना ही खींचे, निकल न सके! पहनो तो दो आदमी पहनाने को चाहिए, निकालो तो चार आदमी निकालने को चाहिए! और इनका अंडरवीयर चोरी चला गया!!
मगर होश किसको है?
क्या लोग कह रहे हैं? कैसे लोग जी रहे हैं? लोगों के जीवन को अगर गौर
से देखो तो एक बात निचोड़ की मिलेगीः मूर्च्छित, बेहोश चले जा रहे हैं! नहीं पक्का पता है कौन हैं, नहीं पक्का पता है कहां जा रहे हैं? नहीं पक्का पता है किसलिए जा रहे हैं? पहुंच कर क्या करेंगे, इसका भी कुछ पक्का पता नहीं है। दौड़ रहे हैं, बड़ी आपा-धापी है। किसी को रोक कर पूछो कि जीवन का अर्थ क्या है, तो वह कहता हैः समय नहीं है! बेकार की बातें न करो! काम की बातें करो!
मैं छोटा था तो मैं हर किसी से पूछता था कि जीवन का अर्थ क्या है? तो
वे कहते, बड़े हो जाओगे, सब समझ में आ जाएगा। तो जिन-जिन ने मुझसे कहा था, जब मैं बड़ा हो गया, मैं उनसे फिर पूछता कि अब मैं बड़ा भी हो गया, जीवन का अर्थ क्या है? तो वे कहते, तुम भी हद के हो! आमतौर से लोग बड़े हो जाते हैं फिर वे यह बात नहीं पूछते। क्योंकि तब तक ये समझ जाते हैं कि कहां का अर्थ, कहां का क्या! जीवन की धमाचौकड़ी में सब भूल ही जाते हैं। हमें पता नहीं है, फिर उन्होंने कहा। मैंने कहा, तुमने यह पहले ही क्यों नहीं कह दिया? तुमने जब कहा था बड़े हो जाओगे तब पता चलेगा, तभी मुझे साफ था कि तुम्हें पता नहीं है, सिर्फ टाल रहे हो।
यह स्वीकार करने की कठिनाई है कि मुझे मालूम नहीं।

लेकिन सत्य के खोजी को तथ्यों को स्वीकार करना आना चाहिए। अपने अज्ञान की स्वीकृति ज्ञान की तरफ पहला चरण है।
बोरत है माया मुझे, गहे बांह बरियार।
जबरदस्ती मेरी बांह पकड़ कर मूर्च्छा मुझे डुबाए लेती है। जगाओ मुझे! होश दो मुझे! भक्ति दो! भाव दो! मेरी आंखें आकाश की तरफ उठें, पृथ्वी में ही गड़ी न रह जाएं!
सभा के बाद एक दिन नेता जी अपने सेक्रेटरी पर बरस पड़े। बोलेः उल्लू के पट्ठे! तुमने मुझे इतना लंबा भाषण क्यों लिख कर दिया? भाषण में कई बार तो बहुत हूटिंग हुई। लोगों ने केले के छिलके फेंके, सड़े अंडे फेंके, जूते घिसे, आवाजें लगाईं, कोई कुत्ते की बोली में बोले, कोई बिल्ली की बोली में बोले; यह तुमने किस तरह का भाषण लिखा? और इतना लंबा भाषण कि मैं खत्म भी करना चाहूं तो वह खत्म न हो।
सेक्रेटरी ने क्षमायाचना करते हुए कहाः नेता जी, भाषण तो वह लंबा नहीं था। हां, इतनी गलती जरूर मुझसे हो गई कि मैंने भाषण की चारों कापियां आपको दे दीं। और आप मूल प्रति के साथ-साथ कार्बनकापियां भी पढ़ते चले गए। वह तो आप पिटे नहीं, यही बहुत है!
होश किसको है? लोग जीए जा रहे हैं, कहे जा रहे हैं, चले जा रहे हैं, बोले जा रहे हैं, हजार तरह के काम-धाम किए जा रहे हैं, मगर होश किसे है? ध्यान किसे है कि क्या कर रहे हैं, क्यों कर रहे हैं?
भक्ति का अर्थ होता हैः जागृति, होश!
प्रेम नेम जिन ना कियो, जीतो नाहीं मैन।
अलख पुरुष जिन ना लख्यो, छार परो तेहि नैन।।
बड़ी मूल्य की बात कह रहे हैं। कह रहे हैं कि जिन्होंने प्रेम का नियम
न जाना और जिन्होंने मन के ऊपर उठने की कला न सीखी, उन्होंने अलख पुरुष को नहीं देखा। उन्होंने परमात्मा को नहीं देखा।
परमात्मा को देखने के दो ही उपाय हैं। एक ही उपाय के दो हिस्से हैं, एक
ही सिक्के के दो पहलू हैं। मन से ऊपर उठो और प्रेम में प्रवेश करो। मन से जो ऊपर उठता है, वही प्रेम में प्रवेश करता है। मन को छोड़ो तो प्रेम का नियम आए, प्रेम की जीवन-शैली आए।
प्रेम नेम जिन ना कियो, जीतो नाहीं मैन।
अलख पुरुष जिन ना लख्यो, छार परो तेहि नैन।।
मलूकदास कहते हैंः उस आदमी ने जिसकी आंखों में मन ही मन रहा, विचार ही विचार रहे, मूर्च्छा ही मूर्च्छा रही, जिसने कभी प्रेम की पुलक न जानी, ज्योति न जानी, जिसने कभी भक्ति का रस न जाना, उसने परमात्मा को तो देखा ही नहीं। मन से परमात्मा नहीं देखा जाता। प्रीति से देखा जाता है। प्रीति हृदय की बात है, मन की नहीं। और जिसने परमात्मा नहीं जाना, समझ लेना उसकी आखों में...
... छार परो तेहि नैन।
उसकी आंखों में आंखें नहीं हैं; उसकी आंखें फूटी हैं; छार पड़ा है उसकी आंखों में। जैसे नमक किसी ने उसकी आंखों में डाल दिया हो। कुछ उसे दिखाई पड़ता नहीं है। अंधा है वह। आंखें होते हुए अंधा, कान होते हुए बहरा। जीवन होते हुए मृत।
रात न आवै नींदड़ी, थरथर कांपै जीव।
ना जानूं क्या करैगा, जालिम मेरा पीव।।
मलूक कहते हैंः जब प्रभु की तरफ प्रेम की थोड़ी सी धार बहनी शुरू होगी,
तो रात की नींद खो जाएगी...
रात न आवै नींदड़ी, थरथर कांपै जीव।
और बड़ी आतुरता में, बड़ी व्याकुलता में, बड़ी विरह में थर-थर जीया कांपेगा।
ना जानूं क्या करैगा, जालिम मेरा पीव।
परमात्मा पता नहीं क्या करने वाला है? क्या होने वाला है? ... इसके पहले कि कोई व्यक्ति परमात्मा को उपलब्ध हो, एक घड़ी बीतती है मध्य-काल की, जिसको विरह की घड़ी कहते हैं, संसारी और संत के बीच एक अंतराल है, वह अंतराल

विरह का है; संसार छूट जाता है और परमात्मा हाथ नहीं लगता; उस क्षण प्राण थर-थर कांपते हैं। कुछ सूझता नहीं। क्योंकि जहां पैर जमे थे कल तक, वह जमीन भी गई और अभी नई जमीन मिली नहीं। उन घड़ियों में ही सदगुरु की जरूरत होती है कि हाथ को सम्हाले रहे। कि भरोसा देता रहे। कि कहता रहे, चरैवेति, चरैवेति; चलते चलो, चलते चलो, मत घबड़ाओ, सुबह दूर नहीं है, रात जितनी अंधेरी हो रही है, सुबह उतनी करीब आ रही है।
हरी डारि ना तोड़िए, लागै छूरा बान।
दास मलूका यों कहै, अपना-सा जिव जान।।
मत दो किसी को दुख। हरी डाल भी मत तोड़ो वृक्ष से। क्योंकि वहां भी परमात्मा का ही वास है; एक ही जीवन व्याप्त है। किसी को दुख न दो, पीड़ा न दो। क्योंकि इस तरफ पीड़ा दिए चले जाओ और वहां मंदिर में प्रार्थना किए चले जाओ, तो प्रार्थना कभी पूरी नहीं होगी। झूठी है, झूठी ही रहेगी।
एकनाथ लौटते थे काशी से गंगाजल लेकर। बड़े दिनों की अभिलाषा थी कि काशी का गंगाजल लेकर रामेश्वरम में चढ़ाएं। और रास्ते में मरुस्थल पड़ा, और भी तीर्थयात्री साथ थे, सब अपना-अपना गंगाजल लिए चले जा रहे थे। एक गधा तड़फ रहा है, मर रहा है। और सब तो बच कर निकल गए--किसको गधे से कुछ लेना-देना है-- लेकिन एकनाथ ने अपना गंगाजल गधे को पिला दिया। लोगों ने कहाः यह क्या करते हो? नास्तिक हो? अरे, जो लाए हो रामेश्वरम में चढ़ाने के लिए, वह गधे को चढ़ा रहे हो? जो शिव के मंदिर में चढ़ना है, उस को गधे को पिला रहे हो?
एकनाथ ने कहा कि तुम अंधे हो; अब रामेश्वरम जाने की जरूरत नहीं, जिसके लिए मैं जल लाया था, वह यहीं आ गया। मेरा काम पूरा हो गया। अब मैं यहीं से घर वापस जाता हूं। तुम जाओ रामेश्वरम। और मैं तुमसे कहे देता हूं, तुम्हें रामेश्वरम का जो मालिक है, वहां मिलेगा नहीं, क्योंकि वह यहां पड़ा है; वह गधा होकर यहां मौजूद है। और एकनाथ वहीं से लौट आए।
आज किसी और का तो नाम भी याद नहीं है कि बाकी जो तीर्थयात्री थे, वे कहां गए? रामेश्वरम में चढ़ा दिया होगा जल जाकर उन्होंने; लेकिन एकनाथ एक ज्योतिर्मय प्रज्ञापुरुष हो गए। और एकनाथ को सब से महत्वपूर्ण अनुभव उस गधे को पानी पिलाते वक्त हुआ। क्योंकि है तो अंततः वही। उसके अतिरिक्त और कोई भी नहीं है।
जे दुखिया संसार में, खोवो तिनका दुक्ख।
दलिद्दर सौंप मलूक को, लोगन दीजै सुक्ख।।
मलूक दास कहते हैंः अगर तुम्हें देने की ही पड़ी हो बहुत, दुख किसी को,
तो मुझे दे जाओ। लेकिन दूसरों को सुख देना। दुख देने की आदत ही पड़ी हो, तो मुझे दे जाओ, मुझे सता लो।
यही तो आधार है जीसस के संबंध में इस बात के कहे जाने का कि उन्होंने सारे संसार की पीड़ा अपने ऊपर ले ली। यह प्रतीक है। सूली पर चढ़ना, सारी दुनिया की सूली जैसे खुद झेल ली। इस जगत में जिन्होंने भी परमात्मा को जाना है, उन्होंने अलग-अलग रूपों में, अपने-अपने ढंगों से--सभी सूली पर चढ़ें, ऐसा कुछ जरूरी नहीं। बुद्ध सूली पर नहीं चढ़े, लेकिन बुद्ध की सूली जीसस की सूली से ज्यादा कठिन है। जीसस की सूली तो घड़ी भर में निपट गई, बुद्ध बयालीस साल सूली पर चढ़े रहे। क्योंकि बयालीस साल लोगों की गालियां सहीं। जीसस की सूली मेरी दृष्टि में सरल है। निपट गई, घड़ी भर की बात थी। लेकिन बुद्ध को बयालीस साल गालियां सहनी पड़ीं, पत्थर सहने पड़े।
मलूक कहते हैं कि मुझे दे जाओ दुख, अगर देने की ही बहुत आदत पड़ गई हो, बिना दिए मन मानता ही न हो; गाली ही देनी हो तो मुझे दे जाओ, कांटे ही फेंकने हों तो मुझ पर फेंक जाओ, लेकिन दूसरों को मत देना दुख।
मलूक वाद न कीजिए, क्रोधै देहु बहाए।
मलूक कहते हैंः और व्यर्थ के वाद-विवाद में न पड़ो।... ये अपने शिष्यों
को दिए गए वचन हैं।... क्योंकि वाद-विवाद से कुछ सिद्ध होता नहीं। किसने परमात्मा को विवाद से सिद्ध किया है? और कौन विवाद से परमात्मा को असिद्ध कर सका है? यह बात ही वाद-विवाद की नहीं है, जानने की है, अनुभव की है। और अनुभव तर्क से नहीं होगा, ध्यान से होगा। अंधा आदमी विवाद करता रहे प्रकाश के संबंध में, जितना चाहे उतना करता रहे, मगर विवाद से कुछ प्रकाश का अनुभव

नहीं होगा। कितनी ही चर्चा करो प्रकाश की, अंधेरा रहेगा, दीया नहीं जलेगा। दीया रख कर बैठे रहो और प्रकाश-प्रकाश दोहराते रहो, मर जाओ दोहराते- दोहराते, दीये की बाती में ज्योति नहीं आएगी। और अंधा अगर जिद्दी हो तो कह सकता है प्रकाश नहीं है; और तुम सिद्ध न कर पाओगे। और हालांकि तुम जानते हो कि प्रकाश है। तुम देख रहे हो कि प्रकाश है। तुम यह भी जानते हो कि अंधा भी प्रकाश से घिरा हुआ है, मगर सिद्ध न कर सकोगे। अंधे की भी आंख ठीक हो, आंख का इलाज हो, औषधि मिले तो ही कोई उपाय है।
बुद्ध ने कहा हैः मैं वैद्य हूं, विचारक नहीं। नानक ने भी कहा है कि मैं वैद्य हूं, विचारक नहीं; औषधि देता हूं, उपदेश नहीं; उपचार करता हूं, उपदेश नहीं। क्योंकि यह प्रश्न उपचार का है। तुम बीमार हो। आध्यात्मिक रूप से बीमार हो। तुम्हें एक तरह की औषधि चाहिए। वाद-विवाद से क्या होगा? हां, यह हो सकता है कि कोई अगर ज्यादा वाद-विवादी हो तो शायद तुम्हारी बोलती बंद कर दे। मगर बोलती बंद कर देने से तुम्हारा हृदय तो रूपांतरित नहीं होगा! भीतर तो आग उबलती रहेगी। और यह भी हो सकता है कि तुम नरक के भय से या स्वर्ग के प्रलोभन से परमात्मा को मान लो, मोक्ष को मान लो, लेकिन भीतर तो संदेह बना ही रहेगा। भीतर तो शक-सुबह चलता ही रहेगा। कौन जाने ऐसा हो, ऐसा न हो! जो लोग कहते हैं, झूठ कहते हों! या झूठ न कहते हों, खुद ही धोखा खा गए हों, किसी भ्रांति में पड़ गए हों! तुम्हारे भीतर संदेह की एक अंतर्धारा बहती रहेगी।
इसलिए ठीक कहते हैं मलूकः
मलूक वाद न कीजिए, क्रोधै देहु बहाए।
और वाद से व्यर्थ क्रोध बढ़ेगा, झगड़ा बढ़ेगा। लोगों को इसकी थोड़े ही चिंता है कि सत्य क्या है, इसकी ज्यादा चिंता है कि मेरी बात सत्य होनी चाहिए। मैं सत्य हूं। लोग विवाद करते हैं तब असली में यह नहीं कहते वे कि मेरी बात सत्य है, वे यह कह रहे हैं कि मेरी बात, मेरी बात और असत्य हो सकती है! बात से कुछ लेना-देना नहीं है, बात कोई भी हो, मगर मेरी है तो सत्य होनी ही चाहिए। अहंकार संयुक्त है। सारा विवाद अहंकार का विवाद है। सत्य की शोध से इसका कोई संबंध नहीं है।
हार मानु अनजान तें, बकबक मरै बलाय।
इससे तो बेहतर, अपने शिष्यों को कहते हैं, हार मान लेना। देखो कि कोई अनजान अज्ञानी व्यर्थ का विवाद करता है, एकदम हार ही मान लेना। हार ही जाना। लाओत्सु ने भी यही कहा है। बड़ी अदभुत बात कही है लाओत्सु ने। लाओत्सु ने कहा हैः मुझे कोई हरा नहीं सकता। क्योंकि तुम हराओ, उसके पहले मैं चारों खाने चित! तुम्हें मैं मेहनत ही नहीं करने देता; तुम नाहक मेहनत कर रहे हो, मैं चारों खाने चित! जैसा कभी-कभी छोटे बच्चे के साथ बाप कुश्ती लड़ता है--खेल-खेल में। अब छोटे बच्चे से कुश्ती लड़ोगे तो उसे कोई चित करके उसकी छाती पर थोड़े ही बैठोगे? अगर ऐसा कोई बाप करे तो वह मूढ़ है। छोटे बच्चे के साथ कुश्ती लड़ता है तो खेल है। जल्दी ही थोड़ा लड़-झगड़ कर--एकदम भी नहीं लेट जाता, क्योंकि एकदम लेट जाए तो बच्चे को भी शक हो जाए--तो बच्चे को यह भ्रांति देने के लिए कि नहीं, देख, तेरे को बराबर सम्मान दे रहा हूं, तुझे समान मान रहा हूं, थोड़े हाथ-पैर चलाता है और फिर लेट जाता है। और बच्चा उसकी छाती पर बैठ कर प्रसन्न हो लेता है।
मलूक कहते हैं, हो लेने दो प्रसन्न, अज्ञानी को प्रसन्न हो लेने दो; बेचारे को प्रसन्नता मिलती भी कहां है? तुम हार ही जाओ! और कभी-कभी बड़ा अदभुत अनुभव होगा। अगर तुम बिना किसी विवाद के चुपचाप हार मान लो तो तुम अज्ञानी को भी बड़ी बेचैनी में डाल दोगे। क्योंकि तुमने उसकी अपेक्षा के अनुकूल काम नहीं किया। वह रात सोचेगा, विचार करेगाः बात क्या है? केशवचंद्र रामकृष्ण से विवाद करने गए। केशवचंद्र ने कहाः ईश्वर नहीं है। रामकृष्ण ने कहाः बिल्कुल ठीक। केशवचंद्र बहुत चौंके। यह आदमी कैसा! वे आए थे विवाद करने, पचास आदमियों का जत्था साथ लाए थे, बड़े पंडित थे, बड़े ज्ञानी थे, बंगाल ने थोड़े ही इस तरह के तर्कशास्त्री पैदा किए हैं--और रामकृष्ण बोलेः बिल्कुल ठीक! अब विवाद की गुंजाइश ही न रही। अब आगे क्या करना? फिर बात छेड़ने की कोशिश की केशवचंद्र नेः स्वर्ग नहीं है, नरक नहीं

है, और रामकृष्ण ने कहाः वाह-वाह! यही नहीं, उठ-उठ कर गले लगाएं! कहेंः क्या बात कही!! क्या पते की बात! क्या लाखों की बात! जो भीड़ आई थी, वह भी हतप्रभ होने लगी। और केशवचंद्र तो बिल्कुल उदास हो गए; केशवचंद्र ने कहाः यह मामला क्या है? मैं विवाद करने आया हूं और आप मैं जो कहता हूं, उसी में हां भर देते हैं। तो विवाद हो कैसे?
रामकृष्ण ने कहाः तुम्हारी विवाद की क्षमता, तुम्हारी कुशलता, तुम्हारी तर्क-प्रवणता, मेरे लिए प्रमाण है कि ईश्वर है। ईश्वर के बिना, केशवचंद्र, तुम कैसे हो सकते थे? मैं तो फूल को भी देखता हूं तो उसका मुझे प्रमाण मिलता है। और तुम इतने अदभुत फूल हो! तो तुम्हें देख कर मुझे उसका प्रमाण न मिलेगा? इसलिए तुम्हें गले लगाता हूं! गले लगा कर उस को धन्यवाद देता हूं कि खूब भेजा! गजब का आदमी भेजा! तुम्हें देख कर मुझे उसका प्रमाण मिलता है। और वही बोल रहा है तुम्हारे भीतर से, अब उसको मैं इनकार भी कैसे करूं! अब अगर वह यही खेल खेलना चाहता है तो यही सही। हम तो हर खेल में राजी हैं। हम तो उससे राजी हैं। वह जो खेल खिलाए! अगर वह लुका-छिपी खेलना चाहता है, चलो यही सही! आंख के सामने खड़ा है और कहता हैः छिप गए; हम कहते हैं, बिल्कुल ठीक! तुम्हीं कह रहे हो, तुम मालिक हो, हम तो तुम्हारे चाकर! केशवचंद्र उस रात सो न सके। दूसरे दिन सुबह फिर पहुंचे और कहा कि आप मुझे कुछ समझाएं; आप ने मुझे हरा दिया। एक बात पक्की हो गई कि मेरे सारे तर्क दो कौड़ी के हैं। क्योंकि मेरे तर्कों ने मुझे वह आनंद नहीं दिया जो कल मैंने आपकी आंखों में देखा। और प्रमाण तो आनंद है। तर्क क्या करेंगे। तर्कों का क्या करूंगा? खाऊंगा, पीऊंगा कि ओढूंगा? तुम्हें देख कर भरोसा हो गया कि कुछ और भी है जो तर्कों के पार है।
हार मानु अनजान तें, बकबक मरै बलाए।
मूरख को का बोधिए, मन में रहो विचार।
पाहन मारे क्या भया, जहं टूटै तरवार।।
कोई पत्थर पर तलवार मारता है? इसलिए मूर्ख के साथ व्यर्थ सिर न फोड़ो।
रामकृष्ण ने ठीक किया, मूर्ख के साथ व्यर्थ सिर न फोड़ा। मूर्ख कोई छोटा- मोटा मूरख नहीं था, महामूर्ख था। पंडित कोई छोटा-मोटा पंडित नहीं था, महापंडित था। महापंडित और महामूर्ख का मेरे लिए एक ही अर्थ होता है।
शिष्ट भाषा में कहो तो महापंडित और सीधी भाषा में कहो तो महामूर्ख।
तैं मत जानै मन मुवा, तन करि डारा खेह।
ताका क्या इतबार है, जिन मारे सकल बिदेह।।
और इस देह का बहुत भरोसा मत कर लेना। मन का भी बहुत भरोसा मत करना, देह
का भी बहुत भरोसा मत करना।
तैं मत जानै मन मुवा, ...
यह मन मर जाएगा। यह मरा ही हुआ है। यह सड़े-गले कचरे को, यह उधार, बासे सिद्धांतों को, विचारों को मत ढोओ। और यह तन? यह तो मिट्टी है ही। इसकी क्या अकड़? इस मिट्टी में ये मन के बबूले उठ रहे हैं। इस पानी में ये मन की लकीरें उठ रही हैं। बनीं और मिटीं!
ताका क्या इतबार है, जिन मारे सकल बिदेह।।
इसका भरोसा मत करो। इनका जो भरोसा कर ले, वह विक्षिप्त है। मगर सभी ने इनका भरोसा कर लिया है। इसलिए इस पृथ्वी पर बहुत कम लोग हैं जो विक्षिप्त नहीं हैं। कभी कोई बुद्ध, कोई नानक, कबीर, कोई मलूक, कोई रैदास, कोई फरीद, बस ऐसे थोड़े से इने-गिने लोग, अंगुलियों पर गिने जा सकें, ये विक्षिप्त नहीं हैं, बाकी सब तो विक्षिप्त हैं।
एक बार मोरार जी देसाई एक मानसिक चिकित्सालय के निरीक्षण के लिए पहुंचे। बात उन दिनों की है जब वे प्रधानमंत्री थे। वे चिकित्सालय का निरीक्षण कर ही रहे थे कि अचानक उन्हें किसी कार्यवश अपने घर फोन करना पड़ा। तो उन्होंने चिकित्सालय से अपने घर फोन किया। लेकिन जब बार-बार फोन करने पर भी फोन न लगा, तो उन्होंने ऑपरेटर को डांटते हुए कहाः यह फोन लग क्यों नहीं रहा है? जानते नहीं मैं कौन बोल रहा हूं? मैं इस देश का प्रधानमंत्री मोरार जी देसाई बोल रहा हूं।

आपरेटर बोलाः यह तो पता नहीं कि आप कौन बोल रहे हैं, लेकिन यह जरूर पता
है कि आप कहां से बोल रहे हैं!
पागलखाने से बोल रहे हैं! वहां कोई एकाध मोरार जी देसाई हैं!!
जब विंस्टीन चर्चिल जिंदा था तो इंग्लैंड के पागलखानों में आठ विंस्टीन चर्चिल बंद थे। और जब पंडित जवाहरलाल नेहरू जिंदा थे, तो हिंदुस्तान के पागलखानों में कम से कम अस्सी जवाहरलाल नेहरू बंद थे।
एक दफे तो ऐसा हुआ कि एक पागलखाने को देखने पंडित जवाहरलाल नेहरू गए।
तो उस पागलखाने में एक आदमी ठीक हो गया था। तो पागलखाने के लोगों ने उसे रोक रखा था कि पंडित जी आते हैं, उन्हीं के हाथ से तुम्हें मुक्त करवाएंगे। पंडित जी ने उस पागल को माला पहनाई, और कहा कि मैं बड़ा प्रसन्न हूं, आनंदित हूं कि तुम स्वस्थ हो गए, सब ठीक हो गया, अब तुम घर जाओ। चलते- चलते उस आदमी ने पूछा कि लेकिन एक बात मैं पूछना भूल गया, आप हैं कौन? स्वभावतः जवाहरलाल ने कहा कि मैं पंडित जवाहरलाल नेहरू, इस देश का प्रधानमंत्री। वह पागल मुस्कराया, उसने कहाः चिंता न करें, चिंता बिल्कुल न करें, आप भी ठीक हो जाएंगे। यही बीमारी मुझे थी, मगर धन्य हैं इस पागलखाने के अधिकारी, तीन साल में ठिकाने लगा दिया। हालांकि भीतर अभी भी कभी-कभी लहर उठती है, मगर वह मार मारी है कि लहर को भीतर दबा लेता हूं कि भैया, यह काम अब नहीं करना! अब बोलना ही मत! अब कोई लाख मुझसे पूछे कि आप कौन हैं, मैं कभी नहीं कहता कि मैं पंडित जवाहरलाल नेहरू हूं। तभी तो ये मुझे छोड़ रहे हैं!
तुम अगर समझते हो कि तुम शरीर हो, तो तुम पागलखाने से बोल रहे हो। तुम अगर समझते हो कि तुम मन हो, तो तुम पागलखाने से बोल रहे हो। जब तक तुम न जानोगे कि तुम परमात्मा हो, तब तक तुम पागलखाने में ही हो। सिर्फ परमात्मा में ही स्वास्थ्य है। स्वास्थ्य शब्द बड़ा प्यारा है। उसका अर्थ होता हैः स्वयं में स्थित हो जाना।
सुंदर देही पायके, मत कोइ करै गुमान।
काल दरेरा खाएगा, क्या बूढ़ा क्या जवान।।
सबको खा जाता है समय; बूढ़े को भी, जवान को भी; अकड़ो मत। सुंदर देह पाकर गुमान न करो। सब मिट्टी हो जाएगा।
सुंदर देही देखिके, उपजत है अनुराग।
मढ़ी न होती चाम की, तो जीवन खाते काग।।
कुछ भी नहीं है यहां। चमड़ी चढ़ी है, भीतर मांस का लोथड़ा है। अगर चमड़ी न चढ़ी होती तो जिंदा कौवे खा जाते। और जैसे ही श्वास उड़ी कि कौवे ही खाएंगे; कि कीड़े-मकोड़े खाएंगे; नहीं तो आग में जलोगे। इस पर क्या अकड़ना? इस पर क्या इतराना? जब तक अपने भीतर छिपे शाश्वत को न जान लो तब तक सब इतराना भ्रांत है। तब तक सब भरोसा गलत पर भरोसा है। और गलत पर भरोसा रख कर जो जी रहा है, वही संसारी है।
आदर मान महत्व सत, बालापन को नेह।
यह चारों तबहीं गए, जबहिं कहा "कछु देह"।।
इस दुनिया के सब नाते-रिश्ते बस ऊपर-ऊपर के हैं। जहां किसी से कहा कि भई, कुछ दो, वहीं मामले टूट जाते हैं। पति ने मांगा प्रेम, कि नाता गया; पत्नी ने मांगा प्रेम कि नाता गया। यहां की सब दोस्ती ऐसी है कि मांगो मत। हां, दूसरा मांगे तो दो। मांगना भर मत, नहीं तो सब दोस्ती गई। यहां सब लोग तुमसे दोस्ती इसलिए जुटाए हुए हैं कि तुमसे कुछ लूटना है; तुम्हें कुछ देना थोड़े ही है! यहां सब संबंध शोषण के हैं। कितने ही अच्छे फूलों से सजाओ, लेकिन सब फूल झूठ हैं। भीतर दुर्गंध भरी है। यहां सब संबंध मतलब के हैं।
प्रभुताही को सब मरैं, प्रभु को मरै न कोए।
मलूक का आखिरी सूत्रः
प्रभुताही को सब मरैं, प्रभु को मरै न कोए।
जो कोई प्रभु को मरै, तो प्रभुता दासी होए।।
प्यारा है बहुत और सार है उनके सारे वचनों का। निष्पत्ति है।

सब लोग चाहते हैं कि प्रभुता मिले, पद मिले, महत्व मिले, महत्ता मिले,
यश मिले...
प्रभुताही को सब मरैं, प्रभु को मरै न कोए।
लेकिन परमात्मा के लिए कोई नहीं चाहता। और मजा यह है, जीवन का अनूठा नियम यह है--
जो कोई प्रभु को मरै, ...
जो प्रभु के लिए मरता है।
... तो प्रभुता दासी होए।
जो परमात्मा के लिए मरने को राजी है, सारे जगत का सब कुछ उसकी सेवा में लीन हो जाता है। और जो प्रभुता के लिए मर रहा है, वह भिखारी ही रहता है और भिखारी ही मरता है। खाली हाथ आता है, खाली हाथ जाता है। अगर कुछ पाना हो तो प्रभु की खोज करो, प्रभुता की नहीं। प्रभुता तो प्रभु की छाया है। प्रभु मिल गया तो प्रभुता तो अपने आप मिल जाती है। लेकिन तुम छाया खोजते फिरते हो। छायाएं कहीं खोजी जाती हैं? और छाया मिल भी जाए, तो उसके तुम मालिक नहीं हो सकते; क्योंकि प्रभु कब हट जाएगा, छाया हट जाएगी।
एक अफीमची ने एक रात एक मिठाई की दुकान से मिठाई खरीदी; पुरानी होगी कहानी, आठ आने सेर मिठाई मिलती थी, सेर भर मिठाई ली। पूरा नगद रुपया था, दुकानदार के पास टूटे पैसे नहीं थे तो उसने कहा कि भाई, कल आठ आने ले लेना। अफीमची नशे में था फिर भी इतना होश तो था, नशे में भी इतना होश तो रहता है, कि कहीं यह अठन्नी पचा न जाए! कहीं कल बदल न जाए! तो उसने गौर से देख लिया सब, कि ठीक पहचान कर लेनी जरूरी है। तख्ता भी पढ़ लिया उसकी दुकान का कि नाम क्या है। हालांकि सब अक्षर डांवाडोल दिखाई पड़ रहे थे, सब सारी दुनिया घूमती मालूम पड़ रही थी, मगर फिर भी उसने सब हिसाब पक्का कर लिया। लेकिन फिर उसे ख्याल आया कि हो सकता है, होशियार आदमी है, कहीं तख्ती बदल ले! तो कुछ ऐसा इंतजाम कर के चलो कि तख्ती भी बदल ले तो भी कुछ फिकर नहीं। तो उसने वैसा भी इंतजाम कर लिया।
दूसरे दिन आया, और आते ही से एकदम दुकान में घुस गया और दुकानदार की गर्दन पकड़ ली और कहाः हद हो गई, अठन्नी के पीछे दुकान बदल ली! दुकान ही नहीं बदली, धंधा भी बदल लिया! तख्ता तो बदला ही बदला, अरे जात तक बदल ली, अठन्नी के पीछे!! कहां मिठाई की दुकान कर रहे थे और कहां आज उस्तरा लिए हजामत बना रहे हो? वह नाई तो बड़ा चौंका, उसने कहाः कहां की बातें कर रहे हैं; कहां की दुकान, कहां की मिठाई? अफीमची बोलाः तुम किसी और को बुद्धू बनाना; वह देखो भैंस; मैं कल ही देख गया था कि कोई ऐसी चीज देख लो जो वहीं की वहीं रहे! वह भैंस वहीं बैठी है, जहां कल बैठी थी।
अब भैंस का क्या भरोसा? भैंस उठ कर बैठ गई होगी दूसरी दुकान के सामने!
तुम छाया को पकड़ोगे, छाया का मालिक तो हटता रहेगा, छाया तुम्हारे हाथ
न आएगी। बार-बार हाथ में आती लगेगी और छूट-छूट जाएगी। यही तो इस संसार का विषाद है; विफलता है, दुख है, पीड़ा है, नरक है। बार-बार लगता है, अब मिला, अब मिला और छूट जाता है। मालिक को क्यों नहीं पकड़ लेते? उस मालिक को पकड़ लो, फिर उसकी छाया तुम्हारी है।
और उस मालिक को पकड़ने के लिए कहीं दूर नहीं जाना है, अपने भीतर चलना है। और उस मालिक को पाने के लिए न तो कोई बहुत बड़ी बुद्धि की आवश्यकता है, न तर्क की। उस मालिक को पाने के लिए सिर्फ एक निर्मल, प्रेमल हृदय की, भक्ति की, भाव की आवश्यकता है। वह मालिक मिला ही हुआ है। जरा तुम्हारी खोपड़ी में चल रहे शोरगुल को छोड़ो, तुम्हारी खोपड़ी में चल रही व्यस्तता से अपने को मुक्त करो, थोड़े शांत, शून्य और मौन बनो, थोड़े थिर होकर अपने भीतर डुबकी लो, और तुम पा लोगे हीरों का हीरा--जिसको पाकर सब पा लिया जाता है।
उद्दालक का बेटा श्वेतकेतु आश्रम से वापस लौटा, गुरुकुल से, शिक्षा पाकर, उद्दालक ने उससे पूछा, बेटे, तू सब पढ़ आया, लेकिन तूने वह जाना या नहीं जिसको जान लेने से सब जान लिया जाता है? श्वेतकेतु ने कहाः मैंने भूगोल पढ़ी, इतिहास पढ़ा, पुराण पढ़ा, भाषा पढ़ी, व्याकरण पढ़ा, काव्य पढ़ा, सब पढ़ा, मगर यह कौन-सा शास्त्र है जिसकी आप बात कर रहे हैं? तो उद्दालक ने कहाः बेटा वापस जा! तू असली चीज तो पढ़ कर आया ही नहीं। तूने अभी अपने को

नहीं पढ़ा। ये सब पढ़ना ठीक है, दुनिया में काम आता है, लेकिन दुनिया चार दिन की है, और चार दिन यूं गुजर जाते हैं, असली सत्य तो भीतर है, जो शाश्वत है, जो सदा काम आएगा। तू जा, तू उसे पढ़ कर आ! तू स्वयं को पढ़ कर आ! क्योंकि जो स्वयं को पढ़ता है, वही ब्राह्मण है। और उद्दालक ने कहा कि हमारे परिवार में सचमुच के ब्राह्मण होते रहे, झूठे ब्राह्मण नहीं; पैदाइशी ब्राह्मण नहीं, अनुभव से ब्राह्मण होते रहे। हम ब्रह्म को जान कर ही अपने को ब्राह्मण कहे हैं; सिर्फ ब्राह्मण-कुल में पैदा होने के कारण नहीं। यह हमारे कुल की परंपरा नहीं, श्वेतकेतु, तू जा! तू ब्राह्मण होकर लौट! तू ब्रह्म को जान कर आ!
ब्रह्म तुम्हारे भीतर छिपा बैठा है। जरा तलाशो, जरा पुकारो, जरा आंखें गीली करो, जरा आंसुओं से भरो, जरा तुम्हारी पुकार में हार्दिकता लाओ, और तुम चकित हो जाओगे--मालिकों का मालिक सदा से तुम्हारे भीतर था और तुम भिखमंगे बने घूमते रहे! इस सारे विश्व का साम्राज्य तुम्हारा है, क्योंकि तुम उस मालिक के हिस्से हो! तुम दीन नहीं, दरिद्र नहीं। तत्वमसि। तुम वही हो।
मगर "वह" होने के लिए तुम्हें एक शर्त पूरी करनी पड़ेगीः रामदुवारे जो मरे!
तुम जैसे हो ऐसे तो तुम्हें मर जाना होगा; तभी तुम वैसे हो सकोगे जैसे तुम्हें होना चाहिए। बूंद मिटे तो सागर हो जाती है; बीज मिटे तो वृक्ष हो जाता है; तुम मिटो तो परमात्मा प्रकट हो! तुम्हारी मृत्यु में ही तुम्हारा असली जीवन है।

आज इतना ही।

रामदुवारे जो मरे
दसवां प्रवचन

संन्यास हैः मैं से मुक्ति

पहला प्रश्नः ओशो,
एक गीत और मुझे गाना है
एक छंद और गुनगुनाना है

गीत तो वही है जो हुलस-हुलस
अपने ही कंठों ने गाए हों
भाव तो वही है जो उमग-उमग
अपने ही प्राणों से आए हों

क्या होगा पर के सुरतालों से मुझको निज सरगम पर आना है

प्यारे हैं--गीत बहुत प्यारे हैं रसभीगे गीत ये तुम्हारे हैं
इन पर मैं न्यौछावर होता हूं
पर मेरे गीत अभी कुंआरे हैं

इनका भी ब्याह अब रचाना है प्राणों का साज ही बजाना है

जब तक वह पाहुना न आएगा
आसूं की आरती उतारूंगा
जब तक सागर न मिले अपना ही सरिता की पीर बन पुकारूंगा

अपनी ही आग में सुलगना है अंतस में प्रीति को जगाना है

कुछ ऐसा वर दो भगवान मेरे! मैं भूला अपने घर आ जाऊं
कुछ ऐसा कर दो गुरुदेव मेरे!
मैं अपने मितवा को पा जाऊं

उस परम उत्सव की घड़ियों को
अनगाए लौट नहीं जाना है
एक गीत और मुझे गाना है
एक छंद और गुनगुनाना है

योग प्रीतम! वह गीत न तो अपना है, न पराया है। उस गीत के जगत में न तो कोई मैं है और न कोई तू है। तू को तो छोड़ना ही है, मैं को भी छोड़ना है। उठता है वह गीत शून्य से, न वहां मैं होता है, न तू। वह गीत न कृष्ण का है न क्राइस्ट का, न महावीर का न मोहम्मद का; वह गीत न मेरा है, न तुम्हारा; उस गीत की अनुभूति, उस गीत का आविर्भाव वहीं है जहां मैं और तू समाप्त हो गए। जब तक यह मोह रहेगा मन में कि अपना गीत गाऊंगा, गीत मेरा हो, तब तक न गा सकोगे। तब तक चूकते रहोगे। वह अहंकार ही भटकाएगा।
अहंकार के अतिरिक्त और कोई भटकाव नहीं है। परमात्मा और तुम्हारे बीच तुम्हारे अतिरिक्त और कोई बाधा नहीं है। जाने दो तू भी और जाने दो मैं भी। एक तुम्हारे भीतर ऐसा भी विराजमान है, जो न मैं में समाता है न तू में। उसे पहचानो, उस द्वंद्वातीत को, फिर गीत ही गीत झर उठते हैं; फिर कमल ही कमल खिल

जाते हैं। फिर सुगंध ही सुगंध है--शाश्वत की, अमृत की। न उसका कोई प्रारंभ है, न कोई अंत। वह गीत ही भगवत गीत है। जब भी परमात्मा गाया है तो उनसे ही गाया है जो मिट गए। खुदा उतरा है, बहुत बार उतरा है, मगर उनसे ही जिन्होंने खुदी को पोंछ डाला। वही छोटा सा मोह तुम्हें अभी पकड़े है। झीनी सी ही दीवाल है, कोई लोहे की दीवाल नहीं है, कांच की दीवाल है, पारदर्शी दीवाल है, आर-पार दिखाई पड़ता है, दीवाल तो दिखाई ही नहीं पड़ती, इसलिए तो मैं का इतना उलझाव है। दिखाई नहीं पड़ता और हम उसमें बंद हैं। दिखता तो तोड़ देते, पकड़ में आता तो छोड़ देते। हाथ लगता नहीं, फिर भी उससे हम घिरे हैं।
अब तुमने बात प्रीतिकर कही। आकांक्षा सुंदर है, अभीप्सा उदात्त है...
और इससे ज्यादा उदात्त क्या होगी अभीप्सा? यही तो प्रार्थना है। यही पूजा, यही अर्चना। तुमने ठीक-ठीक मांग की है। पर जरा से चूक गए। और उस परमात्मा के लोक में इंच भर चूक जाना अनंत-अनंत फासला हो जाता है। वहां कण भर चूके कि बुरी तरह चूके। वहां की तोल और, वहां का माप और, वहां के तराजू और।
एक प्रसिद्ध कहानी है। एक व्यक्ति ने स्वर्ग के द्वार पर दस्तक दी। उसने बहुत जीवन में दान किया था; मंदिर बनाए थे, धर्मशालाएं बनाई थीं, प्यासों को पानी दिया, भूखों को रोटी दी, तीर्थों में धन लुटाया, यज्ञ किए, हवन किए; उसका सारा जीवन धर्म की ही एक यात्रा थी। निश्चित ही अकड़ से भरा था, अस्मिता से भरा था। द्वार पर दस्तक दी थी तो उसमें अहंकार था। द्वार खुला, द्वारपाल ने उसे नीचे से ऊपर तक देखा और कहाः स्वर्ग पर दस्तक देते हो, क्या कमाई है? क्या अर्जन किया है? कौन सी पात्रता लाए हो? उसने कहाः करोड़ों-करोड़ों का दान किया। इतने मंदिर, इतनी धर्मशालाएं, इतने अस्पताल, इतने स्कूल, इतने विधवाश्रम, इतने वृद्धाश्रम, सारी फेहरिश्त गिना दी। देवदूत मुस्कुराया, और उसने कहाः शायद तुम्हें पता नहीं, तुम्हारे जगत में जो करोड़ है यहां कौड़ी है, तुम्हारे जगत में जो बहुत बड़ा दिखाई पड़ता है, यहां ना-कुछ है; अणुमात्र। यहां का माप और, यहां की तौल और। तुम्हारे जगत में करोड़ों वर्ष बीत जाते हैं, यहां पल बीतता है। धार्मिक आदमी तो कहने को था वह, था तो व्यवसायी, यह सब भी किया था व्यवसाय की तरह ही, यह भी एक सौदा था, पारलौकिक सौदा था। इतनी आसानी से मानने को राजी हो नहीं सकता था। उसने कहा अगर ऐसा है कि मेरे जगत में करोड़ों रुपये यहां कौड़ियों की तरह हैं, तो इतना करो, चार कौड़ियां मुझे उधार दे दो। देवदूत ने कहाः एक मिनट रुकें। समझे आप? एक मिनट!! जहां एक कौड़ी करोड़ के बराबर होगी, फिर वहां एक मिनट? अनंत-अनंत काल बीत गया, अभी वह आदमी रुका है, वे चार कौड़ियां मिली नहीं। शायद कभी न मिलेंगी।
इस जगत में, मन के जगत में, गणित और तर्क के जगत में जो सही लगता है, वही गलत हो जाता है ध्यान के जगत में, प्रेम के जगत में। यहां जो सहयोगी मालूम होता है, वही विरोधी हो जाता है; यहां जो सीढ़ी है, वही वहां बाधा है। यहां जो सेतु है, वही वहां भटकाव है।
तुमने बात तो प्यारी कही, प्रीतम! तुम आदमी प्यारे हो! इसीलिए मैंने तुम्हें योग प्रीतम नाम दिया है। और तुम्हारे भीतर सुंदर भावों का जन्म होता है। तुम कवि हो और तुम्हारे भीतर काव्य झरता है। तुम्हारे भीतर ऋषि होने की क्षमता है। कवि का अर्थ ही यही होता है कि जिसके भीतर ऋषि होने की क्षमता है। कवि बीज है, ऋषि उसी बीज का वृक्ष बन जाना, बहार पर आ जाना, फूल खिल जाना। तुम्हारे भीतर बड़ी संभावना है। लेकिन ध्यान रखना, बीज फूल नहीं है। बीज फूल हो सकता है। हो भी, चूक भी जाए। और कभी छोटी सी चीज चुका दे सकती है। एक कंकड़ आ जाए बीज की आड़ में, बस, चूकना हो जाएगा।
जीसस ने कहा हैः कोई बीज बोता है तो जो बीज पत्थर पर पड़ जाते हैं, वे भी उतने ही बीज थे जितने दूसरे बीज, लेकिन पत्थर पर पड़ गए। बस पत्थर ही रह जाते हैं, उनमें कभी अंकुरण नहीं होता। संभावना तो थी, लेकिन संभावना की भ्रूण-हत्या हो गई। कुछ बीज रास्ते पर पड़ जाते हैं। उनमें अंकुरण तो होता है, लेकिन रास्ता तो चौबीस घंटे चलता रहता है, अंकुरण भी हो जाता है तो भी पैरों के नीचे दब-दब कर मर जाते हैं। वे भी फूलों तक नहीं पहुंच पाते। कुछ बीज खेत की मेड़ों पर पड़ जाते हैं, उनमें अंकुरण भी होता है, पौधे भी आते हैं--मेड़ों पर लोग इतने नहीं चलते; लेकिन कभी-कभी चलते हैं; थोड़े लोग चलते

हैं; कोई किसान गुजरेगा, किसी किसान की पत्नी भोजन लेकर आएगी--लेकिन उतना ही काफी है पौधों को मार डालने को। मेड़ पर भी बीज टिक नहीं पाएंगे, पौधे बनते-बनते मर जाएंगे। पहुंचते-पहुंचते चूक जाएंगे। मंजिल दो कदम रह जाएगी और मौत घेर लेगी।
और फिर जीसस ने कहा है कि कुछ बीज खेत में पड़ते हैं। खेत की उर्वरा भूमि में। न वहां पत्थर हैं, न वहां राह है, न वहां मेड़ है; वे बीज सौभाग्यशाली हैं। क्योंकि वे खिलेंगे, उनसे सुगंध झरेगी, वे वृक्ष बनेंगे, वे हवाओं में नाचेंगे, जैसे कोई मीरा नाची हो, कि कोई चैतन्य नाचा हो; वे हवाओं में गुनगुनाएंगे, जैसे कोई नानक गाया हो, कबीर गाया हो, मलूक गाया हो; वे चांद-तारों से बातचीत करेंगे। उनका अस्तित्व के साथ एक संगीतबद्ध संबंध होगा, लयबद्धता होगी। वे कुंआरे न रहेंगे, वे विवाहित हो जाएंगे, वे परमात्मा के साथ जुड़ जाएंगे, उनकी भांवरें पड़ जाएंगी। लेकिन बीज सभी थे; पत्थर पर पड़े, वे भी; राह पर पड़े, वे भी; मेड़ पर पड़े, वे भी; खेत में पड़े, वे भी। सब एक से बीज थे।
कवि ऋषि होने से बच जाता है अहंकार के कारण। और जितना अहंकार कवियों में होता है, कम ही लोगों में होता है। साहित्यिक जिस बुरी तरह एक-दूसरे से लड़ते हैं और कवि एक-दूसरे की जिस तरह आलोचना करते हैं, शायद ही कोई और करता हो। कवियों के अखाड़े होते हैं, बड़ी राजनीति होती है, बड़ा संघर्ष, कलह होती है। कोई एक-दूसरे को मानने को तैयार नहीं होता। हर कवि अपने अहंकार की पूजा में संलग्न होता है। ऋषि हो सकता था, मगर चूका जा रहा है। बीज खेत में नहीं पहुंच पा रहा; कहीं चट्टान पर पड़ा जा रहा है।
योग प्रीतम! तुम्हारी क्षमता है, बड़ी क्षमता है। तुम्हारे भीतर कवि
का हृदय है। इससे ज्यादा और सौभाग्य की क्या बात हो सकती है? लेकिन सदा ध्यान रखना, जितना बड़ा सौभाग्य होता है, उतना ही साथ में जुड़ा हुआ दुर्भाग्य होता है। जितनी ऊंचाइयों पर चलोगे, उतना ही सम्हल कर चलना होगा क्योंकि गिरने का उतना ही डर होता है। समतल भूमि पर चलने वाले को गिरने का डर नहीं होता। राजपथों पर लोग गिरते नहीं, गिरते हैं पहाड़ों की चोटियों से। इसलिए हमारे पास शब्द हैः "योग-भ्रष्ट"; लेकिन तुमने "भोग-भ्रष्ट" जैसा शब्द सुना? भोग-भ्रष्ट क्या होगा? अब और क्या भ्रष्ट होगा? अब भ्रष्ट होकर कहां गिरेगा? नरक से तुमने किसी को गिरते देखा? नरक से गिरेगा तो कहां जाएगा? स्वर्ग से लोग गिरते हैं। ऊंचाइयों से गिरते हैं। पशु-पक्षी नहीं गिरते, सिर्फ मनुष्य का पतन होता है। मनुष्य की गरिमा है, चोटियों पर चल सकता है, आकाश में उड़ सकता है। और जितनी ऊंची उड़ान भरोगे, उतने ही पंखों के जल जाने का डर है। उतना ही सम्हाल कर, उतना ही ध्यानपूर्वक चलना होगा। काव्य ऊंची से ऊंची उड़ान है। क्योंकि काव्य है क्या? हृदय का बहाव है। मेरी दृष्टि में काव्य धर्म की अनिवार्य सीढ़ी है। और जो व्यक्ति कवि नहीं है, वह धार्मिक न हो सकेगा। पर ख्याल रखना, कवि से मेरा अर्थ नहीं है कि तुम कविता लिखो तो ही कवि हो। ऐसे तो बहुत तुकबंद हैं, जो कविताएं लिखते हैं और कवि नहीं हैं। सौ में निन्यानबे कवि तो सिर्फ तुकबंद होते हैं। शब्दों को जमा लेना कविता नहीं है। बुद्ध ने एक भी कविता नहीं लिखी, फिर भी मैं उनको महाकवि कहूंगा। इसलिए कहूंगा कि काव्य एक अंतर्दृष्टि है, देखने का एक ढंग है। जीवन को सौंदर्य की आंख से देखने की कला का नाम कविता है। जीवन को तर्क से नहीं, प्रेम से पहचानने की क्षमता का नाम कविता है। हृदय से सत्य की तलाश कविता है।
सत्य दो तरह से खोजा जा सकता हैः एक तो तर्क से, मस्तिष्क से, सोच-विचार से; एक भाव से, अनुभूति से। एक तो गणित बिठाकर और एक मस्ती में गुनगुना कर। और जिन्होंने गणित बिठाया है, वे कभी सत्य तक नहीं पहुंचे हैं। ज्यादा से ज्यादा तथ्य तक पहुंचते हैं, सत्य तक नहीं। सत्य और तथ्य का यही भेद है। तथ्य आज सत्य लगता है, कल और खोज-बीन होगी तो शायद सत्य न लगे। इसलिए विज्ञान रोज बदल जाता है। न्यूटन के लिए जो सत्य था, वह एडिंग्टन के लिए सत्य न रहा। जो एडिंग्टन के लिए सत्य था, वह आइंस्टीन के लिए सत्य न रहा। जो आइंस्टीन के लिए सत्य था, आगे सत्य नहीं रह जाएगा। विज्ञान में सिर्फ तथ्य होते हैं, जो बदल जाएंगे। जैसे-जैसे खोज होगी, नये

अन्वेषण होंगे, हमें पुराने तथ्यों को फिर-फिर जमाना होगा। लेकिन जो बुद्ध ने जाना, वह सत्य है। वह अब भी वैसा का वैसा है। उतना ही तरोताजा; जरा भी बासा नहीं। उस पर धूल जमती ही नहीं। और कितनी ही खोज होती रहे, कुछ भेद न पड़ेगा।
तथ्य होते हैं बाहर के, सत्य होते हैं भीतर के। तथ्य होते हैं बहिर्मुखी, सत्य होते हैं अंतर्मुखी। तथ्य होते हैं पदार्थ के संबंध में, सत्य होते हैं चैतन्य के संबंध में। तथ्य होते हैं सांसारिक, सत्य होते हैं आध्यात्मिक। आध्यात्मिक सत्य सदा वही हैं, सनातन हैं; शाश्वत हैं; पुराने से पुराने हैं और नये से नये, ऐसा उनका विरोधाभास है। इन सत्यों को जानने की कला का नाम कविता है। लेकिन अगर अहंकार बीच में आ गया, तो बीज बीज रह जाएगा। फूल तक तुम न पहुंच पाओगे।
छोड़ो यह बात! गीत गाना है; परमात्मा का गीत गाना है, क्या मेरा, क्या तेरा? यह मैं-तू में पड़े रहे तो अपने ही हाथ से अपने आस-पास लक्ष्मण-रेखा खींच ली। इससे बाहर निकलना मुश्किल हो जाएगा। और इस मैं-तू में जो पड़ा रहता है, वह कभी प्रौढ़ नहीं हो पाता। बचकाना ही रह जाता है। मैं से ज्यादा बचकानी और कोई बात नहीं। इसलिए बचकानी, क्योंकि मैं को पकड़ कर हम कितनी बड़ी संपदा से चूक रहे हैं! मैं को पकड़ रहे हैं और परमात्मा से चूक रहे हैं। इससे ज्यादा मूढ़ता और क्या होगी? और मैं बिल्कुल थोथा है, बिल्कुल झूठा है, इससे बड़ी कोई झूठ नहीं है। मैं है ही नहीं। जिन्होंने खोजा है, नहीं पाया। हां, जिन्होंने खोजा ही नहीं, मान रखा, उनकी बात और।
जरा अपने भीतर तलाशो, मैं को कहीं भी न पाओगे। जितना खोजोगे, उतना ही
कम पाओगे। जिस दिन खोज पूरी होगी, उस दिन पाओगे मैं है ही नहीं। और मैं के उस अभाव में जिसका अनुभव होता है, वही परमात्मा है। फिर गीत पैदा होगा; वह परमात्मा का गीत होगा; तुम तो बांस की पोंगरी रह जाओगे। योग प्रीतम, बांस की पोंगरी बनो--खाली। गीत उसके, तुमसे बहें। तुम बाधा न दो, इतना ही काफी। तुम बीच में न आओ, इतना ही बहुत। वह गाना चाहे, जो गाना चाहे, उसे गुनगुनाने दो। तुम उसमें रुकावट ही मत डालना। तुम्हारी रुकावट अड़चन हो जाएगी। रवींद्रनाथ जब भी कभी गीत लिखते थे, तो द्वार-दरवाजे बंद कर लेते थे। कभी दिन, कभी दो दिन, कभी तीन दिन बीत जाते। न भोजन की फिकर, न स्नान की फिकर; पत्नी परेशान, परिवार परेशान, शिष्य परेशान! मगर उनकी आज्ञा थी कि जब मैं द्वार बंद कर लूं, तो कोई द्वार पर दस्तक भी न दे। जब गीत पूरा उतर आएगा तो मैं स्वयं द्वार खोल कर निकल आऊंगा। तुम फिकर मत करना मेरी भूख-प्यास की। पूछा उनसे किसी ने आखिर द्वार-दरवाजा बंद करने की क्या जरूरत है? तो रवींद्रनाथ ने कहा कि दूसरे अगर मौजूद होते हैं, अगर तू मौजूद होता है, तो मैं मिटता नहीं। मैं और तू साथ-साथ खड़े हो जाते हैं। दूसरे की मौजूदगी में मैं भी मौजूद हो जाता हूं। इसलिए दूसरे की मौजूदगी को बिल्कुल विस्मरण कर देने के लिए द्वार-दरवाजे बंद कर लेता हूं, ताकि मैं भी मिट जाऊं। कोई बाधा न रह जाए, वह बह सके, जैसा उसे बहना हो। मैं गीत लिखता नहीं, वह जो गुनगुनाता है, बस, उसी को उतारता जाता हूं। मैं बाधा नहीं डालता। अपनी तरफ से न जोड़ता हूं, न अपनी तरफ से तोड़ता हूं।
इसीलिए रवींद्रनाथ के गीतों में उपनिषदों का रस है। रवींद्रनाथ के गीतों में कुरान की गरिमा है, वही उंचाइयां हैं, जो बुद्ध के वचनों की हैं। रवींद्रनाथ को ठीक से समझा नहीं जा सका, अन्यथा हम उन्हें ऋषि कहते। सिर्फ कवि कह कर हम चुप रह गए, महाकवि कह कर चुप रह गए; वह हमारी भ्रांति है, हमारी भूल है।
रवींद्रनाथ ने गीतांजलि का अनुवाद किया अंग्रेजी में। थोड़े संदिग्ध थे। क्योंकि पराई भाषा। फिर काव्य का अनुवाद! गद्य का तो अनुवाद हो जाता है, पद्य का कठिन है। क्योंकि हर भाषा की अपनी लय होती है, अपना रंग होता है; हर भाषा की अपनी काव्य-शैली होती है, जो दूसरी भाषा में नहीं उतरती। भावभंगिमा होती है, अपना छंद होता है, जो दूसरी भाषा में नहीं जा सकता। तो सोचा किसी से सलाह ले लूं। सी.एफ. एण्ड्रूज से कहा कि एक दफा देख जाएं, मेरे अनुवाद में कहीं कोई भाषा की भूल-चूक तो नहीं। सी.एफ. एण्ड्रूज ने चार जगह

भूल-चूक दिखाई कि व्याकरण की दृष्टि से अंग्रेजी गलत है। रवींद्रनाथ ने तत्क्षण सुधार कर लिया। जैसा कहा एण्ड्रूज ने वैसा कर लिया।
फिर जब उन्होंने पहली बार लंदन में कवियों की एक छोटी सी गोष्ठी में गीतांजलि का अंग्रेजी अनुवाद पढ़ कर सुनाया, तो वे बड़े हैरान हुए, चकित हुए, समझ में ही न आया उनके, अवाक रह गए, क्योंकि अंग्रेजी के एक बहुत बड़े कवि ईट्स ने खड़े होकर कहा कि और सब तो ठीक है, लेकिन चार जगह ऐसा लगता है कि जैसे धारा अवरुद्ध हो गई; जैसे धारा में पत्थर आ गया। चार जगह ऐसा लगता है जैसे शब्द किसी कवि का नहीं है। हां, भाषाविद का होगा। और वे चार जगहें वे ही थीं जो सी.एफ. एण्ड्रूज ने बदलवा दी थीं। रवींद्रनाथ ने कहा कि मेरे शब्द व्याकरण की दृष्टि से गलत थे। ईट्स ने कहा कि व्याकरण को जाने दो भाड़ में; काव्य का और व्याकरण से क्या नाता? काव्य सारी मर्यादाओं को तोड़ता है। काव्य कोई रामचंद्र जी थोड़े ही है, मर्यादा-पुरुषोत्तम थोड़े ही है, काव्य तो कृष्ण है, मर्यादामुक्त है। रवींद्रनाथ ने अपने शब्द बताए, जो उन्होंने पहले रखे थे, ईट्स एकदम राजी हो गया! कहा कि ये ठीक हैं। मैं भी समझता हूं कि भाषा की दृष्टि से ये गलत हैं, लेकिन जो भाषा की दृष्टि से गलत है, वह जरूरी नहीं कि काव्य की दृष्टि से गलत हो। ये ठीक हैं। इनमें धारा है, प्रवाह है। इनमें पांडित्य नहीं है, मगर प्रीति है। और जहां प्रेम है वहां काव्य है। और जहां सहजता है वहां काव्य है।
योग प्रीतम, तुम कवि हो, और बड़ी संभावना है तुम्हारी, लेकिन एक बात छोड़ दो, मैं का भाव जाने दो। मैं को गिर जाने दो। और तब तुम पाओगे, उपनिषद भी तुम्हारे हैं; और तब तुम पाओगे, कुरान भी तुम्हारी है; और तब तुम पाओगे, मैं जो कह रहा हूं, वह भी तुम्हारा है। मेरा क्या! "मेरा मुझमें कुछ नहीं।" तुम कहते होः
"एक गीत और मुझे गाना है
एक छंद और गुनगुनाना है"
एक क्या अनेक छंद गुनगुनाए जाएंगे; एक क्या हजार गीत गाए जाएंगे; मगर तुम अपने को बाद दो।
तुम कहते होः
"गीत तो वही है जो हुलस-हुलस
अपने ही कंठों ने गाए हों"
पागल हुए हो? सब कंठ उसके हैं। यहां कौन कंठ अपना है? और जब नीलकंठ खुद गाने को राजी हो, तो तुम क्यों अपना कंठ बीच में डाल रहे हो? "गीत तो वही है," तुम कहतेः "जो हुलस-हुलस, अपने ही कंठों ने गाए हों।" हुलस-हुलस तो ठीक, खूब हुलसो, पर इस हुलसने में एक ही बाधा रहेगी, वह अपना कंठ। वह सब बेसुरा कर देगा। छंद टूट जाएगा।
कहते होः
"भाव तो वही है जो उमग-उमग
अपने ही प्राणों से आए हों"
सच ही, भाव वही हैं जो उमग-उमग आते हैं, सहज उमग आते हैं। जैसे वृक्षों में पत्ते और फूल लगते हैं, ऐसे ही जब तुममें भाव लगते हैं। लेकिन प्राण क्या है? प्राण तो परमात्मा का ही दूसरा नाम है। इसमें मैं की शर्त न लगाओ। यह शर्त छोड़ दो। यह शर्त छोड़ दो, तो कवि ऋषि हो जाए। और कवि ऋषि हो जाए, तो ही हुलसने का मजा है। तो ही उमग-उमग नाचने का मजा है।
कहते हो तुमः
"क्या होगा पर के सुरतालों से
मुझको निज सरगम पर आना है"
जहां भी सुरताल है, वहां न कोई पर है और न कोई निज है। अंग्रेजी का महाकवि कूलरिज मरा, तो उसके घर में चालीस हजार कविताएं अधूरी मिलीं। चालीस हजार! और जिंदगी भर उसके मित्र उससे कहते रहे कि ये क्यों अधूरी कर रखी हैं? कहीं सिर्फ एक पंक्ति की जरूरत और है और कविता पूरी हो जाएगी। लेकिन कूलरिज कहता कि मैं नहीं जोडूंगा। जिसने इतनी पंक्तियां गाई हैं, जब उसकी ही मर्जी होगी, वही एक पंक्ति और जोड़ेगा तो मैं जोड़ दूंगा। इतने पर वह रुक गया, मैं भी रुक गया। मैं सिर्फ वाहन हूं; मैं सिर्फ वह पुकारता है,

उसकी पुकार को दोहरा देता हूं। मैं प्रतिध्वनि हूं। मैं दर्पण हूं; वह सामने आएगा, उसकी छवि दिखाई पड़ जाएगी, वह हट जाएगा, छवि खो जाएगी। मैं पूरी नहीं करूंगा। उसने केवल सात कविताएं पूरी कीं। लेकिन सात ही काफी हैं। उसे महाकवि बनाने को सात ही काफी हैं। और उसका यह भाव उसे ऋषियों की गणना में ले जाता है। नहीं उसने अपनी तरफ से कोई पंक्ति जोड़ी। अपना सुरताल नहीं लाया बीच में।
इसीलिए तो हमें पता नहीं कि उपनिषद किसने गाए? क्योंकि जिन्होंने गाए, उन्होंने अपने दस्तखत भी नहीं किए! कुरान को मोहम्मद ने गाया, लेकिन मोहम्मद ने यह नहीं कहा कि मैंने रचा है। रचने वाला तो वही है। गाने वाला भी वही है। धन्यभागी हूं मैं कि उसने मेरा उपयोग कर लिया उपकरण की तरह--कि मुझ पर सवार हो गया--कि मैं आविष्ट हो गया उससे। जब पहली दफा मोहम्मद परमात्मा से आविष्ट हुए तो बहुत घबड़ा गए--स्वाभाविक। क्योंकि जैसे बूंद में कोई सागर उतर आए; तो बूंद घबड़ा न जाए तो और क्या हो? जैसे तुम्हारे आंगन में पूरा आकाश आ जाए, सारे चांद-तारे नाचने लगें, तो तुम घबड़ा न जाओगे?
जब मोहम्मद पर पहली दफा पहली आयत उतरी तो तुम्हें पता है? वह कथा प्रीतिकर है। वह सभी ऋषियों की कथा है। जो पहला उदघोष मोहम्मद में आया, वह थाः गा; गुनगुना! कुरान शब्द का अर्थ होता हैः गा, गुनगुना! लेकिन मोहम्मद ने कहाः मैं न गाना जानता हूं, न गुनगुनाना जानता हूं; कभी गाया नहीं, कभी गुनगुनाया नहीं; मैं पढ़ा-लिखा भी नहीं हूं, बेपढ़ा-लिखा हूं। काला अक्षर उन्हें भैंस बराबर था। डर गए बहुत, भयभीत हो गए बहुत कि यह कौन कह रहा हैः गा, गुनगुना? लेकिन आवाज फिर भीतर से आई कि तू फिकर मत कर, तू गा, तू गुनगुना! राह दे, मार्ग दे! और उन्होंने देखा चमत्कार घटते कि उनके ओठों से, उनके कंठों से कोई गा रहा है, कोई गुनगुना रहा है। और कुछ ऐसे शब्द उतर रहे हैं जो न उन्होंने कभी सोचे थे, न कभी विचारे थे।
वे भागे घर आए। किसी और से उन्होंने कहा भी नहीं, क्योंकि सोचा कि लोग समझेंगे कि दिमाग खराब हो गया। ऐसे कहीं कोई कहता है भीतर कि गा, गुनगुना और जबरदस्ती? और मोहम्मद कहते हैंः मैं गाना नहीं जानता, मैं गुनगुनाना नहीं जानता, मैं पढ़ा-लिखा नहीं, मैं बिल्कुल अनपढ़ हूं, गंवार हूं; किसी पंडित को चुनो, किसी महापंडित को चुनो; लेकिन परमात्मा भी खूब है, वह महापंडितों को चुनता ही नहीं! अब तक उसने ऐसी भूल नहीं की। और आगे भी करेगा, इसकी कोई संभावना नहीं है। महापंडित को नहीं चुन सकता, क्योंकि महापंडित उससे ही कहेगा कि तू चुप रह! मैं गाता हूं!! महापंडित कहेगा कि यह जो तू बोल रहा है, इसमें व्याकरण की भूल है, कि यह जो तूने कहा, यह वेद से भिन्न है, कि यह मेरी व्याख्या नहीं, मैं इससे राजी नहीं होता! महापंडित हजार झंझटें खड़ी करेगा। इसलिए परमात्मा ने कबीर को चुन लिया, नानक को चुन लिया, मलूकदास को चुन लिया, मोहम्मद को चुन लिया, जीसस को चुन लिया, जिनका पांडित्य से दूर का भी संबंध नहीं है। कबीर ने तो कहा हैः "मसि कागद छूयो नहीं", मैंने तो कभी कागज ही नहीं छुआ, स्याही भी नहीं छूई। यह क्या हुआ? यह कैसे हुआ? फिर कबीर ने ही उत्तर भी दिया है कि अब मैं समझता हूं कि यह कैसे हुआ? क्यों हुआ? यह इसलिए हुआ कि वह बात ही कुछ ऐसी है! "लिखालिखी की है नहीं, देखादेखी बात।" वह लिखालिखी की होती तो मेरे पल्ले आने वाली नहीं थी; वह देखादेखी की बात थी। और जिसकी आंखों में शब्दों का भार नहीं होता और शास्त्रों की धूल नहीं होती, उसके पास दृष्टि होती है; क्षमता होती है देखने की।
मोहम्मद ने अपनी पत्नी से जाकर कहा कि जल्दी ला और मेरे ऊपर कंबल डाल।
वह थरथर कांप रहे थे। पत्नी ने कहाः तुम्हें क्या हुआ? उन्होंने कहा कि या तो मैं कवि हो गया या मैं पागल हो गया। मोहम्मद ने दो शब्द कहे कि या तो मैं पागल हो गया या कवि हो गया। सच बात यह है कि दोनों का मतलब एक ही होता है। कोई बिना पागल हुए कवि नहीं होता। और कोई कवि हो जाए बिना पागल हुए, यह संभव नहीं है।
योग प्रीतम, कहते हो तुमः
"प्यारे हैं--गीत बहुत प्यारे हैं

रसभीगे गीत ये तुम्हारे हैं
इन पर मैं न्यौछावर होता हूं
पर मेरे गीत अभी कुंआरे हैं
इनका भी ब्याह अब रचाना है
प्राणों का साज ही बजाना है"
मत मेरी बातों को ऐसा लो जैसे वे किसी और की हैं। वे तुम्हारी हैं, वे सबकी हैं। मैं तुम्हारे ही गीतों को कंठ दे रहा हूं। जो तुम्हारे भीतर अभी सोया पड़ा है, उसे मैं जाग कर आवाज दे रहा हूं। पुकार दे रहा हूं। जो तुमने नहीं कहा है, वो कह रहा हूं; जो तुम कल कहोगे, वह मैं आज कह रहा हूं; मैं तुम्हारा भविष्य हूं। लेकिन मैं तुम से भिन्न नहीं। और मेरा मुझमें है क्या?
"जब तक वह पाहुना न आएगा
आंसू की आरती उतारूंगा
जब तक सागर न मिले अपना ही
सरिता की पीर बन पुकारूंगा
अपनी ही आग में सुलगना है
अंतस में प्रीति को जगाना है"
ऊपर-ऊपर से सोचोगे तो बिल्कुल ठीक लगेगा। मगर जरा भीतर उतरोगे तो पाओगे कि इसी कारण बाधा पड़ती रहेगी। वही है। उसके अतिरिक्त और कोई भी नहीं है।
मैं निरंतर तुमसे कहता हूंः जागो! लेकिन मैं यह नहीं कह रहा हूं कि जब तुम जागोगे तो तुम पाओगे कि तुम हो। जागोगे तो तुम पाओगे कि तुम हो ही नहीं। यह तो सोए होने की बातें हैं। ये तो नींद में देखी गई बातें हैं, ये तो सपने हैं। यह "मैं" सपना है। और सपने में तो तुम जो भी समझोगे सब गलत होगा।
एक स्कूल में नाटक हो रहा था। छोटे-छोटे बच्चे नाटक कर रहे थे। वार्षिक उत्सव था। जिस शिक्षक ने बच्चों को तैयार किया था; एक कक्षा का दृश्य है, उसमें शिक्षक है, आगे के विद्यार्थी हैं, और उनसे वह कुछ पूछ रहा है। और कक्षा का, जैसी आधुनिक कक्षा की स्थिति है, उसको पूरा का पूरा उपस्थित करने के लिए उसने पीछे के विद्यार्थियों से कहा कि देखो, तुम चुपचाप मत बैठे रहना; खुसुर-पुसुर करते रहना। ताकि दृश्य बिल्कुल वास्तविक, यथार्थ हो जाए। परदा उठा, कक्षा का दृश्य आया, शिक्षक पढ़ा रहा है, और शिक्षक बड़ा हैरान हुआ कि सारे बच्चे पीछे जोर-जोर से दोहरा रहे हैंः "खुसुर-पुसुर", "खुसुर-पुसुर", "खुसुर-पुसुर"... !! सारा नाटक खराब हो गया! जनता हंसने लगी कि यह क्या हो रहा है? छोटे बच्चे बिचारे, खुसुर-पुसुर, उन्होंने कहा कि खुसुर-पुसुर जब कहा है तो खुसुर-पुसुर ही करनी है।
मैं भी तुमसे कहता हूंः जागो। लेकिन खुसुर-पुसुर मत करने लगना! तुमने खुसुर-पुसुर शुरू कर दी। तुमने समझा कि मैं कह रहा हूं कि "तुम" जागो। मैंने तुमसे कहा है बार-बारः उधार ज्ञान को छोड़ो। और तुमने खुसुर-पुसुर शुरू कर दी!
तुम कहते होः पराए गीतों से क्या होगा?
बात बिल्कुल एक जैसी लगती है ऊपर से, मगर भीतर बदल गई। तुम्हारी बात में अहंकार की पुट आ गई। बस, वहीं चूक हो गई। उतनी सी चूक सुधार लो और सब सुधर जाएगा।
कहते होः
"कुछ ऐसा वर दो भगवान मेरे!
मैं भूला अपने घर आ जाऊं"
मैं तो वरदान प्रतिपल दे रहा हूं। मैं वरदान हूं। देने की कुछ बात नहीं। वरदान तो वे दें, जो तुम्हें कभी अभिशाप भी देते हों। मैं तो तुम्हें आशीष ही दे रहा हूं। मेरा होना आशीष है। और इसमें मेरा कुछ नहीं है--फिर तुम्हें दोहरा दूं अन्यथा तुम खुसुर-पुसुर करने लग जाओगे। मजबूरी है, भाषा का उपयोग करना पड़ता है, उसमें "मैं" शब्द का उपयोग किए बिना काम चलता नहीं; तुम्हारी भाषा मैं के आसपास निर्मित है, मैं उसका आधार है, उसे

बोले बिना नहीं चलता। उसे बोलना ही पड़ेगा। उसे न बोलो तो अड़चनें खड़ी होंगी।
स्वामी रामतीर्थ मैं शब्द का उपयोग नहीं करते थे। मगर इससे क्या फर्क पड़ता है? और झंझट खड़ी होती थी! प्यास लगती तो वे कहतेः राम को प्यास लगी है। नई जगह होती तो लोग इधर-उधर देखते, वे कहते, राम यानी कौन? अरे, वे कहते, राम यानी मैं! यह और उलटा कान पकड़ना हुआ! सीधे ही कह देते कि मुझे प्यास लगी है! पहले कहा कि राम को प्यास लगी है, अब वह आदमी पूछेगा, राम यानी कौन? तो उसको बताना पड़ेगा न कि राम यानी कौन? फिर उस "मैं" को लाना ही पड़ेगा। लोक-व्यवहार है। सारी भाषा व्यावहारिक है।
मैं तो वरदान तुम्हें दे ही रहा हूं। मगर तुम लेते नहीं। वरदान लेने
के लिए हिम्मत चाहिए, बड़ी हिम्मत चाहिए! मिटने की हिम्मत चाहिए तो वरदान ले सकोगे।
कहते होः
"कुछ ऐसा वर दो भगवान मेरे!
मैं भूला अपने घर आ जाऊं"
तुम गए कब घर से? मेरी भी मुसीबत समझो! मैं तुम्हें देखता हूं अपने घर में बैठे और तुम पूछते हो, कुछ ऐसा वरदान दो कि मैं अपने घर आ जाऊं! मैं भी तुम्हारे साथ खुसुर-पुसुर करूं! घर से तुम कभी गए नहीं--कोई कहीं गया नहीं--तुम वहीं हो जहां होने चाहिए, सिर्फ सो गए हो।
एक आदमी ने शराब पी ली; और शराब पीकर अपने घर की तलाश में निकला और आदतवश, नशे में था तो भी अपने घर पहुंच गया। आदतवश, रोज की आदत थी। मुड़ गया जहां मुड़ना था, पहुंच गया अपने घर। दरवाजे पर दस्तक भी दे दी। मगर नशा ऐसा था कि कुछ सूझ नहीं रहा था। उसकी मां ने दरवाजा खोला। वह उस बुढ़िया को भी नहीं पहचाना। उसके पैर पकड़ लिया कहा कि हे माताराम, मेरा घर कहां है? मुझे मेरे घर पहुंचा दो। तुम्हें तो पता होगा। यहीं कहीं रहता हूं मैं, इसी मोहल्ले में रहता हूं। उसकी मां ने कहाः बेटा, तुझे हो क्या गया? यह तेरा घर है, मैं तेरी मां हूं, तू मुझसे माताराम कह रहा है। उसने कहा कि नहीं- नहीं, मुझे बहलाओ मत, मुझे फुसलाओ मत, मुझे समझाओ मत, मेरा घर बताओ! वह रो रहा है, उसकी आंखों से आंसू झर-झर टपक रहे हैं। मोहल्ले के लोग इकट्ठे हो गए, समझाने लगे, बड़ा तर्क करने लगे कि यह तेरा घर है, अरे पागल, जरा गौर से तो देख! अब वह गौर से ही देख सकता तो खुद ही देख न लेता! उसे कुछ सुनाई भी नहीं पड़ रहा है, समझ में नहीं आ रहा है। तभी उसका दूसरा साथी भी शराब पीकर चला आ रहा है। और उसने कहाः तू रुक, मैं अपनी बैलगाड़ी जोत कर लाता हूं। उसमें बैठ जा, पहुंचा दूंगा जहां भी तेरा घर हो। शराबी ने कहाः यह बात कुछ जंची।
तुम अपने घर में हो। तुम्हें जो पहुंचाने की कोशिश कर रहे हैं, उनसे जरा सावधान रहना। वे तुम्हें भटका देंगे। उन्होंने तुम्हें खूब भटका दिया है। किसी ने तुम्हें हिंदू बना दिया, वह एक ही तरह की बैलगाड़ी; किसी ने मुसलमान बना दिया, किसी ने ईसाई बना दिया, किसी ने जैन बना दिया, किसी ने बौद्ध बना दिया; तरह-तरह की बैलगाड़ियां। रंग-बिरंगे उनके ढंग! किसी में घोड़े जुते, किसी में बैल जुते, और सब दावा कर रहे हैं कि हम पहुंचाएंगे। और सब दावा कर रहे हैं कि हम ही पहुंचा सकते हैं, और दूसरा पहुंचा नहीं सकता। और सब भटका देंगे। आओ, बैठो हमारी बैलगाड़ी में। और बाजार में तुम्हारी फजीहत हुई जा रही है। कोई हाथ खींच रहा है, कोई पैर खींच रहा है, कोई कह रहा है इधर जाओ, कोई कह रहा है उधर आओ; किसी ने टांग पकड़ कर ईसाई कर दी, किसी ने हाथ पकड़ कर हिंदू कर दिया, किसी ने सिर पकड़ कर जैन बना दिया; तुम्हें कुछ पक्का नहीं है, तुम भले सोचते होओ कि तुम हिंदू हो, मुसलमान हो, आज हालत ऐसी नहीं है। आज तुम्हारे टुकड़े-टुकड़े हो गए हैं। आज अगर तुम गौर से देखोगे, तो तुम्हारा कोई हिस्सा हिंदू हो गया है, कोई हिस्सा ईसाई हो गया है, कोई हिस्सा मुसलमान हो गया है, कोई हिस्सा बौद्ध हो गया है; तुममें सब मिश्रित हो गया है। ऐसी दुर्दशा आदमी की कभी न हुई थी। कम से कम एक-एक बैलगाड़ी में आदमी बैठे थे अब कई-कई बैलगाड़ियों में एक साथ बैठे हैं। "अल्लाह ईश्वर तेरे नाम, सबको सन्मति दे भगवान!" अब तो भगवान का ही भरोसा है, वही सन्मति

दे तो ठीक है! तुमने तो सब नावों पर सवारी कर ली है। तुम न मालूम कितने घोड़ों पर सवार हो गए हो!
और किन्हीं बैलगाड़ियों की जरूरत नहीं है, किन्हीं नावों की जरूरत नहीं है, किन्हीं घोड़ों की जरूरत नहीं है, तुम जहां हो वहीं परमात्मा है। परमात्मा के बिना तुम हो नहीं सकते। वही तुम्हारा प्राण, वही तुम्हारा आधार। इसलिए कहीं जाना नहीं है, योग प्रीतम, जागना है। जहां हो, वहीं जागना है। थोड़ा अपने को झकझोरना है।
कहते होः
"कुछ ऐसा कर दो गुरुदेव मेरे!
मैं अपने मितवा को पा जाऊं"
मैं अपने मीत को पा जाऊं। मीत मिला ही है, मीत तुम्हारे भीतर बैठा है।
और इसीलिए मैं तुमसे कह सकता हूं, योग प्रीतम, काश, तुम अपने मन की धुंध को विचारों की, ज्ञान की पर्तों को हटा कर मेरी बात को सुन सको, तो इस जीवन से खाली जाने की कोई संभावना नहीं है। तुम भरे जाओगे, भरे तुम हो, भरे तुम आए हो। सिर्फ प्रत्यभिज्ञा चाहिए। सिर्फ पहचान चाहिए। सुरति, स्मरण।
कहते होः
"उस परम उत्सव की घड़ियों को
अनगाए लौट नहीं जाना है"
कोई आवश्यकता नहीं है अनगाए लौट जाने की। लेकिन कई बार जन्मे हो और कई बार अनगाए लौट गए हो। और पुरानी आदतों को दोहराने की आदत हो जाती है। बार-बार दोहराने की आदत हो जाती है। हम यंत्रवत उन्हीं-उन्हीं भूलों को दोहराए जाते हैं। हम भूलें भी नई नहीं करते। हम भूलें भी पुरानी ही करते हैं। वही-वही फिर-फिर करते हैं।
कोई कारण नहीं है कि गीत अनगाया रह जाए। और कोई कारण नहीं है कि तुम जागो न। तुम जाग सकते हो। जागना तुम्हारी संभावना है, सहज संभावना है; तुम्हारा स्वभाव है; तुम्हारी निजता है। मेरे आशीष तो उपलब्ध हैं। मैं जो कर सकता हूं, कर रहा हूं। और इसकी भी फिकर नहीं करता कि तुम्हें पसंद पड़े या न पड़े! क्योंकि सोए हुए आदमी को कब पसंद पड़ता है जब तुम उसको उठाने लगते हो? सोए हुए आदमी को बुरा लगता है। और अगर वह कोई मीठा मधुर सपना देख रहा हो, तो बहुत बुरा लगता है। अगर वह धन की खदान खोद रहा हो सपने में, कि सम्राट हो गया हो--और ऐसे भिखमंगा हो--और उसको तुम जगा दो, तो वह तुम्हारा सदा के लिए दुश्मन हो जाए; तुम्हें कभी क्षमा न कर सकेगा। इसीलिए तो बुद्धों को पत्थर पड़े, जीसस को सूली लगी, मंसूर के हाथ-पैर काटे गए, सुकरात को जहर पिलाया गया। ये किन लोगों ने किया? ये हमीं जैसे लोग थे। लेकिन सोए लोग; सोए हुए लोगों को जगाओगे, उनकी मर्जी के खिलाफ!
लेकिन एक बात अच्छी है कि तुम खुद ही कह रहे हो कि मैं तुम्हें जगाऊं,
कुछ करूं। याद रखना, कि मैं कुछ करूं तो भागना मत। क्योंकि करना शुरू-शुरू में तुम्हारे अनुकूल नहीं पड़ेगा। इसलिए तो मुझे इतनी गालियां पड़ रही हैं-- पड़ेंगी। जगाओगे सोए आदमी को तो गाली खाने के लिए तैयार होना ही चाहिए। अगर सोए आदमी से गाली न खानी हो तो उसे लोरी सुनाओ, कि उसे और नींद आ जाए! वही तुम्हारे तथाकथित साधु-संत करते हैं, लोरी सुनाते हैं। फिर चाहे वे आचार्य तुलसी हों, जैनों के, और चाहे पुरी के शंकराचार्य हों, और चाहे जामा मस्जिद के इमाम बुखारी हों, कुछ फर्क नहीं पड़ता, उन सबका काम एक हैः लोरी सुनाओ! लोग सो रहे हैं, उनकी नींद को और सुखद बनाओ। अगर उघड़ गए हों तो जरा कंबल और उढ़ा दो। अगर नींद टूटने के करीब हो, तो और नींद की दवा पिला दो। उन्हें सोया रहने दो। उनके सोए रहने में पंडितों को लाभ है। क्योंकि जब तक तुम सोए हो तब तक तुम्हारी जेबें काटी जा सकती हैं। जब तक तुम सोए हो तब तक तुम्हारा शोषण हो सकता है। जब तक तुम सोए हो तब तक तुम असहाय हो, पर-निर्भर हो।
मेरी चेष्टा है कि तुम जागो। और जागने में सब से बड़ा उपद्रव यह है कि तुम ही नाराज हो जाओगे।
मुल्ला नसरुद्दीन को उसकी पत्नी ने सुबह-सुबह उठाया। मुल्ला ने ही कहा था रात में कि मुझे जल्दी से उठा देना, छह बजे, ट्रेन पकड़नी है, बंबई

जाना है। तो पत्नी ने उठा दिया छह बजे। एकदम उठ कर बैठ गया, एकदम गुस्सा हो गया, कहाः दुष्ट, यह वक्त तुझे उठाने का मिला? पत्नी ने कहा कि आपने ही कहा था। फिर बंबई नहीं जाना है? मुल्ला ने कहाः ऐसी की तैसी बंबई की! सोच-समझ कर तो जगाना चाहिए आदमी को! और जल्दी से आंखें बंद कर के कंबल ओढ़ कर लेट गया। और कुछ बुदबुद करने लगा। पत्नी ने कहाः बात क्या है? वह भी पास आ गई क्योंकि पति अगर बुदबुदाएं तो पत्नियां बहुत गौर से सुनती हैं कि बात क्या है, मामला क्या है? और मुल्ला अपने कंबल के भीतर कह रहा है कि अच्छा निन्यानबे ही सही। पत्नी ने कहा यह माजरा क्या है! यह किस निन्यानबे के फेर में पड़ा है? कंबल छीन लिया और कहा कि क्या मतलब, कहां का निन्यानबे? मुल्ला ने कहा कि तूने सब खराब ही कर दिया। एक फरिश्ता मैं देख रहा था सपने में, जो कह रहा था कि मांग ले क्या मांगना है। सो मैंने उससे सौ रुपये मांगे। वह कहने लगा, सौ तो नहीं दूंगा, नब्बे ले ले। तो उससे बातचीत चल रही थी, सौदा चल रहा था। मैंने कहा अच्छा अगर सौ न दे तो चल, चार आने कम दे दे, छह आने कम दे दे, आठ आने कम दे दे, बारह आने कम दे दे। वह भी धीरे-धीरे बढ़ रहा था, महाकंजूस फरिश्ता था। वह कहेः इक्यानवे ले ले, बानवे ले ले, तिरानवे ले ले; और मैं भी कोई ऐसा आने वाला? तभी दुष्ट तूने आकर जगा दिया! बस, मैं कहने ही वाला था कि अच्छा चलो, निन्यानबे दे दे, और सौदा पटने ही पटने के करीब था। मगर अब आंख भी बंद करता हूं तो फरिश्ता दिखाई नहीं पड़ता। और मैं कहता हूं कि निन्यानबे न दे, भाई, चल अट्ठानबे ही सही, चल पुराना ही ठीक है! तेरा नब्बे ही सही! कुछ तो दे! मगर फरिश्ता ही नदारद है!
लोग सपने देख रहे हैं। कोई नींद में ऐसा ही थोड़े पड़ा है।
शायद तुम्हें जान कर यह हैरानी होगी कि आधुनिक मनोविज्ञान ने नींद पर बड़ी खोज-बीन की है और इस खोज-बीन में जो सबसे सर्वाधिक महत्वपूर्ण सत्य हाथ लगा है, वह यह है कि स्वप्न निद्रा का विरोधी नहीं है, सहयोगी है। आमतौर से तुम सोचते हो कि स्वप्न के कारण नींद खराब होती है। तुम गलती में हो। यह आम धारणा है; लोग सुबह उठ कर कहते हैं कि रात भर सपने आते रहे, ठीक से सो न पाए! आधुनिक खोज इससे राजी नहीं है। आधुनिक खोज जो कहती है वह कुछ और है, ठीक इससे उलटा है। और मैं भी आधुनिक खोज से राजी हूं।
आधुनिक खोज कहती है कि सपने नींद के विपरीत नहीं हैं, सपने नींद के सहयोगी हैं। जैसे रात में तुम्हें भूख लगी... समझ लो कि पर्यूषण के व्रत चल रहे हैं, दिन में उपवास कर लिया है, अब दिन भर तो किसी तरह मंदिर में गुजार दिया, मुनिजी का व्याख्यान सुनते रहे। वह भी भूख में अपनी भूख भुलाने को बोलते रहे, तुम भी भूख में बैठे सुनते रहे, सिर हिलाते रहे। तुमने अपनी इज्जत बचाई, उन्होंने अपनी इज्जत बचाई; एक-दूसरे की देखादेखी किसी तरह अपने को सम्हाले रखे। और भी गांव के लोग मौजूद थे जो उपवास किए बैठे थे-- उपवास करने वाले लोग मंदिर में जाकर बैठ जाते हैं। क्योंकि घर में रहें तो दिन भर भूख ही भूख की याद आती है। और चौका, और चौके से आती गंध, और बेटा चला आ रहा है सेंडविच लिए हुए! हजार झंझटें! हजार प्रलोभन! और जब भी निकलते हैं तो फ्रिज ही दिखाई पड़ता है! वे मंदिर में बैठ जाते हैं। न फ्रिज, न सेंडविच, न बच्चे, न चौका, न गंध भोजन की, कुछ भी नहीं! मुनि महाराज, वे और भी भूखे, उन्हें देख कर और दया आती है, कि इनसे तो हमीं बेहतर! कि हमारा पर्यूषण पर्व तो दो-तीन दिन में खत्म हो जाएगा, इनका बेचारों का कभी खत्म होने वाला नहीं। उन्हें देख कर आदमी अपने पर हिम्मत कर लेता है कि कोई फिकर नहीं, अगर यह आदमी जिंदगी भर से गुजार लिया, तो दिन दो दिन की बात है, गुजार लेंगे! मगर रात तो घर आना पड़ेगा। और नींद में बड़ी मुश्किल हो जाती है। न शास्त्र काम आते हैं, न सिद्धांत काम आते हैं। नींद में तो भूख लगती है, शरीर मांग करता है। किसी तरह दिनभर भुलाए रहे, उलझाए रहे, नींद में तो कहता हैः भूख लगी है। पेट कुड़बुड़ाता है, आग जलती है। अब इस भूख के कारण तुम सो न सकोगे। एक सपना पैदा करता है मन। मन कहता है कि क्या जरूरत है भूखे रहने की? राजभोज में निमंत्रित हुए हो। छप्पन प्रकार के भोजन सजे हैं।... उपवास करो तभी छप्पन प्रकार के भोजन करने का मजा रात में आएगा, नहीं तो नहीं आता। मेरा अपना ख्याल यह है कि जिन लोगों को छप्पन प्रकार के भोजन करने का मजा लेना होता है, वे उपवास करते हैं। नहीं तो छप्पन प्रकार का भोजन, किसको पड़ी

है? और भी काम हैं दुनिया में! यह छप्पन प्रकार का भोजन नींद में तुम कर लेते हो, अपने को ऐसे धोखा दे लेते हो। सपना एक धोखा है। यह धोखा देकर तुम निश्चिंत करवट लेकर सो जाते हो। भोजन हो गया, अब क्या डर? तुमने शरीर को धोखा दे दिया सपने से। नहीं तो नींद टूटती। नींद को टूटना ही पड़ता। नींद बच गई। सपना नींद की सुरक्षा है।
इसलिए मनोवैज्ञानिक तुम्हारे सपनों का विश्लेषण करते हैं। क्योंकि तुम्हारे सपनों से पता चलता है कि तुम्हारी जिंदगी में कहां कमी है। तुम्हारी जिंदगी में जिन-जिन चीजों की कमी है उन-उन चीजों के तुम सपने देखते हो। सपने बड़े सूचक हैं। सपने बड़े ईमानदार हैं। सपने वही बात देते हैं जो तुम छिपा रहे हो दुनिया से। महात्मा गांधी ने अपनी आत्म-कथा में लिखा है कि दिनभर तो मैं ब्रह्मचर्य साध लेता हूं, लेकिन रात सपनों में नहीं साध पाता। स्वप्न में तो मुझे कामवासना के विचार आ जाते हैं। तो वे कामवासना के विचार ज्यादा सही बात की खबर दे रहे हैं। वह जो दिन में किसी तरह सम्हाल लिया है, वह रात में बिखर जाता है, क्योंकि सम्हालने वाला सो जाता है। आखिर चौबीस घंटे थोड़े ही पहरा देते रहोगे! दिन भर किसी तरह दे लिया; थकोगे भी? फिर सोओगे। पहरा देने वाला सो गया। फिर जो-जो दिन भर में दबाया है, वह रात उठेगा। तुम्हारे सपने बता देंगे कि तुम क्या दबा रहे हो? किस चीज का दमन कर रहे हो? तुम्हारा रोग कहां है? --तुम्हारे सपनों में प्रकट होगा।
स्वप्न निद्रा की रक्षा करते हैं। और जब भी तुम किसी को जगाओगे, उसके सपने टूटेंगे। उसकी निद्रा टूटेगी। निद्रा उसे ले जाती है चिंताओं के बाहर। दैनंदिन चिंताएं हैं, बहुत चिंताएं हैं; जीवन में दुख हैं, बहुत दुख हैं; नींद में सब दुख भूल जाते हैं, सब चिंताओं से पार हो जाता है आदमी। भिखारी सम्राट हो जाते हैं, हारे हुए जीत जाते हैं, कमजोर बलवान हो जाते हैं। कुरूप सुंदर हो जाते हैं, लूले-लंगड़े भी पर्वत चढ़ने लगते हैं, मगर वह सपने में। और ऐसे सपनों को अगर तुम तोड़ोगे तो नाराज तो होंगे ही वे। वे चाहते हैं कि तुम लोरी गाओ। वे चाहते हैं कि तुम नींद को और गहराओ।
योग प्रीतम, तुम्हारी नींद मैं तोड़ने को तैयार हूं। मेरे आशीष तुम्हारी निद्रा को ही तोड़ सकते हैं। लेकिन तुम्हारे स्वप्न भी टूटेंगे। तुम्हारे स्वप्नों का भी टूटना जरूरी होगा। तुम भी मुझसे नाराज हो जाओगे बहुत बार। यह रोज यहां होता है! मेरे संन्यासी भी मुझसे बहुत बार नाराज हो जाते हैं। जहां उनकी धारणा को चोट लगी, वहीं नाराज हो जाते हैं। जब तक उनकी धारणा के मैं अनुकूल हूं तब तक बिल्कुल ठीक, जैसे ही मैं धारणा के अनुकूल नहीं रहा कि उनकी नाराजगी हुई। धारणा के अनुकूल न होने का अर्थ हैः तुम्हारी नींद टूटने लगी, मैं तुम्हारी आदतों के खिलाफ जाने लगा; मैं तुम्हारी बंधी हुई रूढ़ि के विपरीत होने लगा। तुम भी मेरे साथ बस सोच-सोच कर चलते हो। उतना ही सुनते हो जितना तुम्हारे अनुकूल पड़ता है, जितना तुम्हारी नींद में बाधा नहीं डालता, शेष को तुम टाल जाते हो; शेष से तुम राजी नहीं होते।
मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, हम आपकी इतनी बातों से राजी हैं; मगर इतनी बातों से राजी नहीं हैं। और मैं तुम से कह दूंः या तो तुम मुझ से राजी हो तो मेरी पूरी बातों से राजी हो, या फिर तुम मुझ से राजी नहीं हो तो मेरी पूरी बातों से राजी नहीं हो। समझौता नहीं हो सकता, सौदा नहीं हो सकता, बंटवारा नहीं हो सकता। मैं जो भी कह रहा हूं, वह एक सुनियोजित व्यवस्था है। उसमें सारे तार जुड़े हैं। तुम कहो कि हम इतने से राजी और इतने से राजी नहीं, तो काम नहीं चलेगा। या तो पूरे राजी या पूरे ना-राजी।
मेरा आशीष तो तुम्हें जगाने को है। लेकिन जागने की हिम्मत जुटाओ। सपने टूटेंगे, नींद टूटेगी; सुखद सपने होंगे, सुखद नींद होगी शायद, लेकिन तोड़नी ही पड़ेगी। और सत्य शुरू-शुरू में बहुत कड़वा होता है। बुद्ध ने कहा हैः असत्य शुरू में मीठा होता है, पीछे कड़वा। और सत्य पहले कड़वा होता है, पीछे मीठा। इसलिए असत्य से लोग जल्दी से राजी हो जाते हैं। सत्य से कौन राजी होता है? वह पहले ही कड़वा होता है। मगर जो पहली कड़वाहट को झेलने की तत्परता दिखाता है--वही तो साधना है, वही तपश्चर्या है, सत्य की कड़वाहट को

पी लेना, वही तो योग है--उसके जीवन में बड़ी मिठास पैदा होती है। मैं तुम्हें आश्वासन देता हूं, योग प्रीतम, इसी जीवन में क्रांति घटेगी, घट सकती है, मगर सिर्फ मेरे आशीषों से कुछ न होगा। तुम्हें मेरे साथ चलने को राजी होना होगा।
और छोटी-छोटी चीजों से बाधा पड़ जाती है।
मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, हम संन्यासी होना चाहते हैं, लेकिन गैरिक वस्त्र नहीं पहनेंगे, माला नहीं पहनेंगे। यह तो ऐसे ही हुआ कि जैसे तुम चिकित्सक के पास जाओ और कहो कि हम आपसे इलाज करवाना चाहते हैं, लेकिन आपकी दवा नहीं पीएंगे। तो काहे के लिए परेशान हो रहे हो? और क्यों चिकित्सक को परेशान कर रहे हो? अगर दवा ही नहीं पीनी... और यह तो सिर्फ शुरुआत है, ये गैरिक वस्त्र। यह तो मैं भी जानता हूं कि गैरिक वस्त्र पहन लेने से तुम कोई परमात्मा को उपलब्ध नहीं हो जाओगे, मुझे कुछ तुम्हें बताने की जरूरत नहीं है, मैं भी जानता हूं कि माला डाल लेने से तुम परमात्मा को उपलब्ध नहीं हो जाओगे। लेकिन उनका कुछ प्रयोजन है। यह ढंग है मेरा तुम्हारी अंगुली पकड़ने का। और अंगुली पकड़ में आई तो पहुंचा भी पकड़ में आ सकता है। यह मेरा ढंग है तुमसे इस बात की स्वीकृति लेने का कि अगर मेरे साथ तुम्हें पागल भी होना पड़े तो तुम होने को राजी हो। यह पागलपन है! गैरिक वस्त्र पहना दिए तुम्हें, माला डाल दी तुम्हारे गले में, अब जहां जाओगे वहीं मुसीबत होगी! अगर तुम इतनी सी मुसीबत झेलने को राजी नहीं हो; लोग हंसेंगे, लांछना करेंगे, निंदा करेंगे, विरोध करेंगे, अगर इतनी-सी बात के लिए भी तुम राजी नहीं हो तो फिर आगे जो और कठिन चढ़ाइयां आएंगी, तब क्या होगा?
योग प्रीतम, आशीष झेलने की तैयारी दिखाओ, झोली फैलाओ! और वह तुम्हारा "मैं" झोली नहीं फैलाने दे रहा है। आशीष बरस रहे हैं और तुम्हारी मटकी खाली की खाली, क्योंकि तुम उलटी रखे बैठे हो। मटकी को सीधी करो। मैं तुम्हारी गागर में सागर भरने को राजी हूं। और इसी जीवन में हो सकता है--इसी जीवन में क्यों, आज हो सकता है, अभी हो सकता है, यहीं हो सकता है! परमात्मा के लिए भविष्य में ठहरने की कोई जरूरत नहीं है, स्थगित होने की कोई आवश्यकता नहीं है, आज हो सकता है। बस, तुम्हारी देर है। देर तुम्हारी तरफ से है, उसकी तरफ से नहीं।
मगर लोग बड़े होशियार हैं; लोग क्या कहते हैं? लोग कहते हैं कि परमात्मा की दुनिया में देर है मगर अंधेर नहीं। बड़े होशियार आदमी हैंः देर है मगर अंधेर नहीं! ऐसी उन्होंने दो तरकीबें निकाल लीं। एक तो यह कि देर है तो उसकी तरफ से, हम क्या करें? और अंधेर नहीं है, इससे अपने को विश्वास दिला लिया कि घबड़ाओ मत, कभी न कभी होगा! आज तो नहीं होने वाला है, क्योंकि देर है; कल होगा। कल कभी आया है? तुमने दोनों तरकीबें बना लीं, अपने को समझा भी लिया कि अंधेर नहीं है, होगा तो जरूर, इस जन्म में नहीं तो अगले जन्म में, अगले जन्म में नहीं तो और अगले जन्म में, मगर देर है, अब उसमें हम क्या कर सकते हैं, देर उसी की तरफ से है! मैं तुमसे कहता हूंः उसकी तरफ से न देर है, न अंधेर है। देर भी तुम्हारी तरफ से है, अंधेर भी तुम्हारी तरफ से है।
देर छोड़ दो, स्थगित करना छोड़ो, कल पर टालना छोड़ो, अंधेर भी मिट जाए। इस जीवन में ही क्रांति हो सकती है, इसका मैं तुम्हें आश्वासन देता हूं।

दूसरा प्रश्नः ओशो, मैं अपनी जिंदगी राजनीति में ही गंवाया हूं और अब
जब कि मंत्री बनने का अवसर आया है तब आपका संन्यास आकर्षित कर रहा है। मैं क्या करूं, बड़ी दुविधा में हूं।

सुरेंद्रनाथ! ईश्वर की तुम पर बड़ी अनुकंपा है। इतनी अनुकंपा बहुत कम लोगों पर होती है! कि ठीक गड्ढे में गिरने के पहले तुम्हारा हाथ पकड़े ले रहा है! मंत्री बनने से अंत थोड़े ही होगा। फिर मुख्यमंत्री कौन बनेगा? और मुख्यमंत्री बनने से कोई अंत है! फिर केंद्रीय मंत्री कौन बनेगा? और केंद्रीय मंत्री बनने से कोई अंत है! फिर उप-प्रधानमंत्री और

प्रधानमंत्री! यह तो एक पागलपन की लंबीशृंखला है! और अच्छा है कि पहली ही सीढ़ी पर उतर जाओ, क्योंकि पीछे उतरना बहुत मुश्किल हो जाता है। दो-चार सीढ़ियां चढ़ गए, तो फिर उतरने में लोकलाज भी लगती है! फिर लोग भी कहने लगते हैं कि अरे, मैदान छोड़ कर भाग रहे हो? अब तो डटे रहो! अभी छोड़ दोगे तो कोई कुछ नहीं कहेगा, क्योंकि छोड़ने को अभी कुछ है ही नहीं--अभी मंत्री हुए नहीं, होने का अवसर आ रहा है! और अवसर तो आ रहा है, यह मैं भी समझता हूं। तुम्हारा ही नहीं आ रहा है, सुरेंद्रनाथ, हर गधे का आ रहा है! जो जितना बड़ा गधा है उतना बड़ा अवसर है। गधे बड़ी दुलत्ती झाड़ रहे हैं! और जो बन गए हैं, उनकी तो दशा पूछो! उनकी हालत तो पूछो!

बोया तो बासमती,
काटी तो बाजरी,
रींधी तो जोंधरी,
खाई तो कांकरी!
पहेली बूझो, चौधरी!

जरा चौधरी से तो पूछो!
तुम निश्चित सौभाग्यशाली हो!! इतने सौभाग्यशाली लोग कम होते हैं! जरूर पिछले जन्मों का कोई पुण्य है। वक्त पर काम आ रहा है! नहीं तो राजनीति तो बड़ा उपद्रव का खेल है।

गुड़िया के भीतर,
गुड़िया है,
गुड़िया भीतर गुड़िया,
फिर गुड़िया के भीतर
गुड़िया,
फिर गुड़िया में गुड़िया;
सबसे छोटी गुड़िया से
यह पूछा मैंने,
"गुड़िया,
तू कितनी गुड़ियों के अंदर, क्या तेरा यह जाना?"

इतना सुन कर मुझसे बोली
सबसे छोटी गुड़िया,
"दुनिया के अंदर
दुनिया है,
दुनिया अंदर दुनिया,
फिर दुनिया के अंदर
दुनिया,
फिर दुनिया में दुनिया;
तू कितनी दुनियों के भीतर,
भान तुझे इंसाना?

राजनीति तो चक्कर में चक्कर है। फिर चक्कर में चक्कर। इसका कोई अंत है?
सुरेंद्रनाथ, जब जाग जाओ तभी सवेरा है। और सुबह का भटका शाम भी घर आ जाए तो भटका नहीं कहा जाता। और अभी तो शाम भी नहीं हुई। अभी तो मंत्री बने ही नहीं... मंत्री बनने के बाद शाम होती है; फिर रात है! फिर अमावस की रात है! फिर मुझसे मत कहना। अभी दुविधा हो रही है, बन जाते तब तो बड़ी मुश्किल हो जाती। कुछ बन गए हैं, वे भी मुझसे कहते हैं कि बात आपकी जंचती है, मगर अब क्या करें? अब बहुत देर हो गई। अब इस चक्कर में पड़ गए हैं, इसको पूरा ही कर लें! और चक्कर को कौन पूरा कर पाया है? चक्कर कहीं पूरे होते हैं? चक्कर का

मतलब ही यह होता है कि चलते रहो, चलते रहो, चलते रहो! जब चक्कर ही है तो पूरा कैसे होगा? कोल्हू का बैल जैसे चलता है वैसे इस जिंदगी के चक्कर हैं। इसमें अगर तुम थोड़े ठिठक गए हो, और यहां तक आ गए... मंत्री होते तो यहां नहीं आ पाते। देखो, एक मंत्री न होने का फायदा! मंत्री भी यहां आना चाहते हैं तो पहले वे खबर करते हैं। क्या खबर करते हैं? वे कहते हैं कि हमें निमंत्रण दिलवाएं। क्योंकि बिना निमंत्रण हम कैसे आएं? और मैं उनसे कहता हूं कि निमंत्रण और सबके लिए दिलवा सकता हूं, मंत्रियों के लिए नहीं। तुम आओ, जैसे और सब आते हैं!
अभी कुछ ही दिन पहले मध्यप्रदेश के उप-मुख्यमंत्री पूना में थे। उनके सेक्रेटरी ने फोन किया कि उप-मुख्यमंत्री आना चाहते हैं। तो कहा गया कि ठीक है, जरूर आएं। उन्होंने कहाः लेकिन बिना निमंत्रण के वे कैसे आएं? तो उनको कहा गया, जब आना चाहते हैं तो निमंत्रण का सवाल क्या है? आना उन्हें है, हमारी कोई उत्सुकता नहीं, कि हम निमंत्रण दें। प्यासे को आना हो तो आ जाए कुएं पर; कुआं कोई निमंत्रण नहीं देता फिरता कि आना, आइए, जरूर आइए, पधारिए!! सेक्रेटरी बोला कि शायद समझने में भूल हो रही है, आपको बात साफ हो रही है कि नहीं, वे मध्यप्रदेश के उप-मुख्यमंत्री हैं! जब सेक्रेटरी की कुछ दाल गली नहीं तो उप-मुख्यमंत्री ने स्वयं फोन लिया... बैठे होंगे पास ही! क्योंकि सीधे तो कैसे फोन करें कि मैं आना चाहता हूं तो मुझे निमंत्रण, लेकिन जब देखा कि इस तरह रास्ता नहीं चलेगा, यहां सचिव की नहीं चलेगी, तो उन्होंने कहा कि मैं उप-मुख्यमंत्री स्वयं बोल रहा हूं, मैं आना चाहता हूं; आश्रम से किसी को भिजवा दें। मैंने उनसे कहाः आप आ जाएं, आश्रम का पता दुनिया के दूर-दूर कोने तक फैला हुआ है... ! बदनामी बहुत! इसीलिए तो मैं बदनामी से हैरान नहीं होता; चलो, कुछ नाम न हुआ तो बदनाम ही सही! कम से कम खबर तो दूर-दूर तक पहुंच जाएगी। फिर जिसको आना है वह आ जाएगा। चलो, यही सही कि पानी खारा है, इसकी खबर पहुंच जाए। फिर लोग आकर पीते हैं तो जान लेते हैं कि खारा है या मीठा है। मगर एक बार खबर तो पहुंच जाए।
तो मैंने कहा कि पूना में ही बैठे हैं, आ सकते हैं! कोई भी ले आएगा, कोई
भी रिक्शेवाला ले आएगा! और अगर आपको कहने में संकोच लगता हो तो सिर्फ गैरिक वस्त्र पहन कर रास्ते पर खड़े हो जाएं, कोई भी रिक्शेवाला एकदम बिठा कर आश्रम पहुंचा देगा!! कहना भी नहीं पड़ेगा। रिक्शेवाले पूछते ही नहीं कहां जाना है, आश्रम ले आते हैं।... और तो कहीं कोई जा भी नहीं रहा है पूना में!
मगर नहीं हिम्मत जुटा सके।
अच्छा है कि मंत्री अभी हुए नहीं। तो आ तो गए! बनकर भी मंत्री क्या होगा? क्या पा लोगे? कितने तो भूतपूर्व मंत्री हैं इस देश में... पहले मुझे भूतों में विश्वास नहीं था; मगर अब है! इतने भूतपूर्व मंत्री हैं तो भूत भी होते ही होंगे! जो देखो वही भूतपूर्व मंत्री है! तीस सालों में भारत में और हुआ ही क्या?

मंत्री बनने को तु... तु... आ... ऊं,
क्या कुत्ते ने काटा है!

राज्यसभा में जबसे पहुंचा
मित्र निकट के आते हैं,
मुझे अकेले में ले जाकर
खुस-फुस प्रश्न उठाते हैं--
बंधु, तुम्हारे मंत्री बनने का कब नंबर आता है? मंत्री बनने को तु... तु... आ... ऊं,
क्या कुत्ते ने काटा है!

साठ बरस तक जो वाणी पर
अक्षर-अर्थ चढ़ाएगा,
राजनीति के हुड़दंगों में

वह हड़बोंग मचाएगा!
ढोंगी जन्म लिया करता है, नहीं बनाया जाता है। मंत्री बनने को तु... तु --आ... ऊं,
क्या कुत्ते ने काटा है!

पंछी-सा जो ऐसा चहके
जड़ गण मन को बहकाए,
अजगर-सा जो ऐसा बैठे
देश न तिलभर हिल पाए,
दास मलूका की धरती पर ऐसों का क्या घाटा है।
मंत्री बनने को तु... तु... आ... ऊं,
क्या कुत्ते ने काटा है!

तुम्हें कुत्ते ने काटा? और अगर कुत्ते ने काटा हो तो तुम वही करो जो मुल्ला नसरुद्दीन ने किया है!
मुल्ला नसरुद्दीन को एक दिन एक पागल कुत्ते ने काट लिया। ले गए उसके
घर के लोग उसे अस्पताल। डाक्टर ने कहाः बहुत देर हो गई, अब इंजेक्शन भी काम करेगा कि नहीं करेगा, कुछ पता नहीं। डर है कि यह आदमी पागल हो जाएगा। मुल्ला नसरुद्दीन ने यह सुना, कहा कि जल्दी से मुझे कागज और कलम दें। डाक्टर ने जल्दी से कागज-कलम दी। मुल्ला नसरुद्दीन एकदम बैठ कर लिखने लग गया कागज पर कुछ जोर से, एकदम तेजी से। इतनी तेजी से कि डाक्टर ने पूछा कि क्या वसीयत लिख रहे हैं? मुल्ला नसरुद्दीन ने कहाः वसीयत-मसीयत क्या! मैं उन आदमियों के नाम लिख रहा हूं, जिनको पागल होने के बाद काटूंगा। फिर पागल हो गया, भूल न जाऊं! फेहरिस्त बना रहा हूं।
तुम कहते हो, सुरेंद्रनाथ, "कि मैं अपनी जिंदगी राजनीति में ही गंवाया हूं।"
अगर यह बात समझ में आ गई हो कि गंवाए, तो अब और क्या दुविधा है? हां, कुछ कमाए होओ तो दुविधा हो सकती थी। गंवाए हो। अभी भी चौंक जाओ। अभी भी सावधान हो जाओ। अभी भी देर नहीं हो गई, कुछ कमाया भी जा सकता है। मरने के एक क्षण पहले भी अगर आदमी होश से भर जाए तो जीवनभर का गंवाना एक तरफ और उस एक क्षण का कमाना एक तरफ। और उस कमाई का पलड़ा भारी! मगर मैं समझता हूं कि अब तुम्हें अड़चन होती होगी कि जिंदगीभर तो इसी दौड़-धूप में रहा कि कैसे मंत्री हो जाऊं, अब मंत्री होने का अवसर करीब आ रहा है! अब सभी का करीब आ रहा है। अब सचाई तो यह है कि अगर हम में समझदारी हो, तो हमें सारे देश को मंत्री घोषित कर देना चाहिए। यह झंझट ही क्या? यह क्या पंचायत लगा रखी है! गए तहसीलदार के दफ्तर में, एक रुपया जमा किया, सर्टिफिकेट लिया, अपना घर आ गए, मंत्री!
सभी को मंत्री घोषित कर देना चाहिए।
दौड़ ऐसी मची है कि सभी होकर रहेंगे! और सभी के होने में देश मटियामेट
हो जाएगा। क्योंकि जो हो जाए, वह जब तक हो नहीं पाता तब तक सारी ताकत होने में लगाता है, और जब हो जाता है तब सारी ताकत बचे रहने में लगाता है! इस देश का काम कौन करे? इस देश के काम की फुर्सत किसके पास है? समय कहां है? पहले सत्ता को पाओ, उसमें जिंदगी लगाओ; फिर सत्ता मिल जाए तो कुर्सी से जकड़ने में सारी शक्ति लग जाती है। फिर कुर्सी अगर छिन्न जाए, तो फिर उसे पाने की चेष्टा में लगो; क्योंकि फिर अपमान लगता है कि इतनी ऊंचाई पर पहुंच कर अब साधारण आदमी की तरह जीओ। यह भी बरदाश्त के बाहर हो जाता है। यह उपद्रव इतने जोर से फैल रहा है कि मेरे हिसाब से तो सभी को घोषणा कर देनी चाहिए कि सभी लोग मंत्री! जैसे प्रत्येक व्यक्ति भारतीय, ऐसे प्रत्येक व्यक्ति मंत्री। इसमें क्या अड़चन है? भारतीय होना और मंत्री होना पर्यायवाची। इससे अड़चन कम हो; इससे झंझट मिटे; कुछ काम तो हो सके!
तीस सालों में कुछ काम नहीं हो सका। काम हो ही नहीं सकता! और आगे और मुश्किल होता चला जाएगा। क्योंकि सभी की महत्त्वकांक्षाएं जग रही हैं।

और सभी को लग रहा है कि मंत्री बन सकते हैं, जरा सांठ-गांठ बिठाने की बात है!
अब तुम कह रहे हो कि मंत्री बनने का समय बिल्कुल करीब आ गया है, अवसर हाथ में है और आपका संन्यास आकर्षित कर रहा है। शुभ घड़ी है। समय पर तुम्हें परमात्मा ने जैसे पुकार लिया है। इस अवसर को चूको मत! हो जाओ संन्यस्त। देख ली राजनीति, खूब देख ली, अब संन्यास का रंग भी देखो! इस आनंद को भी देखो! राजनीति का अर्थ होता हैः दूसरे पर कब्जा, दूसरों पर मालकियत। संन्यास का अर्थ होता हैः अपने पर मालकियत। और अपने मालिक होने का जो मजा है, वह इस दुनिया में किसी और चीज में नहीं।
सिकंदर भी दरिद्र हैं बुद्धों के सामने। यद्यपि बुद्ध के पास कुछ हो
या न हो, कौड़ी भी न हो, तो भी सिकंदर दरिद्र हैं।
बुद्ध एक गांव में आए। उस गांव के वजीर ने अपने राजा से कहा कि हमें स्वागत करने को चलना चाहिए, गांव के बाहर, बुद्ध का आगमन हो रहा है। राजा ने कहा कि हम क्यों जाएं? वह भिखारी है, मैं सम्राट हूं। मेरे उसके स्वागत के लिए जाने की जरूरत क्या है? वजीर ने राजा की तरफ देखा और कहाः तो फिर मेरा इस्तीफा स्वीकार कर लें, मैं आपके नीचे काम नहीं कर सकूंगा। लेकिन उस वजीर के बिना काम चल नहीं सकता था, क्योंकि वही वस्तुतः सारे राज्य को सम्हाल रहा था। राजा तो अपने भोग-विलास में लीन रहता था। उसने कहाः आप छोड़ रहे हैं, इतनी सी बात पर! वजीर ने कहाः इतनी सी बात नहीं है। ऐसे आदमी के नीचे क्या काम करना जिसे इतना भी बोध नहीं है कि जो सोचता है कि धन कुछ है, कि राज्य कुछ है और ध्यान कुछ नहीं और समाधि कुछ नहीं। समाधि असली संपदा है। या तो आओ मेरे साथ बुद्ध के स्वागत के लिए, उनके चरणों में झुको, या मेरा नमस्कार! मैं तुम्हारे नीचे फिर काम नहीं कर सकता। ऐसे क्षुद्र आदमी के नीचे क्या काम करना!
बुद्ध के पास कुछ हो या न हो, बुद्धत्व है। स्वयं का होना है। स्वयं की शांति है, आनंद है। शाश्वत वीणा बज रही है। सच्चिदानंद का नाद हो रहा है। तुम मंत्री की फिकर में पड़े हो? ! मैं तुम्हारी हृदय-तंत्री को बजाने को राजी, मौका दो कि मैं तुम्हारे तार छेडूं; कि मैं तुम में गीत उठाऊं जो तुम गाने को पैदा हुए हो। क्या हाथ जोड़ते फिरते हो! क्या भीख मांगते फिरते हो!

अब्बर-देवी, जब्बर बकरा,
तागड़ धिन्ना नागर बेल।

छोटा नाम बड़ा पर दर्शन,
महिमा और बड़ी मशहूर,
उससे और बड़े हैं पंडे,
सत्ता-भत्ता मद में चूर,
भेंट चढ़ाएं, धक्के खाएं भगत, मचाएं वे रंगरेल। अब्बर देवी, जब्बर बकरा,
तागड़ धिन्ना नागर बेल।

आसन भी है, शासन भी है,
अफसर, दफ्तर, फाइल, नोट,
पुलिस, कचहरी, पलटन-सलटन,
सबसे ताकतवर है वोट;
वोट नहीं क्यों पाया तुमने? तिकड़मबाजी में तुम फेल अब्बर देवी, जब्बर बकरा,
तागड़ धिन्ना नागर बेल।

गुल समाजवादी समाज का,
पूंजीवाद खिला; अंधेर!
कलकत्ते की ओर चले थे,
पहुंचे जाकर जैसलमेर!

बहुत दिनों पर भेद खुला है, ऊंट रहा है खींच नकेल! अब्बर देवी, जब्बर बकरा,
तागड़ धिन्ना नागर बेल।

आय इकाई, बजट दहाई,
प्लान सैकड़ा, कर्ज हजार,
खर्च लाख में, साख बंधी है,
देता है हर देश उधार;
पंद्रह पीढ़ी गिरवी रख दी लीडर जी ने जुआ खेल।
अब्बर देवी, जब्बर बकरा,
तागड़ धिन्ना नागर बेल।

सुरेंद्रनाथ, कहां के चक्कर में पड़े हो, किस चक्कर में पड़े हो! छिटक कर अलग हो जाओ! और देर न करो। क्योंकि मन बहुत चालबाज है। अगर तुमने देर की, तो मन समझाएगा कि अरे थोड़ा तो देख लो! इतने दिन रहे हो, अब थोड़ा कुर्सी का भी मजा देख लो! मगर जो कुर्सी पर हैं उनकी दशा नहीं देखते? तुम मजा देख पाओगे? कुर्सी पर बैठते ही कोई टांग खींचेगा; कोई हाथ खींचेगा; कोई कुर्सी की टांग ले भागेगा, कोई कुछ करेगा, कोई कुछ करेगा! और जहां तक सुरेंद्रनाथ होने चाहिए, होंगे बिहार से, जहां कि फजीहत बहुत होगी। इस देश में अगर पूरी फजीहत करवानी हो तो बिहार में राजनीति खेलनी चाहिए। अभी-अभी वहां समग्र क्रांति शुरू हुई थी, और पूरे देश को एक उच्छृंखलता में, एक अराजकता में, एक मूढ़ता में डाल कर वह समग्र क्रांति समाप्त हो गई। राजनीति है ही उपद्रव। हुड़दंग! राजनीति गुंडागिरी का अच्छा नाम है। खादी पहन लेने से कुछ गुंडे साधु नहीं हो जाते!
मुल्ला नसरुद्दीन खादी पहने हुए एक प्रदर्शनी में गया था। सफेद। गांधीवादी टोपी, और खादी, और चूड़ीदार पाजामा--बिल्कुल शुद्ध नेता! और एक सुंदर स्त्री को भीड़-भाड़ में देख कर धक्का देने लगा। उस स्त्री ने थोड़ी देर तो बरदाश्त किया, फिर उसने कहा कि शर्म नहीं आती? सफेद वस्त्र पहन कर, खादी पहन कर और इस तरह की लुच्चाई करते हो? मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा कि अब अपने वालों से क्या छिपाना। अरे, कपड़े ही सफेद हैं, दिल तो अभी भी काला है! और दिल जितना काला हो, उतना ही छिपाने की जरूरत पड़ती है। दिल जितना काला हो, उतने ही आवरणों में ढांकना पड़ता है। राजनीति का मजा क्या है? यही न कि अहंकार को तृप्ति मिलेगी? कि मैं कुछ हूं! और मैं ही तो खा जाता है। और मैं ही तो रोग है! और संन्यास हैः मैं का त्याग। मैं से मुक्ति। संन्यास हैः मैं से संन्यास। मैं संसार छोड़ने को संन्यास नहीं कहता, "मैं" छोड़ने को संन्यास कहता हूं। मैं-भाव छोड़ने को संन्यास कहता हूं।
अगर घड़ी आ गई है सौभाग्य की और तुम्हारे मन में दुविधा उठी है, तो गलत
मत चुन लेना। मन की तो पुरानी सारी आदतें गलत चुनने को कहेंगी। लेकिन इस बार हिम्मत करके बाहर निकल आओ अपने मन से। एक बार तो जीवन में कुछ ऐसा करो जो तुम्हें बुद्धों से जोड़ दे। जो तुम्हें जीवन की उस ज्योतिर्मय परंपरा से जोड़ दे, उनसे जोड़ दे जिन्होंने जाना है, जीआ है; जिन्होंने जीवन के परम सत्य को पहचाना है और परम गरिमा को अनुभव किया है।
आ गए हो तो खाली हाथ मत जाना! एक तो आना दुर्लभ है, आ गए हो, फिर आकर संन्यास का भाव उठा है, वह और भी दुर्लभ है। और वह भी राजनीतिज्ञ के मन में उठा है, जोकि करीब-करीब असंभव जैसी बात है; जब इतनी बड़ी असंभव बात तुम्हारे भीतर उठी है तो परमात्मा की विशेष अनुकंपा मालूम होती है! कुछ तुम्हारी खास ही फिकर कर रहा है, सुरेंद्रनाथ! ऐसा अवसर चूकना मत! छोड़ो दुविधा, छोड़ो द्वंद्व, लो छलांग! जीवन को एक और शैली से जीकर भी देखो! मस्ती से, गीत गुनगुनाते हुए, नाचते हुए! भजन से जीओ? और तुम चकित हो जाओगे, एक-एक क्षण बहुमूल्य है। एक-एक क्षण अहर्निश उसकी वर्षा हो रही है। एक-एक क्षण अमृत तुम में बरसने को आतुर है। और तुम हो कि जहर की दुकान के सामने "क्यू" लगाए खड़े हो! और तुम कहते हो कि अब मेरा नंबर बिल्कुल आया ही जा रहा है और अब आप आए हैं अमृत की खबर देने, अब मैं बड़ी दुविधा में पड़ा हूं! अब "क्यू" में

बिल्कुल मैं आया ही जा रहा हूं आगे, बस, एक-दो और आदमी हटे कि मेरा नंबर लगने ही वाला है, मेरी प्याली में जहर भरने ही वाला है!
राजनीति जहर है। यह दुनिया राजनीति से मुक्त होनी चाहिए। और मैं यह नहीं कह रहा हूं कि दुनिया बिना राज्य के चल सकेगी; लेकिन दुनिया बिना राजनीति के चल सकती है। राज्य एक बात है, राजनीति बिल्कुल दूसरी बात है। राज्य तो ठीक है! जरूरत है उसकी, व्यवस्था है। लेकिन राजनीति की कोई जरूरत नहीं है। राजनीति रोग है, जहर है। और जितने लोग उसके बाहर निकल आएं, उतना शुभ। जितने लोग इस देश में राजनीति को छोड़ कर जीने लगें, उतना शुभ। उससे हवा बनेगी, बगिया में नये फूल खिलेंगे। तुम भी भागीदार बनो इन गुलाबों को खिलाने के लिए--संन्यास के गुलाब--तुम्हारा भी हाथ इसमें जुड़े; मैं तुम्हें निमंत्रण देता हूं!

आज इतना ही।